समभाव–समदृष्टि के

सबक़

दिनांक 02 अप्रैल - 24 सितम्बर 2017

एकता का प्रतीक

प्रकाशक
सतयुग दर्शन ट्रस्ट (रजि.)
"वसुन्धरा" ग्राम भूपानी–लालपुर रोड फरीदाबाद–121002 (हरियाणा)
ई–मेलः info@satyugdarshantrust.org
website: www.satyugdarshantrust.org
© सर्वाधिकार सुरक्षित सतयुग दर्शन ट्रस्ट (रजि.)
ISBN : 978-93-85423-12-3

प्रथम संस्करण
मार्च, 2018

समभाव–समदृष्टि के

सबक़

दिनांक 02 अप्रैल 2017 - 24 सितम्बर 2017

सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अनुसार

★ महामन्त्र★

साडा है सजन राम,
राम है कुल जहान

अर्थात्

ईश्वर हमारा मित्र/प्रियतम सर्वव्यापक है।
उसी को जानो,
मानो और वैसे ही
गुण अपनाओ।

शब्द है गुरु,
शरीर नहीं है।

अर्थात्

ज्ञानी को नहीं,
ज्ञान को अपनाओ ।
निमित्त में नहीं,
नित्य में श्रद्धा बढ़ाओ।

अनुक्रमणिका

क्रमांक	विवरण	पृष्ठ संख्या
	अप्रैल 2017	
1.	दिः 02 का सबक़ परमपद-1	1
2.	दिः 09 का सबक़ परमपद-2	14
3.	दिः 16 का सबक़ परमपद-3	26
4.	दिः 23 का सबक़ परमपद-4	35
5.	दिः 30 का सबक़ आत्मनिरीक्षण	47
	मई 2017	
6.	दिः 07 का सबक़ मृतलोक-1	54
7.	दिः 14 का सबक़ मृतलोक-2	64
8.	दिः 21 का सबक़मृतलोक-3	75
9.	दिः 28 का सबक़मृतलोक-4	86
	जून 2017	
10.	दिः 04 का सबक़आत्मनिरीक्षण	97
11.	दिः 11 का सबक़ आत्मनिग्रह-1	107
12.	दिः 18 का सबक़ आत्मनिग्रह-2	118
13.	दिः 25 का सबक़ आत्मनिग्रह-3	128
	जुलाई 2017	
14.	दिः 02 का सबक़ आत्मनिग्रह-4 : आत्मानुशासन	138
15.	दिः 09 का सबक़आत्मनिरीक्षण	147
	ज्ञानेंद्रियों का समुचित कार्य	
16.	दिः 16 का सबक़ा : ज्ञानेंद्रियों का समुचित कार्य	154
17.	दिः 23 का सबक़ 2 : दर्शनेन्द्रिय (भाग-1)	166
18.	दिः 30 का सबक़ 3 : दर्शनेन्द्रिय (भाग-2)	178

अनुक्रमणिका

क्रमांक	विवरण	पृष्ठ संख्या
	अगस्त 2017	
19.	दिः 06 का सबक़ 4 : श्रवणेन्द्रिय	185
20.	दिः 13 का सबक़ 5 : रसनेन्द्रिय	199
21.	दिः 20 का सबक़ 6 : घ्राणेन्द्रिय, स्पर्शेन्द्रिय	209
22.	दिः 27 का सबक़ आत्म प्रकृति का विकास	221
	सितम्बर 2017	
	कर्मेन्द्रियों का समुचित कार्य	
23.	दिः 03 का सबक़ 1 : वागेन्द्रिय	230
24.	दिः 10 का सबक़ 2 : वाणी संयम	241
25.	दिः 17 का सबक़ 3 : जननेन्द्रिय/उपस्थेन्द्रिय	251
26.	दिः 24 का सबक़ 4 : गुदा इन्द्रिय और पादेन्द्रिय	261

दिनाँक 02 अप्रैल 2017 का सबक़

परमपद-1

साडा है सजन राम, राम है कुल जहान
अर्थात्
ईश्वर हमारा मित्र/प्रियतम सर्वव्यापक है, उसी को जानो, मानो व वैसे ही गुण अपनाओ।

शब्द है गुरु, शरीर नहीं है,
अर्थात्
ज्ञानी को नहीं ज्ञान को अपनाओ और निमित्त में नहीं नित्य में श्रद्धा बढ़ाओ।

इस पर सुदृढ़ता से डटे रह,
इस अटल सत्य पर स्थिर बने रहोः-
ओ३म् अमर है आत्मा, आत्मा में है परमात्मा

सजनों सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में श्री साजन जी, सजनों को जीवन के प्रधान लक्ष्य की ओर आकर्षित करते हुए कह रहे हैंः-

परमधाम है घर हमारा, असां परमधाम में रैहंदे हां।
परमधाम है चानणा, ज्यों सूरज चढ़े हज़ार।
एहो ही हम बतलाते हैं, एहो ही हम कहते हैं,
एहो ही हम कहते हैं।।

परमधाम है हमारी रौशनाई, है जे ओ सर्व सबाई।
सर्व सर्व प्रकाश हमारा, प्रकाशित ही कहलाते हैं।
प्रकाश ही हम दिखलाते हैं, प्रकाश ही हम दिखलाते हैं।।

इस संदर्भ में सजनों अगर हम आत्मिक ज्ञान की पढ़ाई पढ़ते-समझते हुए, उसे अमल में ला, परमपद को प्राप्त करना चाहते हैं और परमधाम का नज़ारा व चमत्कार देखना चाहते हैं तो हमें इस महान व शुभ लक्ष्य की प्राप्ति हेतु एक महान तपस्वी की तरह, त्याग भावना से, युवावस्था के भक्ति भाव पर एकरस बने रह परमार्थी कमाई करने के लिए तत्पर होना होगा।

निःसंदेह इस के लिए सजनों, हम मखट्टू पुत्रों को, परमार्थी पिता सजन श्री शहनशाह हनुमान जी, (जिनकी ताकत के आगे मौत भी काँपती है), की आज्ञाओं का पालन, एक उत्तम पुत्र की तरह, बिना किसी तर्क-वितर्क के, समर्पित भाव से करना, आरम्भ करना होगा। ऐसा इसलिए कह रहे हैं क्योंकि सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ कह रहा हैः-

शक्तिवान दी शक्ति देख के,
कुल दुनियां घबरावे।
दाते दे वचनां दी पालना करो,
सजनों शक्ति हत्थां विच आवे ओ शक्तिवान नाम कहावे।।

शक्तिवान दाते जी दी,
शक्ति ओ लैणी ओ फड़।
युवावस्था नाले बल दी प्राप्ति,
लवे ओ धारण कर, लवे ओ धारण कर।।

ओ असलियत अपनी पहचान गया,
शक्ति शहनशाह दी है ताकतवर।
शक्ति शहनशाह दी है ओ ताकतवर,
है ओ ताकतवर।।

इस संदर्भ में दिनचर्या के दौरान, पिता के वचन प्रवानगी के प्रति, सजनों हमसे कोई अवज्ञा न हो जाए और हम मध्यम या मंद अधम पुत्र की तरह, सत्य-धर्म के भक्ति-भाव से गिर, पिता के वचनों के विरुद्ध चलते हुए, विषय-विकारों व सांसारिक धन के प्रलोभन में उलझ, परमार्थी धन यानि चारित्रिक रूप से कंगाल न हो जाएं, उसके लिए हमें समझना होगा कि जो अविचारी रास्ता हम अपना रहे हैं, वह कुसंग के कारण मनुराज ने रचा है। इस कवलड़े रास्ते पर चलते हुए हम कभी भी, यानि जन्म-जन्मांतरों तक भी परमपद को प्राप्त नहीं कर सकेंगे अपितु यह तो अपने सच्चे घर के प्रति सुध-बुध खो, अपने बुरे कर्मों के परिणामस्वरूप, दुःखमय जीवन व्यतीत करते हुए अपयश को प्राप्त करने की बात होगी।

इस परिप्रेक्ष्य में सजनों मत भूलो कि कलुकाल जा रहा है और सतवस्तु आ रहा है। इसीलिए समय के रुख को देखते-समझते हुए व अपने जीवन का परम पुरुषार्थ सिद्ध करने हेतु, हमारे पिता सजन श्री शहनशाह हनुमान जी हम जैसे मखट्टू पुत्रों को सावधान करते हुए, स्पष्ट शब्दों में कह रहे हैं कि:-

मखट्टू पुत्र नहीं ओ प्यारा बेटा,
निकल जावे तो उसनूं निकलने देवो,
फिर उसने आना है इस द्वारे बेटा।

अर्थात् ऐसा अविचारी इंसान पिता को प्रिय नहीं है जो ताकतवर परमार्थी पिता की चरण-शरण छोड़, दुनियाँ की ओर रुख कर लेता है और विचारयुक्त सवलड़े रास्ते पर बने

रहने के स्थान पर, मुश्किलों व ठोकरों भरे अविचारी कवलड़े रास्ते पर निकल जाता है। नतीजा-उस पराधीन इंसान को अनेकानेक कष्ट-क्लेश भोगने के बाद, एक दिन पुनः उनकी विचार शब्द रूपी दात को प्राप्त कर, अपना सोया भाग्य जगाने के लिए, उन्हीं के द्वारे पर लौट कर आना पड़ता है।

चूंकि सजनों समय को देखते हुए अब इस संसार रूपी बगीचे को छांग कर, मुश्क हटा सफ़ाई करने का समय आ गया है। इसलिए हर इंसान के लिए बनता है कि वह जगत से प्राप्त होने वाले अविचारी ज्ञान को त्याज्य मानते हुए, सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में परमेश्वर के मुख की आई हुई कुदरती वाणी अर्थात् शब्द ब्रह्म विचारों को पढ़ें-समझें व उन्हें ग्रहण कर, जब भी किसी के साथ बात करें, विचार से करें और विचार से ही उत्तर दें। इस प्रकार विचारवान सुपुत्र की तरह, कुल दुनियां में और जनचर-बनचर, जड़-चेतन में एक प्रकाश समझ कर, इस मन व जगत पर फ़तह पा जाएं। सजनों याद रखो कि विचार ही जीत और फ़तह है।

अतैव हमारे लिए बनता है कि आज से पहले जो भी हमसे कमियाँ हुईं और उनके कारण जीवन में जितने भी संकट भोगने पड़े, उन्हें भूल अब हम सजन श्री शहनशाह हनुमान जी के वचनों की पालना करते हुए नाम, ध्यान और निष्काम रास्ते को पकड़ लें और उस ताकतवर पिता के चरणों में रह, सब कुछ प्राप्त कर लें क्योंकि सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में ही कहा गया है:-

ताकतवर ताकतवर,
पिता दाता शहनशाह ओ ताकतवर
जो कुछ चाहवो, सो लवो मेरे सजनों,
सब कुछ है उन्हां दे घर
ओ है जे ताकतवर, ओ है जे ताकतवर

सजनों पिता परमेश्वर से विचार रूपी दात प्राप्त करने के लिए सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ को नियमपूर्वक पढ़ने की क्रिया अपनाओ और एक अच्छे छात्र की तरह उससे प्राप्त सीख का मनन करके उसके अर्थों को समझो। जानो इस आत्मज्ञान से युक्त सतवस्तु के कुदरती शास्त्र को पढ़ने के उपरांत, उसे एक अक्लमंद इंसान की तरह, उचित ढंग से प्रयोग में लाने की यही सही रीति है। इस संदर्भ में ग्रन्थ को पढ़ते-पढ़ते जहाँ भी कोई विचार या उस विचार को अमल में लाने की युक्ति सही ढंग से समझ में न आए तो उस विचार व युक्ति को, समय पर ही किसी आत्मज्ञानी से समझ लेना। इसे एक सम्पूर्ण इंसान के रूप में ढलने व इस जगत में अकर्त्ता भाव से अपने कर्त्तव्य कर्म करने के लिए आवश्यक मानो। इसीलिए तो सजनों परमेश्वर हमें कहते हैं किः-

सजनों अपने जन्म दा है अखण्ड पाठ,
तिन वक्त तुसाँ रखना याद।
अपनी असलियत दा पावो प्रकाश,
तिन वक्त तुसाँ रखना याद।

इससे सजनों स्पष्ट होता है कि सत्संग अपने आप में हमारा वह विद्यालय है जहाँ पर हम आत्मिक ज्ञान की शिक्षा प्राप्त

करने हेतु आते हैं। अतः इस विद्यालय के अनुशासन में बने रहना अनिवार्य है ताकि जो भी हमें पढ़ाया या सिखाया जाए वह हमारी स्मृति में ठहरे और हम उसे अपनी दैनिक दिनचर्या के दौरान सफलता से प्रयोग करने के योग्य बन, अपने मन-वचन-कर्म द्वारा उसे प्रमाणित कर सकें। ध्यान रहे एक बार इस विद्यालय से शिक्षा प्राप्ति आरंभ हो गई तो फिर कुदरती ग्रन्थ में विदित शब्द ब्रह्म विचारों को परिपूर्णता से ग्रहण करने की यह क्रिया अखंड रूप से, निर्बाध चलनी चाहिए।

जानो ऐसा सुनिश्चित करने पर ही हम अपने असलियत ज्ञानस्वरूप का प्रकाश पा सकते हैं और एक सशक्त व परिपूर्ण इंसान की तरह निर्भयता से, निष्कलंक इस जगत में विचरते हुए, अंत मोक्ष अर्थात् परमपद को प्राप्त कर सकते हैं। उपरोक्त समस्त बातों के दृष्टिगत ही सजनों सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में ईश्वर कहते हैंः-

इक बात बताऊँ, साजन जी सुन लीजियो।
परमधाम दा नज़ारा सजनां नूं समझा दीजियो।।
विचार ते अविचार दो शब्द हैन।
विचार सबनां बातां वल्लों जित और फ़तह।
अविचार है हार, अविचार है हार।।

निःसंदेह इस उच्च पद की प्राप्ति के लिए सजनों हमें सजन श्री शहनशाह हनुमान जी के वचनों की पालना करने का दृढ़ संकल्प लेना होगा ताकि उनके वचनों की अवज्ञा करने पर जिस तरह द्वापर में श्री कृष्ण जी के मित्र, सुदामा को भीख

मांगनी पड़ी और कलियुग में सजन श्री गुरु नानक जी के शिष्य मरदाने को कष्ट भोगना पड़ा और अंत में लौट कर फिर उनके पास आना पड़ा, वैसा ही कहीं, वचनों की पालना न करने के कारण, हमारे साथ न हो। स्पष्ट है सजनों यदि हम पिता के कोप से बचना चाहते हैं और अपने आप को संभाल कर, स्वार्थ व परमार्थ की तरफ से सुखी हो, प्रभु से मेल खाना चाहते हैं तो हमें सजन श्री शहनशाह हनुमान जी द्वारा प्रदत्त नाम व युक्ति को प्रवान कर, सत्य-धर्म के भक्ति भाव अनुसार, उनके नियम-नीतियों पर चलना आरम्भ कर देना होगा।

अंत में सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अनुसार सजनों जानो कि विचार ही फतह है और एक विचारयुक्त इंसान का संकल्प ही सदा प्रभु के साथ जुड़ा रह सकता है। अतः जिस तरफ संकल्प, उसी तरफ दृष्टि को साधे रखते हुए, एक दृष्टि और एक दर्शन में स्थित हो जाओ। अपने इस मार्ग को सरल व सुगम बनाने के लिए अपने बच्चों सहित अन्य परिवारजनों को भी इस सत्य-धर्म के मार्ग पर साथ लेना मत भूलो। याद रखो ऐसा होने पर आपका संकल्प स्वच्छ रहेगा और उसका झुखना व रोना बंद हो जाएगा। मत भूलो कि संकल्प के झुखने पर ही इन्सान रोता है। अगर संकल्प ठीक हो जाए तो झुखना-रोना मिट सकता है और अफुर अवस्था आ सकती है। परिणामस्वरूप उस स्थिर बुद्धि इंसान का मन प्रभु में अखंडता से लीन रहता है और हृदय में आनन्द की सृष्टि करता है।

सारतः सजनों जानो कि जीवन के महान लक्ष्य की प्राप्ति के

इच्छुक तो सब होते हैं पर उसे प्राप्त वही कर पाता है जो रास्ते में आने वाली कठिनाईयों व परेशानियों को दृष्टिगत न रखते हुए, एकाग्रचित्तता से सीधा लक्ष्य की ओर निरंतर बढ़ता जाता है। निःसदेह उसके लिए ऐसा करना इसलिए सुगम हो पाता है क्योंकि वह जानता है कि उसका अपना परमात्म स्वरूप ही ज्ञानमय व सर्वशक्तिमान है और वह ही उसकी जीवन नैय्या को पार उतारने में सर्व समर्थ है। इसी अटूट श्रद्धा और विश्वास के कारण ही उसे ईश्वर की खोज में, तरह-तरह के आडंबर व कर्मकांड युक्त भक्ति मार्गों में भी नहीं भटकना पड़ता और वह इस जगत में विशेष तौर पर विचरते हुए भी उससे निर्लेप रह पाता है। निःसंदेह वह जानता है कि सर्वव्याप्त परमात्मा कोई शब्द नहीं जो हमें किताबों में मिलेगा, मूर्त्ति नहीं जो हमें मंदिरों में मिलेगी, इंसान नहीं, जो हमें समाज में ढूँढने से मिलेगा, वह तो जीवन है, जो केवल अपने आप में से ही मिल सकता है। सजनों याद रखो जिस भी सजन को इस मिलन का सत्यता से एहसास हो जाता है, वह पावन चरित्र वाला सत्यबोधी व आत्मतुष्ट इंसान किसी की प्रशंसा का मोहताज नहीं होता क्योंकि उसने जो परमात्म-स्वरूप अपने मन-मन्दिर में देखा है उसी सर्वव्यापक ईश्वर के जग अन्दर होने का बोध हो जाता है। यही कारण है कि फिर उस परिपूर्ण इंसान के लिए सभी बराबर हो जाते हैं और वह सबसे समता का आचरण करता है। इस तरह उसकी सुगंधि स्वतः ही खिले हुए असली फूल की भांति चारों तरफ फैलती जाती है और देवलोक की सुगंधि को भी मात कर देती है। फिर तो जो भी उसकी संगत में आता है वह उसकी रूह को भी महका देती

है। अन्य शब्दों में हम कह सकते हैं कि वह ऐक्य भाव पर स्थिर रहने वाला, समभाव-समदृष्टि की युक्ति अनुसार, सजन शब्द के वर्त-वर्ताव द्वारा, सदा मधुर वाणी बोलता हुआ, सबको भी सकारात्मक भाव द्वारा, उसी आचार-व्यवहार में ढलने की प्रेरणा देता है। इसीलिए तो उसके लिए फिर इस जीवन में कुछ भी कर पाना असाध्य नहीं रहता और वह परमात्म स्वरूप सांसारिक व परमार्थी दोनों राज्य प्राप्त कर धन्य हो जाता है।

सजनों हम सब भी सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में विदित युक्ति को प्रवान कर, अपने आप को धन्य कर सकें, इस हेतु आओ अपने मार्गदर्शक, सजन श्री शहनशाह हनुमान जी को, अपने संग लेने का दृढ़ संकल्प लें और दृढ़ निश्चयी होकर अपने जीवन के प्रयोजन को सिद्ध करें।

इस हेतु आओ अब मिल कर बोलते हैं:-

(श्री साजन जी के मुख के शब्द)

कवित्त

रावण वल्लों जित्त ओ पा के ते ओ-ओ-ओ।
भक्त विभीषण नूं राज दिवाय सजनों।।
सीता महारानी श्री रामचन्द्र मिला के ते।
भरत जी नूं खुशख़बरी सुनाये सजनों।।
श्री रामचन्द्र और भरत जी दा मेल करवा के ते ओ-ओ-ओ।
श्री रामचन्द्र जी नूं राज दिवाय सजनों।।
शिव ब्रह्मा तेतीस करोड़ देवता आ के ते।

वशिष्ठ जी श्री राम रमणे वाले नूं ताज पहनाये सजनों।।
माता कौशल्या वी खुशी मना के ते ओ-ओ-ओ।
सब किसे अयोध्या वासी वी सोहिलड़े गाये सजनों।।
अंजनी लाल पवन पुत्र श्री शहनशाह महाबीर जी।
शिव ब्रह्मा तेतीस करोड़ देवतियां नूं हर्षाये सजनों।।

शब्द

दोनों हाथ जोड़ महाबीर जी अग्गों करो चरण वन्दना,
सजनों करो चरण वन्दना।
सजनों करो चरण बन्दना साडी कोटि कोटि प्रणाम,
करो चरण वन्दना।।

(श्री साजन जी के मुख की शाख)

शाख

महाबीर जी तुसां संग हो हमारे, हम संग हैं तुम्हारे।
संकट दूर करदे आये, करदे आये ओ सारे।
ओ मेरे श्री रामचन्द्र जी दे प्यारे, रामचन्द्र जी दे प्यारे।।

'कौन' ?

ओ बजरंगी, ओ बजरंगी।
ओ बजरंगी, ओ बजरंगी।।
कोई करे तुहाडी मानता, कोई करे तुहाडी पूजा।

कई व्रत नेम करके, कई नामां ते पुकारे।
ओ संकटटारी श्री राम जी दे प्यारे, श्री राम जी दे प्यारे।।

'कौन' ?

ओ बजरंगी, ओ बजरंगी।
ओ बजरंगी, ओ बजरंगी।।
कोई पुकारे स्वार्थी, कोई पुकार रिहा परमार्थी।
ज्ञानी और ध्यानी पुकारन जगत दे ओ सारे।
ओ संकटटारी श्री राम जी दे प्यारे, श्री राम जी दे प्यारे।।

'कौन' ?

ओ बजरंगी, ओ बजरंगी।
ओ बजरंगी, ओ बजरंगी।।
जीवन सफल करके सजनों, सब दी पीड़ा हरदे ने।
ओ संकटटारी श्री राम जी दे प्यारे, श्री राम जी दे प्यारे।।

'कौन' ?

ओ बजरंगी, ओ बजरंगी।
ओ बजरंगी, ओ बजरंगी।।
उजड़ियां नूं वसैंदे ने, रोंदियां नूं हसैंदे ने।
ओ संकटटारी श्री राम जी दे प्यारे, श्री राम जी दे प्यारे।।

'कौन' ?

ओ बजरंगी, ओ बजरंगी।
ओ बजरंगी, ओ बजरंगी।।
सजन शब्द चलवाये, ओ मृत लोक जितवाये।
ओ संकटटारी श्री राम जी दे प्यारे, श्री राम जी दे प्यारे।।

'कौन' ?

ओ बजरंगी, ओ बजरंगी।
ओ बजरंगी, ओ बजरंगी।।
बिन सूरजों प्रकाश दिखैंदे ने,
अपने प्यारियां दा रौशन नाम करैंदे ने।
ओ संकटटारी श्री राम जी दे प्यारे, श्री राम जी दे प्यारे।।

'कौन' ?

ओ बजरंगी, ओ बजरंगी।
ओ बजरंगी, ओ बजरंगी।।

अंततः सजनों हम स्थिर बुद्धि हो, एक शक्तिशाली इंसान की तरह, अपनी मंजिल अर्थात् परमपद को प्राप्त कर सकें इस हेतु हमें आत्मनियंत्रण द्वारा संतोष, धैर्य, सच्चाई, धर्म के चार सवाल हल करने होंगे ताकि हम समभाव नज़रों में करने के योग्य बन, समदृष्टि हो सकें। सजनों यह तीनों ताप मिटा, सम अवस्था में आने की बात है। जानो इस अवस्था में, उस आत्मतुष्ट इंसान के मन में उत्पन्न होने वाली, दुष्ट राजसिक व तामसिक वृत्तियाँ समाप्त हो जाती हैं और फिर उसके अन्दर किसी भी प्रकार से भौतिक और दैवीय शक्तियाँ प्राप्त करने की इच्छा नहीं रहती। यही कारण है कि फिर वह संसारिक धन-संपत्ति, ऐश्वर्य आदि की प्राप्ति कर, अपनी पूजा-मानता कराने में नहीं फँसता। इस तरह उसके हृदय में स्वतः ही, अध्यात्म का प्रकाश उदित हो जाता है और इस प्रकाश में निज यथार्थ का बोध होते ही, उसे यह संसार ब्रह्ममय लगने लगता है। इस ब्रह्ममय अवस्था में वह

सजन सहज ही कह उठता है, 'मैं ब्रह्म हूँ' अर्थात् 'असलियत स्वरूप है जे ब्रह्म जैंदा रूप रेखा नहीं रंग।'

सजनों हम सब भी युवावस्था का भक्ति भाव अपना कर आजीवन 'मैं ब्रह्म हूँ' के भाव पर, स्थिरता से बने रह पाएं, उसके लिए हम सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में विदित समभाव-समदृष्टि की युक्ति को वर्त-वर्ताव में लाने का तरीका, अर्थ सहित आगामी सप्ताह समझेंगे।

दिनाँक 09 अप्रैल 2017 का सबक़

परमपद-2

साडा है सजन राम, राम है कुल जहान

अर्थात्

ईश्वर हमारा मित्र/प्रियतम सर्वव्यापक है, उसी को जानो, मानो व वैसे ही गुण अपनाओ।

शब्द है गुरु, शरीर नहीं है,

अर्थात्

ज्ञानी को नहीं ज्ञान को अपनाओ और निमित्त में नहीं नित्य में श्रद्धा बढ़ाओ।

इस पर सुदृढ़ता से डटे रह,

इस अटल सत्य पर स्थिर बने रहोः-

ओ३म् अमर है आत्मा, आत्मा में है परमात्मा

सजनों जैसा कि हमने गत कक्षा में व चैत्र के यज्ञ उत्सव पर हुई सारी बातचीत को सुन-समझ कर जाना-समझा कि उन्नति वर्ष के क्रमवार ही, यह वर्ष परमपद प्राप्ति के निमित्त समर्पित है। अतः परमार्थ की दृष्टि से यह प्रत्येक इंसान के जीवन में अति महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। इस संदर्भ में सजनों हम जानते हैं कि सत्संग में आने के बावजूद भी, अधिकांश सजन संसारी हैं, जिनकी परमार्थ के स्थान पर, स्वार्थ सिद्धि में यानि अर्थ, कामादि ऐन्द्रिक सुखों में लिप्सा है। तभी तो इतना समझाने के बावजूद भी ऐसे सजन नहीं

समझते और स्वार्थपर हो, मंद बुद्धि बने रहते हैं। परन्तु आप में से ही कई विरले निष्काम मुमुक्षु ऐसे भी हैं जो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में विदित शब्द ब्रह्म विचारों का अनुशीलन कर, राग-द्वेष रहित हो यानि विरागोन्मुख हो इस परमपद को प्राप्त करने के पुरुषार्थ में रत हैं। ऐसे विरले सजनों की हम अनदेखी नहीं कर सकते। अतः उनके पुरुषार्थ को उत्साहित कर उनका जीवन बनाने के लिए ही इस वर्ष सारी बातचीत व प्रयत्न चलना है। ऐसे में यदि आप सब स्वार्थपर व काम, क्रोध, लोभ, मोह व अहंकार में उलझे हुए अहंकारी भी, सारी बातचीत को सुनकर सम्भलना चाहते हो और जीवन बनाना चाहते हो तो यह आपकी व्यक्तिगत रुचि, लगन, पुरुषार्थ व प्रयत्न पर निर्भर करता है। आप इस प्रयत्न में सफ़ल हों इस हेतु आपको क्या करना होगा, इस विषय में जानकारी देते हुए सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ कह रहा हैः-

चौपाई

तूं पिच्छे कदम ना हटावीं।
ऐसा पुरुषार्थ कमावीं।।

हुन तूं अगे कदम बढ़ावीं।
तूं ऐसा उद्यम दिखावीं।।
उमरा चरणां विच बितावीं।
तूं रज मस्तक नूं लावीं।।

ओ औझड़ हिन बहुतेरे।
ओ चोभां देवन जेहड़े।।
ओन्हां विच अटक न जावीं।
तूं पिच्छे कदम ना हटावीं।।

विसूचिका ओ पई डरावे।
ओ कष्ट कलेश दिखावे।।
ओदे फंदे तों बच के राहवीं।
तूं पिच्छे कदम ना हटावीं।।

हंकारी ऐसी गर्ज दिखावे।
दासियां दा दिल कम्ब जावे।।
जीव नूं ताकत दे विच लयावीं।
तूं पिच्छे कदम ना हटावीं।।

जेहड़े हैन ए तेरे प्यारे।
ओ फांसी लई खड़े हिन सारे।।
तू फांसी विच ना फस जावीं।
तूं पिच्छे कदम ना हटावीं।।

महाबीर जी ने ए फ़रमाया।
दासी ने तुहानूं खोल सुनाया।।
महाबीर जी दे चरणां विच राहवीं।
तूं पिच्छे कदम ना हटावीं।।

सदके मैं सारी ओ सारी।
सोहणी तेरी सूरत तों।।
वारी मैं वारी ओ वारी।
प्यारी तेरी मूरत तों।।

सोहणी तेरी सूरत तों।
मन मोहनी तेरी मूरत तों।।
पंजां तत्तां नू वारां।
सोहणी तेरी सूरत तों।।

सजनों इस कीर्तन के माध्यम से सच्चेपातशाह जी, जो भी परमार्थ के रास्ते पर पहला कदम बढ़ाता है उस सजन को सावधान करते हुए एक आत्मविश्वासी व विवेकशील इंसान की तरह, निर्भयता से निरंतर आगे बढ़ते हुए, अपनी सुनिश्चित मंजिल को प्राप्त करने के प्रति चेतावनी दे रहे हैं। वे कहते हैं कि सजन जी इस रास्ते पर चलते हुए आपको पक्का करने के लिए, जीवन में अनेकानेक पीड़ाप्रदायक व दुःखदायक कठिनाईयाँ आएँगी परन्तु आप उनसे विचलित हो अपना कदम पीछे न हटाना अर्थात् उनमें अटक कर, घबराकर रोने मत लग जाना या हताश हो रुक मत जाना अपितु परीक्षा की उस घड़ी में वचनों पर स्थिर बने रह, अफुरता से सीधे आगे ही आगे बढ़ते जाना। वह आगे कहते हैं कि हो सकता है तब विसूचिका अर्थात् रोगों का सरदार, आपके आत्मिक बल को कमज़ोर करने के लिए, आधि-व्याधि का रूप ले, शारीरिक व मानसिक रूप से आपको कष्ट-क्लेश दे, रोगग्रस्त यानि क्षीण करने की चेष्टा भी करे पर तब भी उसके फंदे में फँस कर अपनी मंजिल से भटक मत जाना अपितु अपने इरादे को बुलंद रखना और एक अक्लमंद इंसान की तरह आगे ही आगे बढ़ते जाना।

इस संदर्भ में वह फिर कहते हैं कि अगर परमार्थ के रास्ते पर चलते हुए कोई अहंकारी आपको किसी सांसारिक लालसा में उलझाने हेतु, अपनी गर्जना द्वारा डरा-धमका कर

सद्मार्ग से विचलित करने की कोशिश करे तो उससे भयभीत होकर पथभ्रष्ट न हो जाना अपितु सत्यबल से जीव को ताकत में रखते हुए निडरता से उसका सामना करना और एक निर्विकारी इंसान की तरह सद्मार्ग पर प्रशस्त रहना। सजनों फिर वह हमें हमारे प्रियवर सगे-सम्बन्धियों के प्रेम-प्यार के प्रति सचेत करते हुए समझाते हैं कि उनके मोहपाश में फँस कर, अपना यह अनमोल जीवन वृथा मत गँवा बैठना अपितु सार्थक जीवन व्यतीत करते हुए अपने आप को नैतिक रूप से सबल बनाना।

अंत में सजनों निष्काम व अकर्त्ता भाव से ओत-प्रोत हो सच्चेपातशाह जी कहते हैं कि सजनों यह जो कुछ भी सावधानी अभी आपको दी गई है, यह मैं नहीं दे रही अपितु बलधारी अर्थात् सजन श्री शहनशाह हनुमान जी दे रहे हैं। अतः सजनों उनके सुझाव को स्वीकार कर सदा उनकी चरण-शरण में बने रहो और उनके वचनों को सुन-समझ कर व आत्मसात् करके अपना जीवन बनाओ और ए विध् परमपद को पाओ। जीवन के इस महान लक्ष्य की प्राप्ति हेतु ही सजनों वह हमें उस प्रभु के ऊपर, अपना सब कुछ न्योछावर कर सदा परिपूर्णता से मानवीय गुणों पर बने रहने का सुझाव दे रहे हैं और कह रहे हैं कि अगर उस परमेश्वर के हुक्म की प्रवानगी के लिए यह शरीर भी त्यागना पड़े तो भी ऐसा करने से मत हिचकिचाओ अपितु अपना सब कुछ समर्पित कर हर बंधन से स्वतन्त्र हो जाओ। सजनों याद रखो कि इस प्रकार श्रेष्ठ मानव बनने का पराक्रम दिखाने पर ही हम आद् संस्कृति के अनुरूप आचार-विचार व व्यवहार अपना कर अपनी भावी संतानों के मन में भी

समभाव समदृष्टि की युक्ति ग्रहण करने की उत्कंठा उत्पन्न करने हेतु, परस्पर सजन भाव रूपी महान गुण का व्यवहार करते हुए, सदा एकता व एक अवस्था में बने रहने की अभिलाषा जाग्रत कर सकते हैं।

इस परिप्रेक्ष्य में सजनों जैसा कि सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में विदित ही है और चैत्र के यज्ञ पर हमें सालाना परीक्षा के दौरान, हमारी उन्नति/अवनति से परिचित कराते हुए समझाया भी गया कि इस संसार में केवल वही व्यक्ति ही सहजता व सरलता से इस भवसागर से पार हो, परमपद को प्राप्त कर सकता है जो संतोष, धैर्य, सच्चाई, धर्म के चार सवाल हल कर अर्थात् निरासक्त हो, अफ़ुरता से सुरत को शब्द में लीन रखते हुए, समभाव नज़रों में कर सजन वृत्ति पकड़ व सजन भाव नजरों में कर, सजन भाव अनुरूप प्रकृति में ढल, इस यथार्थ का बोध कर लेता है कि वह ब्रह्म ही इस जगत में हर अन्दर एक समान जग रहा है। इस प्रकार वह विचारशील इंसान ही ऐक्य भाव के अनुसार सत्यनिष्ठा और धर्मपरायणता से जीवन जीने का पराक्रम दिखा पाता है।

सजनों हम सब भी आगामी वर्ष तक यह पराक्रम दिखाने में सफ़ल हो जाएँ, इसके लिए अब से हमें कदम-कदम पर विचारसंगत आत्मनिरीक्षण करते हुए, प्रति माह के पहले सप्ताह में, संतोष, धैर्य व सच्चाई, धर्म के सवाल हल करने के संदर्भ में निम्नवर्णित प्रश्नों के उत्तर, अपने आप से ले, अपनी परमार्थी उन्नति यानि प्रगति का सत्यता से जायज़ा लेना होगा। तत्पश्चात् इन चारों सवालों को हल कर, सम

पर खड़े होने यानि एक निगाह एक दृष्टि हो, एक दर्शन में स्थित रहने हेतु, पाई गई कमज़ोरियों का आत्मनियंत्रण द्वारा, तत्क्षण सुधार कर निरंतर आत्मोन्नति के पथ पर अग्रसर होना होगा। सजनों अनथक परिश्रम द्वारा, ऐसा करने पर ही हम, समभाव-समदृष्टि के सबक को आत्मसात् कर, परस्पर सजन भाव का व्यवहार करते हुए पहले निष्कामी व फिर ब्रह्मज्ञानी बन, तीनों तापों से मुक्ति पा अपने असलियत ज्योति स्वरूप की पहचान कर ब्रह्म नाल ब्रह्म नाम कहा सकेंगे। आओ सजनों अब जानते हैं कि एक परिपूर्ण इंसान बनने के लिए, सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में वर्णित इन चार सवालों को हल करने हेतु हमें अपना आकलन अपने आप कैसे करना होगाः-

1. क्या हम संकल्प पर अर्थात् शारीरिक स्वभावों पर विजय प्राप्त करने हेतु कुसंगी संकल्प को सजन बना पा रहे हैं और इस प्रकार संकल्प के झुखने से अपने आप को बचाए रख, संतोष का सवाल हल कर अपना रोना बंद कर पा रहे हैं या नहीं?

2. क्या हम हर अच्छी-बुरी परिस्थिति में, अपनी जाँचना-तुलना करते हुए, एक आत्मतुष्ट इंसान की तरह संतोष के स्वभाव पर स्थिरता से डटे रह पा रहे हैं या नहीं? कहने का तात्पर्य यह है कि क्या हम अफुरता से, मन को प्रभु संग साधे रखने हेतु, कलुकाल के स्वभाव छोड़, सतयुगी स्वभाव अपना पा रहे हैं या नहीं?

3. क्या हम धैर्य का सिंगार पहन, अपनी सुरत को निरंतर कंचन अवस्था में रखते हुए व परमेश्वर के संग बने रह, टापू-टापू में, सर्गुण-निर्गुण के खेल सचेतनता से खेलते हुए, व निर्वाण पहुँच उनके साथ मेल खाने हेतु, परमार्थ के रास्ते पर समुचित उन्नति कर पा रहे हैं? इस प्रकार अपने मन से खोट हटा, खालस सोना हो, इस मिथ्या जगत में अकर्त्ता भाव से, परोपकार कमाने हेतु, सत्कर्म करते हुए, यश-कीर्ति प्राप्त कर पा रहे हैं या नहीं?

4. क्या स्वार्थपरता से बचे रहने हेतु, खुद को परमार्थी धन से सम्पन्न समझते हुए, हमारे लिए एक कामनामुक्त इंसान की तरह, आनन्दमय जीवन जीना संभव हो पा रहा है या नहीं?

5. क्या हम, ख़्याल ध्यान वल व ध्यान प्रकाश वल रखते हुए, मूल मंत्र के अजपा जाप की सार्थक ध्वनि को सुन, हृदय वेद विदित, ब्रह्म विचारों को भावार्थों सहित, समझदारी से ग्रहण कर, अपने जीवन जीने का नज़रिया, उसी अनुरूप ढाल, धैर्य का सवाल हल कर पा रहे हैं या नहीं?

6. क्या हम संतोष-धैर्य का श्रृंगार पहन, अपनी ज़बान व हृदय को सत्यमेव रखते हुए व परस्पर सच का वर्त-वर्ताव करते हुए, इस शरीर रूपी मकान को सचखंड बना पा रहे हैं यानि निष्कामता से पुण्य कर्म करते हुए, अपने पावन भाव-स्वभावों की सुगंधि, देश-देशांतर फैलाते हुए, देवलोक को हर्षा, सत्य पर स्थिर रह पा रहे हैं या नहीं?

7. क्या हम इस जगत के साम्राज्य के मालिक, परमेश्वर को, सदा अंतर्दृष्टि में रखते हुए अर्थात् एक नीति निपुण ईमानदार इंसान की तरह समभाव नज़रों में कर, उन द्वारा बताए हुए न्यायपथ यानि धर्मपथ पर विचारयुक्त होकर, प्रशस्त हो पा रहे हैं या नहीं? आशय यह है कि क्या हम सबके साथ समदर्शिता अनुरूप सजनतापूर्ण व्यवहार करते हुए, एक परोपकारी इंसान की तरह नेक इंसान बनने का आदर्श सबके सामने रखते हुए, उनके प्रिय बन, उन्हें भी इसी सत्य धर्म के युवावस्था के भक्ति भाव को अपनाने के लिए प्रेरित कर पा रहे हैं या नहीं?

सजनों जान लो कि इन प्रश्नों के विषय में, जो भी सच्चे दिल से अपने शीश को परमेश्वर के निमित्त समर्पित कर व वैराग्य बल पर, सांसारिकता को त्याग कर, हर माह सत्यता से ऊपरलिखित सवालों को हल करने के प्रति, आत्मविश्लेषण करेगा व दृढ़ संकल्पी हो, आत्मनियंत्रण द्वारा समय पर अपना सुधार कर आत्मोन्नति करेगा, वह निश्चित ही इन चार सवालों को हल कर, सम पर खड़ा हो, आगामी वर्ष फ़र्स्ट का नतीजा सुनावेगा। इस तरह अपने यथार्थ की पहचान होने के पश्चात्, परमपद प्राप्ति की तरफ, फिर उसके आगे बढ़ते कदमों को न तो किसी का मोह या कर्म बंधन रोक सकेगा और न ही तन, मन, धन के मिट जाने का भय सता सकेगा। वह तो सर्व सर्वत्र उस ब्रह्मत्व का ही साक्षात्कार करते हुए, समस्त सांसारिक एषणाओं यानि इच्छाओं व सांसारिक सम्बन्धों से मुक्त हो जाएगा।

अंततः सजनों अधिक कुछ न कहते हुए हम तो आपको यही कहेंगें कि हे मानव ! अब रुक मत। रुक मत और हिम्मत न हार, जो बीत गई उसे भूल जा। याद रख अपने जीवन का असली मकसद सिद्ध करने हेतु अभी जीवन की काफ़ी घड़ियाँ बाकी हैं। अभी भी अपने जीवन के बचे हुए इन अनमोल क्षणों में, तूं परम पुरुषार्थ द्वारा, कलुकाल के दूषित, विकारी भाव-स्वभावों से अविलम्ब उबर कर, सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में विदित, आत्मिक ज्ञान का मनन करते हुए, भाव-स्वभावों की नवीन सुन्दर व निर्मल पोशाक धारण कर, सही अर्थों में सच्चरित्र इंसान बन सकता है। अतः घबरा मत! सजन श्री शहनशाह महाबीर जी के मार्गदर्शन में खुद पर विश्वास रख और अपने जीवन इतिहास को विशुद्धता व पवित्रता का रूप देने हेतु भरसक यत्न लड़ा! यत्न लड़ा। याद रख ए विध यत्न लड़ाने से, मनमत के प्रभाव से, आज जो परमपद रूपी मंज़िल तुझे दूर लग रही है, वह नज़दीक लगने लगेगी। अतः निर्विघ्न उस मंज़िल की प्राप्ति हेतु, गुरुमत अपना कर अर्थात् आत्मिक ज्ञान प्राप्ति द्वारा, खुद को विकारग्रस्त होने से बचा ले और सत्य-धर्म की साधना द्वारा अपने मन को संकल्प रहित रखते हुए, निरंतर निष्काम भाव से मंजिल की ओर बढ़ना आरम्भ कर दे। विश्वास रख! एकाग्रचित्तता से अपना ध्यान, मंज़िल की ओर साधे रखने से व सुनिश्चित रूप से उस ओर, अपना हर कदम विचारसंगत आगे बढ़ाने से आज नहीं तो कल मंज़िल मुट्ठी में होगी। याद रख यही परमपद प्राप्त कर अपना नाम रोशन करने की बात है।

इस संदर्भ में मत भूल कि चौरासी लाख योनियों की सजा भुगतने के पश्चात् ईश्वर की विशेष कृपा से यह अनमोल मानव चोला प्राप्त हुआ है। अतः उसे विषय विकारों में वृथा मत गँवा अपितु अपने अन्दर परमार्थ के प्रति रुचि उत्पन्न कर, इन्द्रिय निग्रह द्वारा अपने चंचल मन को वश में रखने की कला सीख। इस हेतु सजन श्री शहनशाह हनुमान जी का द्वारा मिलने के फलस्वरूप, सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में विदित शब्द ब्रह्म विचारों को पकड़ कर, उन पर अमल फरमाते हुए अपना जीवन बनाने का जो सौभाग्य प्राप्त हुआ है उसे परमात्मा की विशेष मेहर समझ और सुमति में रहते हुए संतोष, धैर्य, सच्चाई, धर्म के सवाल हल कर, सम पर खड़े होने के इम्तिहान में फ़र्स्ट का नतीजा दिखाने के लिए तत्पर हो जा। इस तरह ज़िंदगी की इस महान दौड़ में, एक धैर्यवान योद्धा की तरह हौसला रखते हुए व एक कर्त्तव्यपरायण सुपुत्र की तरह, सबके प्रति अपना फ़र्ज अदा धर्मसंगत, अकर्त्ता भाव से, हँस कर निभाते हुए, परमपद प्राप्त करने हेतु, अपने ख़्याल को जगत से आज़ाद रखने में निपुण हो जा। इस संदर्भ में शत्-प्रतिशत् कामयाबी हासिल करने के लिए, अब कुछ और सोचने के स्थान पर, केवल सजन श्री शहनशाह हनुमान जी के वचनों की पालना करना आरम्भ कर दे। याद रख कि वह ही इस शुभ कार्य की सिद्धि हेतु तेरे सच्चे साथी हैं। अतः प्रसन्नता में आ और उन पर ही श्रद्धा व विश्वास रखते हुए, निःसंकोच व बिना किसी तर्क-वितर्क यानि वाद-विवाद के आगे बढ़ और अपनी जिह्वा व ख़्याल को सांसारिक विषय-विकारों की तरफ से पलटा खवा, समभाव-समदृष्टि का सिंगार अर्थात् 'हम हैं सजन, तुम हो सजन' की भावात्मक नवीन पोशाक पहन, अपने

यथार्थ को प्रकाशित कर ले और समय रहते ही, अपने जीवन का अर्थ सिद्ध कर परमपद को प्राप्त करने का साहस दिखा। इस तरह अपने जीवन जीने के नकारात्मक नज़रिए को तबदील कर, उसे इस तरह सकारात्मक बना ले कि समभाव नज़रों में हो जाए और सजन वृत्ति पकड़ना सहज हो जाए। अपने जीवन उद्धार हेतु, इस विधान को स्वीकार, और समदृष्टि हो समदर्शन में स्थित हो जा। ए विध परमपद प्राप्त करने का सर्वोत्तम काम जो बाकी है, उसे अविलम्ब अब सिद्ध कर डाल और अपना सजन आप कहलाते हुए, जगत विजयी हो, रोशन हो जा। आप सब अपने जीवन के इस महान मकसद को प्राप्त करने में कामयाब होवो इन्हीं शुभकामनाओं के साथ।

दिनाँक 16 अप्रैल 2017 का सबक़

परमपद-3

साडा है सजन राम, राम है कुल जहान
अर्थात्
ईश्वर हमारा मित्र/प्रियतम सर्वव्यापक है, उसी को जानो, मानो व वैसे ही गुण अपनाओ।

शब्द है गुरु, शरीर नहीं है,
अर्थात्
ज्ञानी को नहीं ज्ञान को अपनाओ और निमित्त में नहीं नित्य में श्रद्धा बढ़ाओ।

इस पर सुदृढ़ता से डटे रह,
इस अटल सत्य पर स्थिर बने रहोः-
ओ३म् अमर है आत्मा, आत्मा में है परमात्मा

आओ अब जानते है कि श्री साजन जी परमपद की ओर अग्रसर होने के लिए हमें क्या युक्ति बता रहे हैंः-

सजन श्री शहनशाह हनुमान जी के मुख के शब्द

श्री साजन-'परवरदिगार'

परवरदिगार गरुड़ ते चलिया नी ओ जांदा,
ओ जांदा परवरदिगार।
ओ कैसे बुन्दे लटके,
हीरे लाल रत्न सिंगार।।

गरुड़ मुड़ मुड़ तक्के,
ओ जांदा ओ जांदा परवरदिगार।

हकूमत दी कुर्सी ते जब बैठ गये,
आलम देख के हर्षे।।

सुगम रस्ता रहे ने बता, ऊपर फुल वर्षे।
ओ चलया जांदा ओ जांदा परवरदिगार।।

सजन दयालु श्री रामचन्द्र जी कह रहे हैं:-

हनुमान जी एहो गल साजन जी नूं फ़रमा ही दियो।

जो गल हनुमान जी करन,
ओ हृदय विच वसा ही लवो।
जो जो बात ओ करनगे,
आलम नूं सुना ही दियो।।

अनपढ़े होय ने दाखिल विच,
अनपढ़े किस तरह पावनगे जित।
कोई घमण्डी कोई गुस्ताखी,
कोई बाणी बोल रहे अनुचित।।

समभाव समदृष्टि दे प्रतिकूल न चलियो,
समभाव नज़रों में कर सजन वृत्ति फड़ियो।
सजन भाव नज़रों में कर के सजनों।
सजन भाव प्रकृति में लियाईयो।।

प्रतिकूल गल बात करन,
प्रतिकूल करन सवाल।
असली वर्ताव समझ न सकन,
हर जगह खावन हार।।

जिह्वा गल बात उल्टे,
फिर ख़्याल नूं पलटा खवाओ।
हम हैं सजन तुम हो सजन,
एहो नवीन पोशाक सजनों पाओ, ते सजनां नूं पवाओ।।

फिर जिह्वा पलटा खा गई,
फिर ख़्याल नू पलटो ते पलटा खवाओ।
फिर समभाव समदृष्टि दा सिंगार सजनों पाओ,
चमको ते सजनां नू चमक दिखाओ।।

समभाव समदृष्टि दा परचा सुन के ते।
कई सजन प्रसन्न हुए ते कई गए ने घबरा।
कई सजन सोचां विच पड़ गए, ते कई दिल बैठे ढाह।।

(सजन श्री शहनशाह हनुमान जी कह रहे हैं)

ध्वनिः- साजन जग रिहा जग रिहा महान, साजन जग रिहा।
हर अन्दर एहो जगे, जगे एक समान साजन जग रिहा।
जग रिहा महान साजन जग रिहा।।

सजनों सजन श्री शहनशाह हनुमान जी ने परमपद प्राप्ति की जो युक्ति इस कीर्तन में बताई है, आप सब उसे अमल में ला सको, इस हेतु इस कीर्तन का भावार्थ आपको समझाते हैं, ध्यान से सुनोः-

सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में सजन श्री शहनशाह हनुमान जी कह रहे हैं कि श्री साजन - 'परवरदिगार' गरुड़ पर असवार हो, जब सर्गुण में पहुँच, हकूमत दी कुर्सी पर बैठ गए, तो सारी आलम, उनके हीरे लाल रत्नां जड़त श्रृंगार और बुन्दों की शोभा देखकर हर्षा उठी और फूलों की वर्षा करने लगी।

इस प्रसन्नता के माहौल में वह पब्लिक को जीवन बनाने का सुगम रास्ता बताने लगे।

उस सुगम रास्ते का बखान करते हुए सजन दयालु श्री रामचन्द्र जी कहते हैं कि सजनों जो युक्तियाँ सजन श्री शहनशाह हनुमान जी ने प्रदान की हैं, उन्हें हृदय में बसा लो व प्रत्येक इंसान को जाग्रति में लाने के लिए कुल दुनियाँ को सुना दो ताकि जो भी अनपढ़े अर्थात् अज्ञानी व घमंडी स्वभाव के कारण अनुचित वाणी बोल कर गुस्ताखियाँ कर रहे हैं व जिन के लिए इस अज्ञानमय अवस्था से उबर, किसी तरह से भी इस जगत पर विजय प्राप्त करने की संभावना नहीं, वे समभाव-समदृष्टि के प्रतिकूल चलना छोड़ दें और समभाव नज़रों में कर, सजन वृत्ति पकड़ने के लिए तत्पर हो जाएं। इस प्रकार वे सजन भाव नज़रों में करके सजन भाव प्रकृति में ले आएँ।

ऐसे सजनों का वर्तमान व्यवहारिक रूप बताते हुए व सभी को उनकी यथार्थता से अवगत कराने हेतु वह कहते हैं कि आज वे अज्ञानी जो भी बात करते हैं या सवाल उठाते हैं, वह समभाव-समदृष्टि के सबक़ के प्रतिकूल होती हैं। इसीलिए तो वे मानवता-धर्म अनुरूप आचार-संहिता समझ नहीं पा रहे और परस्पर वर्त-वर्ताव के समय कदम-कदम पर हार खा रहे हैं। इस तरह हृदयगत शांति के अभाव में वे द्वि-द्वेष व उससे उत्पन्न वैर-विरोध में फँस, झुखने-रोने से परिपूर्ण दुःखमय जीवन जी रहे हैं।

आगे वह ऐसे सजनों को समझौता देते हुए कहते हैं कि वे अपने मन में समभाव-समदृष्टि की युक्ति के सबक़ को प्रसन्नचित्तता से ग्रहण करने के प्रति रुचि पैदा करें व

सर्वहित की ख़ातिर अपनी जिह्वा से हर बात जाँच-तोल कर करें। यह अपने आप में स्वार्थ का कंटक भरा कष्टदायक रास्ता छोड़, परम अर्थ की दिशा में अग्रसर होने की बात है अर्थात् बुराई का रास्ता छोड़ अच्छाई व नेकी का रास्ता अपना कर, उन्नत अवस्था को प्राप्त होने की बात है। वह समझाते हैं कि इस परिवर्तन द्वारा ही संसार में भटका हुआ उनका ख़्याल पुनः अपने सच्चे घर की ओर रुख कर उसमें स्थित हो सकता है व वहीं से उचित ढंग से जीवन जीने हेतु आवश्यक परमार्थ ज्ञान प्राप्त कर, उस सद्ज्ञान के प्रयोग द्वारा आनन्दमय जीवन जीते हुए, परम लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है। इस महत्त्वपूर्ण उपलब्धि को दृष्टिगत रखते हुए वह ज़ोर देकर कहते हैं कि सजनों बहिर्मुखी ख़्याल को पलटा खवा कर, अंतर्मुखी बनाओ और इस परम पुरुषार्थ के परिणामस्वरूप समभाव-समदृष्टि का श्रृंगार पाओ व आप चमको ते सजनां नूं चमक दिखाओ।

इस तरह सजनों सजन दयालु श्री रामचन्द्र जी, हम सजनों को आध्यात्मिक विद्या के निपुणता से वर्त-वर्ताव द्वारा, उत्तम पुरुष बन कर, अन्यों को भी वैसा बनाने का पराक्रम दिखाने के लिए कह रहे हैं। अंत में वह कुल आलम को समभाव-समदृष्टि के सबक़ की अहमियत के प्रति सचेत करते हुए कहते हैं कि इस सबक़ को नई बात समझ कर घबराओ मत व न ही सोचों में जाओ अपितु प्रसन्नता में आकर, इस युक्ति को आत्मसात् करो और इस तरह अपने सच्चे घर की ओर उत्साहपूर्वक आगे बढ़ो। वह कहते हैं कि सजनों यही वह सुगम युक्ति है जिसको अपना कर, परमपद प्राप्त कर सकते हो और अपना जीवन सार्थक कर सकते हो।

अंत में सजन दयालु श्री रामचन्द्र जी की इतनी सुन्दर बात सुन कर आगे सजन श्री शहनशाह हनुमान जी कहते हैं कि इस युक्ति को अपना कर, सर्व-सर्व देखो। सबके हृदयों में साजन ही एक समान जग रहा है। अतः 'विचार ईश्वर है अपना आप' इस सत्य का बोध रखते हुए, उस सर्व महान को देखो और शक्तिशाली होकर अपना कारज सिद्ध करो अर्थात् परमधाम में स्थित हो विजयी हो जाओ।

सजनों यह है समभाव-समदृष्टि की युक्ति की महानता। इस महानता से परिचित कराने हेतु ही सजनों आज इस कक्षा के अंतर्गत, आपको इस कीर्तन का भावार्थ समझाया गया है ताकि आप भी युवावस्था का भक्ति-भाव अर्थात् समभाव-समदृष्टि की सुगम युक्ति अपना कर, इलाही श्रृंगार पहन सको और रूप, रंग, रेखा से रहित हो, सच्चे घर परमधाम का नज़ारा देख सको व सर्वव्यापी व त्रिकालदर्शी नाम कहा सको। सजनों क्या हकीकत में आप दिल से ऐसा करना चाहते हो?

हाँ जी।

तो फिर आपके उत्साहवर्धन के लिए हम सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अनुसार आपको बताते हैं कि परमधाम क्या है:-

सजनों जानो कि:-

परमधाम परमेश्वर रैहंदा,
ओ परमधाम जगमग जगे महान।
जगमग ओही प्रकाश,

ओ प्रकाश है जे कुल जहान।
परमधाम दा नज़ारा, है जे ओ जग सारा।
ओ परमधाम ओ परमधाम कैसा लगे प्यारा।।

सजनों इस बात को कोई आत्मज्ञानी ही समझ सकता है कि ब्रह्म सत्ता के रूप में परमधाम का नज़ारा कुल जहान में भासित है। जानो जो सजन भाव को प्रकृति में ला, इस सत्य का बोध कर लेता है, उसका फिर कोई वैरी-दुश्मन व शत्रु नहीं रह जाता अपितु सर्व एकात्मा के भाव पर परिपक्व होने के कारण, सब उसके व वह सबका सजन बन जाता है। इस प्रकार सारे भ्रम मिट जाने पर फिर, उसे कही भी भटकने की आवश्यकता नहीं रहती अपितु कुल जहान उसे निर्मल भासता है और वह घर-बैठे-बिठाए सर्गुण-निर्गुण, निर्वाण व परमधाम के नज़ारे देखता हुआ इस जीवन का आनन्द मानता है। निःसंदेह ऐसा होने पर वह सजन जान जाता है कि हकीकत में परमधाम में रहने वाला परब्रह्म अर्थात निर्गुण और निरुपाधि ब्रह्म इस जगत में विशेष होते हुए भी इस जगत से परे है और हर जीव के लिए सर्वश्रेष्ठ पद पर आसीन रहने हेतु, उसकी हर आज्ञा को, बगैर किसी परिवर्तन के सम्मान प्रदान करने का विधान है। याद रखो, इस विधान की युक्ति संगत पालना करने वाला इन्सान ही अपने जीवन के सर्वोच्च लक्ष्य अर्थात् मोक्ष को प्राप्त करने का अधिकारी सिद्ध हो सकता है। तभी तो इस कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है:-

परमात्मा नाम कहावे ओ परमात्मा,
परम पद ओ पावे परम पद पावे।

परमधाम दा नज़ारा ओ कैसा लगे प्यारा।
ओ परमधाम, परमधाम परमेश्वर रैहंदा।।

कैसा सुन्दर चमके उजियाला ओ परमधाम।
ओ परमधाम है ओ पवित्र अस्थान,
ओ परमधाम, ओ परमधाम।।

इस संदर्भ में सजनों जानो कि मोक्ष ही जीवन का सबसे उत्तम फल व जीवन का परिणाम है। इस परिणाम को प्राप्त करने वाला श्रेष्ठ मानव अत्याधिक आदर और सम्मान के योग्य होता है। युग पुरुषों का उदाहरण इस संदर्भ में आपके समक्ष ही है। ऐसे श्रेष्ठ मानव उस परम अथवा सर्वोच्च सत्ता या अधिकार को प्राप्त कर लेते हैं जो सबसे बढ़कर हो तथा जिसके ऊपर अन्य कोई सत्ता या शक्ति न हो। तभी तो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है:-

जेहड़ा परमधाम और अपने प्रकाश नूं पावे।
ओ परमेश्वर नाम कहावे, ओ परमेश्वर नाम कहावे।।

इस अवस्था में सजनों सुरत शब्द की पटरानी बनकर विचरती है और इस तरह एकरस बने रहने पर ही उसका पूर्ण विकास सम्भव हो पाता है। हम यह भी कह सकते हैं कि वह उस सन्यासी की तरह होता है जो ज्ञान की परम अवस्था को प्राप्त कर लेता है और जिसकी छवि देखते ही बनती है। फिर जैसे ही उसे ब्रह्म और जीव की अभेदता का सत्य समझ में आ जाता है तो उसे परमानन्द अर्थात ब्रह्म के अनुभव का सुख स्वतः ही प्राप्त हो जाता है। इस तरह वह जीव और ब्रह्म सम्बन्धी ज्ञान रखने वाला आत्मज्ञानी उत्तम

भाव वाला होता है अर्थात् परोपकारी होता है और परोपकार प्रवृत्ति पर स्थिरता से बने रहने को ही उत्तम प्रकार की सम्पत्ति मानता है। इसीलिए वह परमार्थता अनुसार सत्य-भाव से जगत में निर्लिप्तता से विचरता है। यह सुनने के पश्चात् सजनों हमारे लिए भी यही बनता है कि हम परमार्थी अर्थात् मोक्ष चाहने वाले परोपकारी बनें और भूलकर भी परमेश्वर की आज्ञाओं के प्रतिकूल आचरण न करके एक नेक इन्सान बनें। जानते हो फिर ऐसा होने पर क्या होगाः-

फिर परमधाम दा देखे ओ नज़ारा,
कैसा लगे ओ प्यारा बिन सूरजों है प्रकाश।
कैसी सुहावनी है ओ चमक चमक रिहा जग सारा।
जग अन्दर चमके ओ सिरजन हारा।।

ओ परमधाम में राहवे, कैसा ओ सुहावे।
आहा परमधाम ओ राहवे,
कैसा ओ सुहावे कुल दुनियां में।
कैसा अजीब ओ चानणा दिखावे कुल दुनियां में।।

परमधाम कोई विरला पावे,
प्रकाश नाल प्रकाश कोई सजन कहावे।
आहा ओ कहावे कैसा ओ सुहावे,
परमपद ओ पावे कैसा ओ सुहावे।।

अंत में सजनों जान लो कि ब्रह्म ही सत्य है, सत्य ही ब्रह्म है। सजन ही सत्य है, सत्य ही सजन है। साकार-निराकार वह ब्रह्म ही ब्रह्म है। अतः अपने इस नित्य ब्रह्म स्वरूप की पहचान करने हेतु जाग्रति में आओ, जाग्रति में आओ और जाग्रति में आकर अपना जीवन सफल बनाओ।

दिनाँक 23 अप्रैल 2017 का सबक़

परमपद-4

साडा है सजन राम, राम है कुल जहान

अर्थात्

ईश्वर हमारा मित्र/प्रियतम सर्वव्यापक है, उसी को जानो, मानो व वैसे ही गुण अपनाओ।

शब्द है गुरु, शरीर नहीं है,

अर्थात्

ज्ञानी को नहीं ज्ञान को अपनाओ और निमित्त में नहीं नित्य में श्रद्धा बढ़ाओ।

इस पर सुदृढ़ता से डटे रह,
इस अटल सत्य पर स्थिर बने रहोः-

ओ३म् अमर है आत्मा, आत्मा में है परमात्मा

सजनों सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में सजन दयालु श्री रामचन्द्र जी कह रहे हैंः-

महाबीर जी ने साजन जी नूं रस्ता बताया निष्काम।
सुन्दर नाम और युक्ति दे के,
कैसा ओ चमके परमधाम।।

इसी संदर्भ में सजनों गत दो सप्ताहों से हमें जनाया जा रहा है कि परमपद क्या है और अपने असली घर परमधाम अर्थात् सुखधाम पहुँचने के लिए हमें कैसे अपने श्रेष्ठतम मार्गदर्शक सजन श्री शहनशाह हनुमान जी द्वारा दर्शाए गए

नाम, ध्यान और निष्काम रास्ते पर चलते हुए विचार शब्द को पकड़ कर व समभाव-समदृष्टि की युक्ति को धारण कर, सार्थक दिशा में कदम बढ़ाना है। सजनों याद रखो कि जो भी निष्कामी सत्य-धर्म के पथ पर अटलता से स्थिर बने रहते हुए इस अनमोल मानव जीवन के प्रयोजन को सिद्ध कर सुखधाम पहुँच, परमपद प्राप्त कर लेता है, वह अखंड शांति व आनन्द का अनुभव कर, विश्राम अवस्था में आ कह उठता हैः-

श्री राम हरे, सुखधाम हरे निष्काम हरे, विश्राम हरे।
ब्रह्मज्ञान हरे, परमधाम हरे,
ओ३म् हरी ओ३म्, ओ३म् ओ३म् हरे।।

अर्थात् अगर हमारा ख़्याल महाराज जी के साथ जुड़ा हुआ है तो हम सुखमय हैं। सुखमय का अर्थ है हमारे पास संतोष है यानि सब कुछ है। जब हमारे पास सब कुछ है तो हम निष्काम हैं यानि कर्मफल यथा हर्ष-शोक, संयोग-वियोग आदि से रहित है। सजनों कर्मफल से मुक्ति ही जीव के विश्राममय होने का द्योतक है। इस विश्राममय अवस्था में ही हम ब्रह्मज्ञान प्राप्त कर सकते हैं और अपने असली घर परमधाम में स्थित रह सर्व-सर्वत्र अपने असलियत ओंकार स्वरूप का दर्शन कर सकते हैं। ऐसा होने पर ही सजनों फिर कह सकते हैंः-

सत्-चित्त आनन्द स्वरूप मेरा,
ओजी सत् हरे सत् सत् हरे।
ओ३म् हरी ओ३म् ओ३म् ओ३म् हरे,
ओ३म् हरी ओ३म्, ओ३म् ओ३म् हरे।।

इस प्रकार अपने यथार्थ सर्वनिवासी स्वरूप का बोध होना, आत्मा-परमात्मा की अभिन्नता का सत्य उजागर होने का परिचायक होता है। इस सत्य के प्रगट होने पर सजन की सुरत कंचन हो जाती है और हृदय विदित, परब्रह्म-परमेश्वर के शब्द ब्रह्म विचार, स्वतः ही प्रकाशित हो उठते हैं। सजनों इस अद्‌भुत घटना के पश्चात् सजन के लिए अपनी बौद्धिक शक्ति द्वारा आत्मिक ज्ञान को यथा ग्रहण करना सहज हो जाता है। इस संदर्भ में सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ कहता है:-

ओ इन्सान सब कुछ पा सकता है,
जो पा लवे आत्मिक ज्ञान।
आवागमन उस सजन दा मिट गया,
मेल उसने खा लिया।
ओ पहुँच गया परमधाम,
ओ पहुँच गया परमधाम।।

इस प्रकार सजनों ऐसा आत्मज्ञानी फिर सर्गुण-निर्गुण सम कर जानते हुए, अर्थात् अनेक का एक व एक का अनेक होते हुए, इस सत्य का बोध कर लेता है कि यह सारा विश्व रूपी खेल मेरा ही रचाया हुआ है और मैं महान ही हर वस्तु में चमक रहा हूँ। उसकी जोत फिर निर्वाण में चमक दिखाती है और उसके लिए सप्तद्वीप व गगनमंडल में अफुरता से विचरना सहज हो जाता है। इस प्रकार वह सजन गगनमंडल में जहाँ रूप, रंग, रेखा नहीं महाराज जी से मेल खा जाता है। यह होता है बिन औखियाइयों, बिन खेचलों, बिन तकलीफों जन्म की बाज़ी को जीत लेना अर्थात्

परमधाम पहुँच जाना। तभी तो सजनों कहा गया है कि:-

आत्मिक ज्ञान उसने पा लिया,
ओहदी जोत जगे निर्वाण।
ओहदा रूप, रंग न रेखा राहवे,
ओ पहुँच गया परमधाम।
परमधाम ओ पहुँच गया,
बेअन्त है ओहदा नाम।।

अतः सजनों जानो कि सजन श्री शहनशाह महाबीर जी की महिमा अपरम्पार है। जो भी उनकी चरण-शरण में आता है व उन्हीं की नीतियों व रीतियों के वर्त-वर्ताव पर सुदृढ़ बना रहता है, उस भाग्यशाली का ही बेड़ा पार होता है और वह ही आत्मा में से परमात्मा रूपी हीरा ढूँढ सर्वव्यापी नाम कहलाता है। बस फिर तो धर्म की साधना ही उसकी आराधना होती है यानि मानवता का प्रतीक वह मानव सत्य का व्यापार करते हुए सदा धर्म की ही बात करता है। जानो ऐसा सत्यनिष्ठ व धर्मपरायण निर्विकारी इंसान ही इस भवसागर को, खुद निर्विघ्न पार कर पाता है और अपने संग-संग, कुल संसार को भी, अपना असलियत स्थान अर्थात् परमपद प्राप्त करने के लिए प्रेरित कर सकता है। इस उत्तम उपलब्धि को प्राप्त करने हेतु सजनों अब तो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में वर्णित इस अनमोल संदेश को मान लो:-

इक समझ लवो कुल दुनियां अन्दर आ आ आ आ ।
ते दूजा राहवे न नामों निशान सजनों।
फ़र्ज़ अदा वलों जित पाये के ते,
पहुँच जाओगे परमधाम सजनों।।

इस हेतु सजनों सच्चेपातशाह जी कहते हैं कि अचेतन अवस्था को प्राप्त हो, संकटों भरा जीवन जीने के स्थान पर, संकटटारी सजन श्री शहनशाह महाबीर जी के चरणों मे प्रेम बढ़ाओ व इस तरह उनकी युक्तियाँ अपनाकर, परमधाम की सीढ़ी चढ़ जाओ। इस प्रकार उस परमपिता के साथ अपने नैन जोड़, सूक्ष्म अन्दर प्रवेश करो और बिन सूरजों प्रकाश से, अपने ह्रदयगत, कलुकाल के अंधकार को विध्वंस कर दो। याद रखो सजनों यदि आत्मनियंत्रण द्वारा, यह पराक्रम सिद्ध कर दिखलाया तो सहज ही सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अनुसार कह उठोगेः-

एहो परमधाम दा है ओ नज़ारा, हम प्रकाशित हैं।
हम प्रकाशित हूँ, हम प्रकाशित हैं, हम प्रकाशित हूँ।।

मत भूलना सजनों कि यह अविश्वसनीय पराक्रम दिखा पाने हेतु हमें सजन श्री शहनशाह हनुमान जी, जो चार वेद और छः शास्त्रों के महरम हैं, उनकी बताई हुई समभाव-समदृष्टि की युक्ति का अनुशीलन करने में पारंगत बनना होगा क्योंकि सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ कह रहा हैः-

समभाव-समदृष्टि वल्लों सजन जेहड़ा कर लैंदा पहचान जी,
ओ कर लैंदा पहचान जी।
पहुँच गया ओ परमधाम, ओ मेरे साजना,
रौशन कर लैंदा नाम ओजी ओजी।

अतः इस युक्ति के अनुसार सजनोंः-

1. सर्वप्रथम हमें जिह्वा को स्वतन्त्र करना होगा यानि झूठ

की परतन्त्रता छोड़, सत्यवादी बनना सुनिश्चित करना होगा ताकि हमारे मुख से वही सकारात्मक बात निकले जिसका अर्थ स्पष्ट हो। याद रखो ऐसा सुनिश्चित करने पर ही परस्पर वार्तालाप करने के दौरान हमारे मन में, एक-दूसरे के प्रति किसी प्रकार का भ्रम व कटुता उत्पन्न नहीं होगी और जैसी मनोभावना होगी उसका प्रत्यक्षीकरण सहज ही हो जाएगा। इस प्रकार एक-दूसरे की बात को पूरा सम्मान मिलेगा और सम्बन्धों में एकमतता बनी रहेगी।

2. फिर हमें अपने संकल्प को स्वच्छ करना होगा अर्थात् अपने इरादे व विचार को पवित्र व निष्कपट रखना होगा। इस हेतु हमें सतत् रूप से अपने अंतर्मन में झाँक कर, पाई बुराईयों पर आत्मनियंत्रण द्वारा फतह पा, स्वयं का सुधार करने के स्वभाव में ढलना होगा। इस संदर्भ में हमें यह याद रखना होगा कि जो इंसान बाहर देखता है वह केवल सपनों के अतिरिक्त कुछ भी नहीं संजो सकता परन्तु जो अंतर्मन में देखता है वही निरंतर जाग्रत अवस्था में बना रह, यथार्थता पूर्ण जीवन जी सकता है।

3. तत्पश्चात् हमें अपनी दृष्टि को कंचन रखना होगा अर्थात् हमारा दृष्टिकोण यानि देखने, सोचने व समझने का तरीका सकारात्मक होना चाहिए। यहाँ दृष्टि का अर्थ स्पष्ट करते हुए बता दें कि दृष्टि वह शक्ति या वृत्ति है जिससे मनुष्य अथवा जीव किसी वस्तु के होने की स्थिति जान सकता है व एक निगाह द्वारा उसका अवलोकन कर, उसके रूप, रंग आदि के ज्ञान से परिचित हो सकता है। सजनों दृष्टि के देखने के नज़रिए अनुरूप ही व्यक्ति के मन में उस वस्तु की

एक विशेष पहचान बनती है व उसके प्रति सकारात्मकता या नकारात्मकता का भाव पनपता है। अतः अपनी दृष्टि को कंचन रखने हेतु हमें समभाव नज़रों में कर व सजन वृत्ति फड़, सजन भाव प्रकृति में लाना होगा।

4. परस्पर एक-दूसरें का अभिवादन करते हुए, एक ही परमसत्ता का सर्व में अनुभव करना होगा और वार्तालाप के दौरान अपने ख़्याल व ध्यान को उसी असलियत प्रकाश में ठहराए रखना होगा। इस तरह प्रत्येक की हृदयगत जीवात्मा का, अपने हृदय से यानि आत्मीयता के भाव से सम्मान करना होगा। निःसंदेह ऐसा करने से हम अखंड एकता में बने रह सकेंगे।

5. इन्द्रिय लिप्सा से बचने हेतु, हमें संतोष-धैर्य अपना कर, सच्चाई-धर्म के निष्काम रास्ते पर सुदृढ़ता से बने रहना होगा। इस तरह अपने मन को हर विषय-विकार से आज़ाद रख, सदाचारिता में बने रहना होगा अन्यथा दुराचारी, अत्याचारी व व्यभिचारी चलन अपनाने पर, वृत्तियाँ विकृत हो जाएँगी और हम अपनी सुध-बुध खो बैठेंगे। फलतः आधि-व्याधि के रोग सताने लगेंगे और बुद्धि भ्रमित हो जाएगी। इस तरह जगतीय मिथ्या धारणा के प्रभाव से हम पागलों जैसा अमानवीय व्यवहार करने लगेंगे। यह सजन-पुरुष बनने के स्थान पर, दुष्ट इंसान बनने का द्योतक होगा। इस तरह हम जीवन का लक्ष्य यानि परमपद प्राप्त करने से वंचित हो जाएंगे और जन्म-मरण के चक्रव्यूह से आज़ाद नहीं हो पाएंगे।

6. संकल्प-विकल्प से छुटकारा पाने हेतु, हमें जीवन में जो भी भूतकाल में अच्छी-बुरी घटनाएँ घटी हैं या किसी के प्रति मनमुटाव घर कर गया है, उन समस्त पुरानी बातों को भूलना होगा और भूल में ही प्रसन्नता का अनुभव करना होगा। निःसंदेह तभी हम अफुर अवस्था में रहते हुए वर्तमान परिस्थितियों व उपलब्ध साधनों का उचित ढंग से उपयोग करते हुए, प्रसन्नचित्तता से अपने जीवन लक्ष्य को सिद्ध करने का पराक्रम दिखा पाएंगे।

7. सतर्कता से विचारयुक्त रास्ता अपनाते हुए, जीवन की हर ऊँच-नीच में यानि अच्छी-बुरी परिस्थिति में सम यानि स्थिर बने रहना होगा क्योंकि ईश्वर कहते हैं किः-

दुःख-सुख जेहड़ा सम कर जाणे,
असलियत अपनी ओ पहचाणे।
असलियत अपनी जो पहचान गया,
हां.. हां.. हां.. हां.. हां.. हां..।
ओही परमधाम दियां मौजां माणे।।

सजनों यह है मुक्तसर में अपना जीवन बनाते हुए जन्म-मरण के चक्रव्यूह से आज़ाद होने का स्पष्ट व सरलतम तरीका। अतः प्रतिदिन एकांत में बैठकर उपरोक्त बिन्दुओं पर विचार करो और तत्पश्चात् इन्हें अपनी व्यावहारिकता में ले आओ।

इस संदर्भ में सजनों जानो कि आद्-अन्त से, सर्व-सर्व वही ब्रह्म ही ब्रह्म सुहा रहा है व हर अन्दर प्रकाश रहा है पर दुनियां में कोई विरला ही इस सत्य का बोध कर, अपनी वृत्ति और स्मृति को निर्मल रखते हुए, उच्च बुद्धि, उच्च ख़्याल

हो, ब्रह्म पदवी पा, उस दर्शन के साथ दर्शन हो सकता है। इस तरह फिर मन-वचन-कर्म द्वारा उसी ब्रह्म-भाव की मर्यादा में बना रह, विश्राम से जीवन जीते हुए, उस अपर-अपार, परब्रह्म-परमेश्वर, जो आत्मा में परमात्मा के रूप में व्याप रहा है, उससे मेल खाकर, ज्योति नाल जोत हो जाता है। सजनों इसी महत्ता के दृष्टिगत, हम सबको ब्रह्म शब्द को उच्चारने का आवाहन् दिया जाता है ताकि हम सब उस सर्व आधार की अपरम्पार महिमा को जान सकें और ब्रह्म जो सम, संतोष, धैर्य का सिंगार है, उस शब्द विचार को ग्रहण कर, अपना आप पहचान सकें। इस प्रकार सजनों समभाव को पकड़, सम का वर्त-वर्ताव करते हुए समदृष्टि हो जाएं और अक्लमंद नाम कहाएँ। सजनों यह होगा समभाव-समदृष्टि पहचान कर, जन्म-मरण, रोग-सोग, ख़ुशी-गमी, गरीबी-अमीरी में सम रहते हुए, परमेश्वर की जगत रूपी बेअन्त लीला की रमज़ जान जाना व त्रिकालदर्शी हो, उस ऊँचे स्थान अर्थात् परमधाम का नज़ारा देखने के योग्य बन जाना। ऐसा सजन फिर सहज ही कह उठता है:-

परमधाम है घर हमारा, परमधाम में हम रहते हैं।
कैसे प्रसन्नता में आए, कैसे ओ सुहाये ओ सुहाये।।
परमधाम दा नज़ारा हमें कैसा लगे प्यारा।
रूप रंग न रेखा राहवे, बिन सूरजों उजियाला।
त्रिकालदर्शी ओ नाम कहलाते हैं, कहलाते हैं, कहलाते हैं।।
आहा ओ परमधाम, वाह वाह ओ परमधाम।।

अंत में सजनों जानो कि सजन श्री शहनशाह हनुमान जी अमर हैं और वही हम भवसागर में डूबते हुए

कलुकालवासियों को अमरता का पाठ पढ़ा, परमधाम पहुँचने का सरल मार्ग दिखा रहे हैं। अतः सजनों अपने व अपनी कुल के तारक बन, इस भवसागर को पार करने हेतु, उन्हीं के वचनों को एकमात्र सहारा मानो और मूल मंत्र शब्द को गुरु मानकर, ईश्वरीय हुक्म को प्रवान करो। इस संदर्भ में सजनों परमेश्वर कहते हैं किः-

एहो तरीका वर्ताव में लियाओ,
फिर परमेश्वर नाल मेल ओ खाओ।
ज्योति नाल मेल ओ खा के,
परमधाम दा नज़ारा ओ पावे।
प्रकाश नाल प्रकाश हो के रौशन नाम कहावे,
रौशन नाम कहावे।।

ऐसा करने पर ही अर्थात् उन्हीं के वचनों की मर्म जान, निष्काम रास्ता पकड़ने पर ही संतोष, धैर्य, सच्चाई, धर्म की सुन्दर पोशाक पहन, इन्द्रियजीत हो, मन पर विजय प्राप्त कर सकोगे और ब्रह्मचर्य का अतुलित तेज व ओज धारण कर, अपनी अजरता-अमरता का अनुभव करते हुए, निषंग इस जगत में विचर सकोगे। इस तरह फिर सहसा ही कह उठोगेः-

परमधाम दा नज़ारा है जे ओ किहो जिहा ओ सुहावना।
आहा प्रकाशित हाँ प्रकाशित हूँ,
प्रकाश ओ चार चुफेर नज़र आवना।।

अतैव सजनों ईश्वर आपको अपने परमधाम में आमंत्रित करते हुए पुनः कह रहे हैंः-

आइये जी आइये, आइये पधारिये
आइये जी आइये, साज हमारा पाइये।
यह देखो जी परमधाम है,
परमधाम दे नज़ारे नूं पाइये।
सर्वव्यापी नाम कहाइये,
त्रिकालदर्शी नाम कहाइये।।

अंत में सजनों अगर हकीकत में परमपद को प्राप्त करने के इच्छुक हो तो फिर अपनी इच्छा में प्रबलता लाओ। याद रखो प्रबल इच्छा द्वारा ही अपने ख़्याल का झुकाव संसार की तरफ़ से हटा कर परमात्मा की तरफ़ जोड़ सकोगे। एक बार सजनों यदि आप ऐसा करने में सफल हो गए यानि आपने इस विषय की गहराई में उतरना आरम्भ कर दिया और परमतत्व से अपने ख़्याल को जोड़ने में कामयाब हो जाओगे तो निश्चित ही फिर आप उस परमात्मा की सार को पा लोगे और तत्वज्ञानी हो आत्मज्ञानी बन जाओगे। सजनों आत्मज्ञानी बनने का अर्थ है अपने यथार्थ का बोध रखने वाला बन जाना और फिर उसी यथार्थता को अपना स्वाभाविक गुण बनाकर इस जगत में निषंग विचरना। अतः सजनों इस उत्तम उपलब्धि हेतु हर तरफ से अपना ध्यान हटाकर, पूरी दिलचस्पी व लगन से इस कार्य सिद्धि में जुट जाओ और शत् प्रतिशत् कामयाब होने के लिए, चारों पहर यानि हर समय, उठत-बैठत-स्वप्न-जाग्रत लक्ष्य पर दृष्टि टिकाए रखो। उसके अतिरिक्त और कुछ भी न सोचो।

इसका अर्थ कदाचित् यह नहीं कि संसारी कार्यव्यवहार व अपने फ़र्ज़ अदा की तरफ से मुख ही मोड़ लो अपितु कहने का आशय यह है कि दुनियावी समस्त कार्यव्यवहार करते हुए हथ कार वल व चित्त यार वल यानि प्रभु वल साधे रखते हुए जो करने की ठानी है उसे पूरा करके ही दम लो। सजनों यह है इच्छा की प्रबलता का मापदंड। इस मापदंड पर यदि खरे उतर गए तो परमपद प्राप्त करने के पश्चात् कुछ अन्य करने की आवश्यकता नहीं रहेगी। लक्ष्य अपने आप सिद्ध हो जाएगा। आप सब अपने जीवन के इस मकसद को पाने में कामयाब हों इस हेतु हमारी शुभकामनाएँ आपके साथ हैं।

दिनाँक 30 अप्रैल 2017 का सबक़

आत्मनिरीक्षण

साडा है सजन राम, राम है कुल जहान
अर्थात्
ईश्वर हमारा मित्र/प्रियतम सर्वव्यापक है,
उसी को जानो, मानो व वैसे ही गुण अपनाओ।

शब्द है गुरु, शरीर नहीं है,
अर्थात्
ज्ञानी को नहीं ज्ञान को अपनाओ और निमित्त में नहीं
नित्य में श्रद्धा बढ़ाओ।

इस पर सुदृढ़ता से डटे रह,
इस अटल सत्य पर स्थिर बने रहोः-
ओ३म् अमर है आत्मा, आत्मा में है परमात्मा

सजनों सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया हैः-

आत्मिक ज्ञान दी जिस सजन नूं होवे चाह,
उस सजन दी जिह्वा न झुखे, संकल्प न झुखे,
झुखना है फुरना,
ओ ओ ओ ओ ओ।

सजनों झुखना ओ साडा रोना सी,
ओ झुखना साडा मुक ही गया,
ओ रोना साडा हट ही गया।
श्री राम रूप ओ सजनों सारी नगरी है,
जनचर बनचर जड़ चेतन, कुल सारी सगली है।
जनचर बनचर जड़ चेतन, सारी सगली है।।

ओ रोना साडा मुक ही गया,
ओ झुखना साडा हट ही गया।।

सजनों हम सब कितने भाग्यवान हैं जिन्हें न केवल सजन श्री शहनशाह हनुमान जी का द्वारा व जीवन बनाने की अनमोल युक्ति मिली हुई है अपितु समय रहते ही उन युक्तियों को अमल में लाकर, भक्ति-शक्ति की ताकत से, अपने जीवन का परम प्रयोजन, इसी जीवनकाल में सिद्ध करने का अवसर भी प्रदान किया जा रहा है। निःसंदेह सजनों इस हेतु हम गिरते हुओं को, बार-बार कई तरीकों से उत्साहित भी किया जा रहा है और साथ-साथ कदम-कदम पर विचारसंगत आत्मनिरीक्षण करते हुए आत्मनियंत्रण द्वारा आत्मसुधार कर सफलता के चरमोत्कर्ष तक कैसे पहुँचना है, इसके प्रति भी स्पष्टता दी जा रही है।

सजनों इतना सब होते हुए भी यदि हम अपने आप को लक्ष्य की तरफ अभिप्रेरित नहीं कर पाए तो फिर भला कोई कैसे हमें यम की त्रास से बचाएगा? सजनों उस शक्तिशाली पिता की संतान होने के नाते अपनी लापरवाही के कारण किसी के साथ भी ऐसा होना कदाचित् शोभा नहीं देता। अतः इस दुर्भाग्यशाली परिणाम को प्राप्त होने से पहले ही सजनों सचेत हो जाओ व हिम्मत में आओ, हिम्मत में आओ और 'हथ कार वल व चित्त यार वल' रखते हुए अर्थात् अपने जीवन कर्त्तव्य धर्मसंगत हँस कर निभाते हुए, चौबीस घंटे अक्षर के अजपा जाप द्वारा, अपने मन को सांसारिक फुरनों से आज़ाद रखो। इस तरह परमपद को प्राप्त कर अपना जीवन सफल बनाओ। इस संदर्भ में सजनों हम सब यह

करने में सफल हो पाएं, इस हेतु सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ हमें उत्साहित करते हुए कह रहा है:-

सजनों इक निगाह इक दृष्टि दे विच खलोना जे।
महाराज नाल मेल खा के महाराज हुण होना जे।
महाराज हुण होना जे, महाराज हुण होना जे।।

निःसंदेह सजनों यदि जप-तप-संयम से आज़ाद हो ऐसा कर दिखलाया तो कलुकालवासियों के हृदयों में सतवस्तु के प्रकाश को उजागर होता देख, कुल त्रिलोकी दंग रह जाएगी। आओ इसी संदर्भ में अपने हृदय में इस शुभ कार्य की सिद्धि हेतु उमंग पैदा करने के लिए सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में विदित सजन दयालु श्री रामचन्द्र जी के मुख का यह कीर्तन सुनते हैं:-

श्री रामचन्द्र जी के मुख के शब्द

कैसी हिम्मत दिखाई ओहो,
कैसी कीती है चढ़ाई वाह वाह।।
देखो विलम्ब ना लाई ओहो,
कैसी है ओ रोशनाई वाह वाह।।
इक संग शक्ति ते इक संग लक्ष्मी विच साजन हमारा।
मिटे अन्धेरा आवे चानणा नाले होवे सवेरा।।
हटे रात उमस्या वाली सतवस्तु पाया ए फेरा।
सर्गुण विच सतवस्तु राहवे सच खंड हमारा डेरा।।
ऐसा साज मेरा हर वस्तु पीत पीताम्बर है जेहड़ा।
संख चक्र गदा पद्यमधारी यह ही तो नाम है मेरा।।
उस प्यारे दे मैं संग राहवां सतवस्तु दा साज पावे ओ जेहड़ा।
सतवस्तु दे सतवादी होवन कैसा राज है मेरा।।

सतवादी सच खंड ब्रह्माण्ड हर अन्दर स्थान है जेहड़ा।
हां मैं सर्वव्यापी युग युग रोशन नाम है मेरा।।

हनुमान जी श्री साजन जी को कह रहे हैं

ध्वनिः-
कलुकाल हटने दा आप नूं क्या है फिकर।
मैं पिता हूँ संग तुम्हारे, फिकर उसनूं जेहड़ा पिता मुत्तूं है पुत्र।
कलुकाल हटने दा आप नूं क्या है फ़िकर।।

सजनों हम सब भी अपना जीवन बना कर हर चिंता व फिक्र से रहित हो जाएं, इस हेतु निःसंदेह हमें कदम-कदम पर, विचार शब्द को पकड़ते हुए, जो भी यहाँ बताया जाता है व करने के लिए कहा जाता है, उस विषय पर सत्यता से आत्मनिरीक्षण कर, आत्मसंयम रखने की आवश्यकता है ताकि हम में से कोई भूल से भी किसी भी प्रभाववश, समभाव-समदृष्टि के प्रतिकूल चलन न अपना बैठें और इस तरह आत्मपद प्राप्ति से वंचित न रह जाएं। इसी परिप्रेक्ष्य में सजनों गत चार सप्ताहों में, परमपद प्राप्त करने के लिए, हमें जो भी करने के लिए कहा गया है, उसे हम सफलतापूर्वक कितना अपना पाए हैं, इस विषय में अपनी उन्नति का जायजा लेते हैंः-

1. क्या जीवन लक्ष्य पाने हेतु आवश्यक शब्द ब्रह्म विचार रूपी दात को प्राप्त करने के लिए हमने सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ को नियमपूर्वक पढ़ने की क्रिया प्रारम्भ कर दी है और एक अच्छे छात्र की तरह उससे प्राप्त सीख का मनन करके उसके अर्थों को प्रयोग में लाने की सही रीति समझ पा रहे हैं?

2. क्या हमने एक सत्यनिष्ठ व धर्मपरायण सुपुत्र की तरह, अपने निर्विकारी स्वरूप में स्थित रहने हेतु इस ग्रन्थ में वर्णित,

अपने परमार्थी पिता सजन श्री शहनशाह हनुमान जी की आज्ञाओं का पालन, बिना किसी तर्क-वितर्क के, समर्पित भाव से करना, आरम्भ कर दिया है?

3. अपने अंतर्मन में छिपे सूक्ष्म से सूक्ष्म विकारों को दूर भगाने के लिए क्या हम प्रतिदिन जिस तरह हमें बताया गया था, रात्रि में सोने से पूर्व अपनी सारी दिनचर्या का अवलोकन कर, आत्मनिरीक्षण करने की क्रिया नियमित रूप से सही प्रकार से कर रहे हैं? इस प्रकार अपनी जाँचना तुलना कर विचार में तुल खड़ो एक विवेकशील इंसान की तरह, इस जगत में निर्लिप्तता से विचर पा रहे हैं?

4. क्या हम तीन वक्त का अखंड पाठ ठीक से करते हुए, सजन श्री शहनशाह हनुमान जी द्वारा बताए नाम, ध्यान और निष्काम रास्ते को पकड़ कर, कुल दुनियां में और जनचर, बनचर, जड़-चेतन में एक प्रकाश समझते हुए, अपने मन पर व इस जगत पर फ़तह पाने हेतु, अपने आत्मिक बल का उचित प्रयोग कर पा रहे हैं?

5. उपरोक्त यत्न में सफलता प्राप्त करने हेतु क्या अब हम हर एक के साथ जो भी बातचीत करते हैं, वह विचार कर करते हैं और विचार से ही उसका उत्तर देते हैं? इस तरह क्या हम अपनी जिह्वा को स्वतन्त्र कर अपने मुख से सकारात्मक, सार्थक व स्पष्ट शब्दों का ही उच्चारण कर एकता, एक-अवस्था में बने रह पा रहे हैं?

6. क्या अपने संकल्प को स्वच्छ कर, उसका झुखना व रोना बंद करने के लिए, हम एक विचारयुक्त इंसान की तरह

मूलमंत्र आद् अक्षर के अजपा जाप द्वारा, अपना संकल्प सदा प्रभु के साथ जोड़े रख पा रहे हैं यानि क्या हम जिस तरफ संकल्प, उसी तरफ दृष्टि को साधे रखते हुए, एक दृष्टि और एक दर्शन में स्थित रह पा रहे हैं?

7. क्या दृष्टि को कंचन रखने हेतु हम अपना दृष्टिकोण यानि देखने, सोचने व समझने का तरीका सकारात्मक रखते हुए समभाव नज़रों में कर व सजन वृत्ति फड़, सजन भाव प्रकृति में ला पा रहे हैं यानि जो प्रकाश मन मन्दिर में देखा है उसी प्रकाश का जग अन्दर बोध करते हुए तद्नुसार सबसे मित्रता का व्यवहार कर पा रहे हैं?

इस संदर्भ में सजनों आत्मनिरीक्षण की इस सारी प्रक्रिया को सचेतनता से करो। हतोत्साहित हो सुन्न मत होवो यानि चेतनता में आने के स्थान पर अचेत हो सोचों में मत जावो अपितु हिम्मत में आ जाग्रति में आओ। सजनों फिर कह रहे हैं कि अपने जीवन पर तरस खाओ और जो कहा जा रहा है उसे तत्क्षण करने लग जाओ। मत भूलो कि परमपद प्राप्त करने हेतु, सर्वप्रथम हमको, अपने आप से इन सात प्रश्नों के उत्तर सकारात्मक प्राप्त करने ही होंगे। जैसा कि सजन श्री शहनशाह हनुमान जी भी कहते हैं कि अगर हम समभाव-समदृष्टि के आधारभूत कायदे यथा जिह्वा स्वतन्त्र, संकल्प स्वच्छ और दृष्टि कंचन पर खरे नहीं उतर पाते तो हम कदाचित् जीवन लक्ष्य प्राप्त नहीं कर सकते। अतः अब जब स्वार्थपरता का दुःखदाई चलन छोड़ कर, परमार्थ के सत्य धर्म के निष्काम रास्ते पर अग्रसर हो, परोपकार कमाते हुए, परमपद प्राप्त कर, आत्मानंद का अनुभव करने का निश्चय

ले ही लिया है तो हमारे विचार से अब हमारे लिए किसी भी कारण, पुरुषार्थ छोड़ना उचित नहीं होगा। अगर सजनों आप सभी इस बात से सहमत हैं तो अपने संकल्प पर फ़तह पाने हेतु संकल्प लो कि अब हम समभाव-समदृष्टि के सबक़ पर परिपक्व हो, परस्पर विधिवत् सजन भाव अपनाएंगे व जिह्वा स्वतन्त्र, संकल्प स्वच्छ व एक निगाह एक दृष्टि दिखा, खुद को पकड़ते हुए खालस सोना हो जाएंगे। इस प्रकार ऐसा पराक्रम दिखा मृतलोक पर फतह पा लेंगे यानि ज्योति स्वरूप जो अपना आप है उसकी पहचान कर रोशन हो जाएंगे।

दिनाँक 7 मई 2017 का सबक़

मृतलोक-1

साडा है सजन राम, राम है कुल जहान

अर्थात्

ईश्वर हमारा मित्र/प्रियतम सर्वव्यापक है, उसी को जानो, मानो व वैसे ही गुण अपनाओ।

शब्द है गुरु, शरीर नहीं है,

अर्थात्

ज्ञानी को नहीं ज्ञान को अपनाओ और निमित्त में नहीं नित्य में श्रद्धा बढ़ाओ।

इस पर सुदृढ़ता से डटे रह,

इस अटल सत्य पर स्थिर बने रहोः-

ओ३म् अमर है आत्मा, आत्मा में है परमात्मा

आओ सजनों आज हम जानते हैं कि पैदा होने के उपरान्त जिस संसार यानि जगत में हम सब आते हैं वह कैसा स्थान है?

सजनों जन्म लेने के उपरांत हम सब प्राणी जिस संसार में आते हैं, उसे मनुष्यलोक, दुःखलोक, मृतलोक/मर्त्यलोक कहते हैं। मृतलोक/मर्त्यलोक यानि यह पृथ्वी अथवा इस पर बसा हुआ नश्वर संसार। यहाँ मर्त्य से तात्पर्य शरीर, भूलोक व मनुष्य से है। इस परिभाषा से सजनों यह स्पष्ट होता है कि, इस मृतलोक में, मानव शरीर सहित, मिट्टी से बनी हुई

हर वस्तु मरणशील है। इसीलिए तो जब मनुष्य के शरीर से प्राण अर्थात् वह हवा जिससे वह जीवित कहलाता है, निकल जाती है तो श्वसन क्रिया बंद हो जाती है। श्वसन क्रिया के बंद होते ही, स्वतः ही उसके त्रिविध् बल यथा मनोबल, वाक्-बल और काय्-बल क्षीण हो जाते हैं। परिणामतः न मानव कुछ विचार कर पाता है, न बोल पाता है और न ही हिल पाता है यानि जड़ता को प्राप्त हो जाता है। इस दुर्भाग्यपूर्ण घटना के घटित होने पर सजनों उस मनुष्य को मृत घोषित कर दिया जाता है जो अपने आप में, उस मृतक के लिए, मरने से पहले, इस संसार से पराजित होकर, अंत समय बहुत दुःख सहने की बात होती है। दुःख के बोझ से बोझिल ऐसा मृतक, आप तो रोते हुए इस जगत से जाता ही है, साथ ही मरने के पश्चात, मृत्यु की माया में उलझे हुए यानि जीवन के सत्य से अनभिज्ञ, कलियुगी परिवारजनों के लिए भी दुःख छोड़ जाता है, जो फिर आजीवन उनका पीछा नहीं छोड़ता। सजनों इसी तथ्य के दृष्टिगत सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया हैः-

महाबीर जी रहे ने पुकार,
प्रीति तूं किस नाल करनैं।
मिथ्या ए संसार,
प्रीति तूं किस नाल करनैं।।

ए देही तेरी ख़ाक दी ढेरी,
निकल गया चमत्कार।
प्रीति तूं किस नाल करनैं,
मिथ्या ए संसार।।

जिस देही दा अभिमान तूं करनैं,
ओ वी ना चलसी तेरे नाल।
प्रीति तूं किस नाल करनैं,
मिथ्या ए संसार।।

पंज चोर तेरे अन्दर वसदे,
मौत दा घर रहे दिखाल।
प्रीति तूं किस नाल करनैं,
मिथ्या ए संसार।।

जिस धन दा हंकार कितोई,
ओ यमां दा घर रहे दिखाल।
प्रीति तूं किस नाल करनैं,
मिथ्या ए संसार।।

मिथ्या महल ते मिथ्या माड़ियां,
चार दिनां दी बहार।
प्रीति तूं किस नाल करनैं,
मिथ्या ए संसार।।

जिन्हां पिच्छे तूं कूड़ कमत्तो,
ओही आसन तैनूं साड़।
प्रीति तूं किस नाल करनैं,
मिथ्या ए संसार।।

भाई बन्धु तेरे मित्र प्यारे,
कोई न चलसी तेरे नाल।
प्रीति तूं किस नाल करनैं,
मिथ्या ए संसार।।

हुण वी सम्भल तूं मूर्ख बन्दिया,
जन्म अपना संवार।
प्रीति तूं किस नाल करनैं,
मिथ्या ए संसार।।

मिथ्या संसार दी प्रीति नूं छोड़ के,
आओ महाबीर जी दे द्वार।
प्रीति तूं किस नाल करनैं,
मिथ्या ए संसार।।

नाम ध्यावो भैणां उस बली दा,
यमां तों लैसन छुड़ा।
प्रीति तूं किस नाल करनैं,
मिथ्या ए संसार।।

महाबीर जी दे चरणां विच प्रीति बढ़ाओ,
रघुनाथ जी नूं देसन मिला।
प्रीति तूं किस नाल करनैं,
मिथ्या ए संसार।।

दासी ऐही अरज़ां करदी,
सुध लवो भैणां सच्चे घर दी।
महाबीर जी अगूं करो नमस्कार,
महाबीर जी अगूं करो नमस्कार।।

प्रीति तूं किस नाल करनैं, मिथ्या ए संसार।।

संक्षेपतः यह भजन हमें समझा रहा है कि यह संसार नश्वर है और प्रीति योग्य नहीं। अतः इस संसार के क्षणभंगुर

पदार्थों, वस्तुओं व मायावी सम्बन्धों की ओर आकर्षित हो, उनसे प्रीति लगाने की भूल मत कर बैठना, अन्यथा बहुत पछोताना पड़ेगा।

इस संदर्भ में सबकी जानकारी के लिए सजनों इस मृतलोक अर्थात् मत्यु के घर/भूमंडल को दुःखी प्राणियों का निवास स्थान माना गया है। इस दुःखों के घर में हम, आप, सब अपनी इच्छा से रहते हैं और दुःखों से सम्बन्ध जोड़, अपने संचित व इस जन्म के पाप कर्मों का फल भोगते हैं। सजनों जब तक उन कर्मों के फल भोग की निवृत्ति नहीं होती तब तक हम भिन्न-भिन्न प्रकार के रूप धार यहाँ आते-जाते रहते हैं यानि तरह-तरह की चौरासी लाख योनियों में भटकते रहते हैं। इसलिए तो सजनों सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है:-

कमाई अपनी ओ भुगतदा है इंसान।
भली बुरी खोटी खरी खरीद आपदी,
दुःख सुख पावे महान।।

इस तरह आवागमन की इस क्रिया के दौरान, मृत्यु सदा हमारे अंग-संग रहती है और उस के भय के प्रभाव से हमारा ख़्याल चेतन शक्ति से अलग-थलग पड़ अचेतन अवस्था को प्राप्त रहता है। अचेतन अवस्था का अर्थ है अज्ञान व जड़ता के कारण इन्सान होते हुए भी अपनी इंसानियत को उजागर नहीं कर पाते और गलत को ही सही साबित करने का ढोंग रचते रहते हैं। इसी तथ्य के दृष्टिगत ही तो कहा गया है कि मृतलोक वह स्थान है जहाँ जगत यानि संसारी विषयों व सुख भोगों की अधीनता स्वीकारने वाले ऐसे मुरदा दिल

इंसान रहते हैं जिनके मन के अन्दर क्षण-प्रतिक्षण उठने वाले संकल्प-विकल्पों की खलबली मची रहती है, फलतः बुद्धि स्थिर नहीं रह पाती। सजनों ऐसे भूमंडल का जब भगवान चक्कर लगाते हैं तो वहाँ का वातावरण देखते हुए कहते हैं:-

भूमंडल में पहुँचे भगवान,
झूठ अंधेरा है खलबली।
ठोकरां खा खा न संभले सजन,
ओथे झूठ अंधेरा है खलबली।।

यह प्राणी की अचेतन यानि लगभग मरे हुए व्यक्ति की तरह दीन-हीन अवस्था में अनियन्त्रित जीवन जीने का सूचक होता है। ऐसे प्राणी को कोई भी किसी तरह सहजता से तोड़-मोड़ कर अपनी इच्छा अनुसार रूप दे सकता है।

सजनों निज स्वरूप के यथार्थ बोध यानि शाश्वत, अजर-अमर व सर्वव्यापक होने के सत्य के विस्मृत होने पर मानव द्वैतवाद को अपनाकर, सांसारिक अज्ञान ग्रहण कर, इस मृतलोक की नश्वर चीजों यथा शरीरों, पदार्थों व सम्बन्धों में जकड़ जाता है और इस प्रकार अपनी विवेकशक्ति गँवा, कामनायुक्त अपूर्ण आचार-विचार-व्यवहार दर्शाता है। इस तरह स्वार्थपरता के कारण आजीवन आपस में निंदा-चुगली व लड़ाई-झगड़ा करते हुए, खुद तो अत्यन्त दुःख भोगता ही है साथ ही अन्यों को भी अपने दुराचरण द्वारा संतप्त करता है। सजनों यह नीचता उसके मन के अंसतोष व चित्त के अस्थिर होने का प्रतीक होती है। यही कंगाली उनके अन्दर

परमार्थिक धन के स्थान पर, सांसारिक धन-सम्पत्ति एकत्रित करने की आशा-तृष्णा उत्पन्न करती है। इसी आशा-तृष्णा के फेर में पड़ कर, सब कुछ पाने की होड़ में रत वह अविचारी मानव जब शरीर पर शरीर बदलता जाता है तो नश्वरता का भाव उसके दिल-दिमाग में इस तरह से घर कर जाता है कि नश्वर पदार्थों को प्राप्त व एकत्रित करने में गर्व महसूस करना उसके जीवन का सिद्धान्त बन जाता है। फिर वह इसी उद्देश्य पूर्ति हेतु मृतक समान अशांत जीवन जीता है और बार-बार जन्म-मरण का अधिकारी सिद्ध होता है। इसीलिए तो सजनों सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है:-

भैणां आशा तृष्णा दी काली सर्पणी,
बैठी ए कुंडल मार।
जे इस काली तों बचना चाहवो,
भज लवो राम बलधार।।

मौत आवाज़ां मारदी,
करदी ए आजा आ।
नाम ध्याओ महाबीर जी दा,
मौत तों लैसन बचा।।

सजनों उपरोक्त विवेचना से स्पष्ट होता है कि इस मृतलोक में आने के पश्चात्, आत्मनियन्त्रण खोने के कारण विषयों की लालसा में फँसे स्वार्थी मानव के लिए फिर संतोष, धैर्य, सच्चाई, धर्म पर टिके रहना एक सवाल बन जाता है। हम कह सकते हैं कि ऐसा इंसान भौतिक तौर पर चाहे कितना भी ज्ञानी क्यों न हो परन्तु आत्मज्ञान से वंचित होने के

कारण, अपने यथार्थ स्वरूप की मर्म यानि वास्तविकता को कभी नहीं जान पाता और उलझनों में फँस जाता है। सजनों जो अपने जीवन की मर्म नहीं जान पाता उसे दुःखों से छुटकारा प्राप्त नहीं होता अपितु दुःख बहुघातीय संख्या में बढ़ने लगते हैं। यही कारण है कि ऐसा अशांत मानव, जीवन में बार-बार मार खाने पर भी, अपने बुरे स्वभावों को छोड़, अच्छे स्वभावों को अपनाने के प्रति रुचि नहीं रखता और सांसारिकता में उलझ, हर क्षण मृत्यु को अपने अंग-संग देखते हुए, मिथ्यतापूर्ण जीवन जीता है। हकीकत में सजनों यह अपने आप में पापकर्मों के फलस्वरूप सदा यम के बंधन यानि मृत्युपाश में फँसे रहने की बात होती है। इसीलिए तो कहते हैं कि मृतलोक में जन्म-जन्मांतरों तक बने रहना, यमलोक यानि नरक में निवास करने के समान अति दुःखदाई है।

सजनों इस दुनियां के दुःखों से छुटकारा दिला, यम की त्रास से बचाने के लिए ही, सच्चेपातशाह जी ने हम कलुकालवासियों को आत्मनियंत्रण द्वारा आत्मविश्वास के साथ, समभाव-समदृष्टि की युक्ति अनुसार, परस्पर सजन-भाव अनुरूप आचार-विचार व व्यवहार अपना कर, मृतलोक पर फ़तह पाने का आवाहन् दिया और कहा कि :-

जित्थे महाबीर जी दा नाम है,
उत्थे मौत नहीं सकदी डरा।
रघुनाथ जी दे चरण दिखा देसन,
मौत नूं देसन हटा।।

रावण ने मौत नूं छोड़िया,
महाबीरजी नूं रही डराये।।
महाबीर जी झपट्टा मारया,
मौत नूं लिया फंसाये।।

तैंतीस करोड़ देवते आंवदे,
महाबीर जी अग्गुं करन नमस्कार।
नीति ए संसार दी,
मौत नूं छोड़ दियो बलधार।

रघुनाथ जी दे नाम दी ताकत है,
बली मौत नूं दित्ता ए डराये।
नाम ध्याओ महाबीर जी दा,
शास्त्र रिहा बताये।।

आशा तजो तृष्णा तजो,
भैणां दिल तों तजो अभिमान।
इको रूप पछान लवो,
बली पूरण कर देसन काम।।

इस प्रकार सजनों उपरोक्त पंक्तियों द्वारा, सजन श्री शहनशाह हनुमान जी के तेज, बल व प्रताप का वर्णन करते हुए उन्होंने हमें उन्हीं की तरह मृत्युवरता (मृत्यु को जीतने वाला) बनने हेतु, हर बंधन से मुक्त होकर, अपने शाश्वत परमात्म स्वरूप की पहचान कर, इस मृतलोक यानि जन्म-मरण के चक्रव्यूह से आज़ाद होने का निर्देश दिया और साथ ही साथ उचित युक्तियाँ प्रदान कर हमारा उचित मार्गदर्शन भी किया। इस संदर्भ में सजनों उस परमपिता के आज्ञाकारी

सुपुत्र होने के नाते हमारे लिए बनता है कि हम परमपद पाने हेतु पिता के वचनों को प्रवान करें और अपने जीवन के प्रयोजन को इसी जीवन में सिद्ध कर दिखलाएं क्योंकि सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है:-

कर्मा अनुसार सृष्टि उपजे बिनसे,
कर्मा अनुसार मरेंगे।
जिन्हां बाजी जित लई अपनी,
ओ क्यों दुःख सहन करेंगे।
सजनों हकीकत में यही दुःख,
निवारण करने का तरीका है।

इस तरीके को अमल में लाते हुए आप कैसे अपना जीवन बना सकते हो सजनों इसके लिए हमें इस विषय को और गहराई से समझना होगा, जिसकी चर्चा हम आगामी कक्षाओं में करेंगे। तब तक आप आज हुई बातचीत पर विचार करो व अपने मन में इस मृतलोक से आज़ाद होने की प्रबल इच्छा जाग्रत करो। इस हेतु सजनों यह सत्य मानते हुए 'ईश्वर है अपना आप प्रकाश, ईश्वर है जे अजपा जाप', आत्मबोध करो और उसी के अजपा जाप द्वारा ब्रह्मज्ञानी बनने का प्रयास करो। हम सब सजन इस यत्न में सफल हों इन्हीं शुभकामनाओं के साथ।

दिनाँक 14 मई 2017 का सबक़

मृतलोक-2

साडा है सजन राम, राम है कुल जहान

अर्थात्

ईश्वर हमारा मित्र/प्रियतम सर्वव्यापक है, उसी को जानो, मानो व वैसे ही गुण अपनाओ।

इस तरह सजनों उस सर्व महान हस्ती के साथ नाता जोड़, अपने हृदय में प्रसन्नता व प्रफुल्लता का वातावरण बनाओ और उस ईश्वर का हुक्म मानने के लिए तत्पर हो जाओ।

शब्द है गुरु, शरीर नहीं है,

अर्थात्

ज्ञानी को नहीं ज्ञान को अपनाओ और निमित्त में नहीं नित्य में श्रद्धा बढ़ाओ।

इस पर सुदृढ़ता से डटे रह,
इस अटल सत्य पर स्थिर बने रहोः-

ओ३म् अमर है आत्मा, आत्मा में है परमात्मा

सजनों सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ कह रहा हैः-

जन्त्र मन्त्र छोड़ो सजनों, जपो रघुवर जी दा नाम वे।
दुःख क्लेश सारे भागन, रोग नाशन सारे तमाम।।

दुःखों के संदर्भ में सजनों गत सप्ताह हमने जाना कि इस मृतलोक अथवा संसार के सब विषय दुःखस्वरूप हैं यानि यहाँ जन्म दुःख है, वृद्धावस्था भी दुःख है, मरण दुःख है,

शोक परिदेवन यानि रोकर आंतरिक दुःख जताना भी दुःख है, दौर्मनस्य अर्थात् मन का खोटापन दुःख है, दुर्जनता भी दुःख है, अप्रिय वस्तु के साथ समागम दुःख है, प्रिय के साथ वियोग भी दुःख है, वांछित वस्तु का न मिलना भी दुःख है। इस प्रकार सजनों संसार का जीवन दुःख से परिपूर्ण है। इसीलिए तो छोटे से छोटे कीट से लेकर बड़े से बड़े सम्राट तक, प्रतिक्षण किसी न किसी प्रकार, इस दुःख से निवृत्ति पाने का यत्न कर रहे हैं परन्तु फिर भी सहजता से दुःखों के चक्रव्यूह से छुटकारा प्राप्त नहीं कर पाते और मृगतृष्णा के सदृश जिन विषयों के पीछे, सुख समझकर आजीवन दौड़ते रहते हैं, प्राप्त होने पर वे भी दुःख ही सिद्ध होते हैं। इन्हीं दुःखों के कारण ही सजनों हमारा संकल्प झुखता रहता है और हम आजीवन रोते रहते हैं।

अतः सजनों उपरोक्त तथ्य के दृष्टिगत ये प्रश्न खड़े हो जाते हैं कि :-

1. दुःख का वास्तविक स्वरूप क्या है?

2. दुःख कहाँ से उत्पन्न होता है यानि इसका वास्तविक कारण अथवा हेतु क्या है?

3. दुःख का नितान्त अभाव किस अवस्था में होता है?

4. नितान्त दुःख निवृत्ति का साधन क्या है?

इस परिप्रेक्ष्य में सजनों सूक्ष्मता जानो कि जड़ और चेतनतत्व में आसक्ति तथा अविवेकपूर्ण संयोग ही, दुःख का वास्तविक स्वरूप है। चेतन तथा जड़तत्व का अविवेक

अर्थात् मिथ्या ज्ञान या अविद्या, दुःख का कारण है। आत्मा के यथार्थ स्वरूप का साक्षात्कार अर्थात् स्वरूपस्थिति से दुःख का नितान्त अभाव हो जाता है और चेतन व जड़तत्व का विवेकपूर्ण ज्ञान दुःख निवृत्ति का मुख्य साधन है। इसीलिए तो सजनों सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है:-

दुःख ओहदे दूर हो गए जेहड़ा आया श्री राम शरणाई।
कष्ट ओहदे दूर हो गए, जैं चरणों में उमर बिताई।।
राम नाम दी पियो दवाई, ओहदे नाल हृदय विच रोशनी आई।
दुःख ओहदे दूर हो गए जेहड़ा आया श्री राम शरणाई।।

उपरोक्त तथ्य के दृष्टिगत सजनों यह स्पष्ट होता है कि जड़ और चेतन तत्व के अविवेक के कारण जब हम जड़ शरीर को ही चेतन समझ कर इस जगत में विचरने लगते हैं और बिना सोचे समझे हर कर्म करते जाते हैं तो दुःख हमारे जीवन में आता है। इस दुःखमय अवस्था से उबरने के लिए ही हमें पुनः अपनी चेतन शक्ति का बोध कर जड़ता से उबरना होता है। कैसे ? यह जानने के लिए सजनों आओ इसी तथ्य को अब हम क्रम से सविस्तार समझते हैं।

दुःख क्या है ?

दुःख जड़तत्व का स्वाभाविक गुण/धर्म है, न कि आत्मा का। यह एक प्रकार का चित्तविक्षेप है यानि चित्त की चंचलता, अस्थिरता का प्रतीक है जिससे ज्ञान प्राप्ति, ईश्वर के ध्यान में मग्न होने व कोई असाध्य काम करने के लिए उद्योग करने में विघ्न-बाधा उत्पन्न होती है। मानसिक खेद, कष्ट-क्लेश, पीड़ा, व्यथा, व्याधि यानि रोग, विपत्ति, आफ़त, झंझट, बखेड़ा

इत्यादि चित्तविक्षेपों के अतिरिक्त, रजोगुण से उत्पन्न चित्त का राजस कार्य यथा क्रोध, आवेश आदि भी दुःख कहलाता है। इस अर्थ से अपने विरुद्ध प्रतीत होने वाली, रजोगुण से उत्पन्न हुई चित्त की एक वृत्ति का नाम दुःख है। यह मन की कष्टमय अवस्था का द्योतक है और इससे छुटकारा पाने की इच्छा प्राणियों में स्वाभाविक होती है।

सजनों दुःख इष्ट के वियोग या अनिष्ट की प्राप्ति से भी उत्पन्न होता है और सदा प्रतिकूल स्वभाव वाला होता है। अतीत विषयों में यह स्मृति-जन्य (यानि वह ज्ञान जो स्मरण शक्ति के द्वारा उत्पन्न होता है) और अनागत (यानि आगे आने वाले) विषयों में यह संकल्प-जन्य होता है। इसके अतिरिक्त इन्द्रिय विषयों से चित्त में जो खेद या कष्ट होता है, उसे भी दुःख कहते हैं। इसी दुःख से द्वेष यानि चित्त को अप्रिय लगने की वृत्ति, चिढ़, शत्रुता, वैर आदि उत्पन्न होते हैं। अन्य शब्दों में जब किसी विषय से चित्त को दुःख होता है तो उससे स्वतः ही द्वेष उत्पन्न हो जाता है। ज्ञात हो कि दुःख में मुख मुरझा जाता है और चेहरे पर दीनता आ जाती है। दुःख का लक्षण पीड़ा है। सुख भी दुःख के अंतर्गत आता है क्योंकि सुख बिना दुःख के रह ही नहीं सकता।

दुःख का कारण क्या है?

1. चेतनतत्व से भिन्न जो जड़तत्व है जिसको प्रकृति व माया आदि भी कहते हैं, उस जड़तत्व में आत्मातत्व का आभास होने पर यानि जड़तत्व को भूल से चेतनतत्व मान लेने पर, दुःख की उत्पत्ति होती है। इस प्रकार दृष्टा और दृश्य का संयोग दुःख का कारण बनता है। सजनों जितना यह अज्ञान

दूर होता है, उतना ही दुःख का अभाव होता जाता है। याद रखो जिस-जिस तत्त्व का यथार्थ-ज्ञान होता जाता है, उस-उस तत्त्व के दुःख की निवृत्ति होती जाती है। इस प्रकार सारे तत्वों का विवेकपूर्ण ज्ञान प्राप्त कर जो तत्वज्ञानी बन जाता है, उसके सारे दुःखों की निवृत्ति हो जाती है। इसीलिए तो सजनों सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है:-

बस एन्हां नूं ही याद करो,
कोई रोग उपज सकदा ही नहीं।
बस आधि व्याधि दे रोग जेहड़े,
कोई वी सता सकदा ही नहीं।।

2 प्रतिषिद्ध यानि निषेधार्थक कर्मों से अधर्म उत्पन्न होता है। यही अधर्म कर्त्ता के अहित और दुःख का हेतु बनता है। कलियुग में सजनों अधिकतर सजन ऐसे ही निषिद्ध कर्म करते हैं, इसीलिए तो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है:-

चौरासी है बहुरंगी, दुःख पावे ओ पाखण्डी।
एहो बात न भुलाना, एहो बात है याद रखनी,
फिर न पछोताना।।

3. दुःख जीवधारियों की प्रकृति में, रजोगुण अर्थात् वह स्वभाव जिससे उनमें भोगविलास तथा बनावटी बातों में रुचि उत्पन्न होती है, की प्रधानता के कारण उत्पन्न होता है और चित्त का धर्म कहलाता है।

4. दुःख का हेतु तृष्णा भी है। तृष्णा से अभिप्राय कोई वस्तु

पाने के लिए आकुल करने वाली इच्छा व लोभ/ लालच से है। यह तृष्णा विषयों के राग यानि प्रिय या अभिमत वस्तु के प्रति मन में होने वाले भाव या झुकाव, ईर्ष्या और द्वेष, प्रेम, अनुराग, मोह, कष्ट, पीड़ा आदि से युक्त है तथा विषयों का अभिनन्दन करने वाली है। यह तृष्णा यहाँ और वहाँ सर्वत्र अपनी तृप्ति खोजती रहती है। इस तृष्णा के कई प्रकार हैं जैसे कि काम तृष्णा जो नाना प्रकार के विषयों की कामना करती है। भवतृष्णा जो संसार की सत्ता बनाए रखती है। विभव तृष्णा जो संसार के वैभव की इच्छा करती है।

सजनों तृष्णा की धाराएँ प्राणियों को बड़ी प्रिय और मनोहर लगती हैं। सुख के फेर में पड़ प्राणी उसकी धारा में पड़ते हैं और बार-बार जन्म-ज़रा के चक्कर में जाते हैं। इसीलिए तो कहा जाता है कि यह तृष्णा बार-बार प्राणियों को उत्पन्न करती है। सजनों वास्तव में यह तृष्णा ही जगत के समस्त विद्रोह तथा विरोध की जननी है और दुःखों का मूल है। इसलिए तो कहा गया है:-

तृष्णा पयी सतावे, सर्पणी जलावे रही ए फुकारे मार।।

5. दुःख का प्रमुख कारण मोह भी माना जाता है। किसी वस्तु, व्यक्ति या इच्छा के प्रति मोह रखना, कभी न कभी दुःख का कारण सिद्ध होता है। मोह न हो तो चित्त स्थिर रहता है। मोह न हो तो किसी का कुछ भी होता रहे, हमें कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता। सारी स्थिति मोह होने व न होने के निमित्त होती है। मोह हमें स्वार्थी बनाता है। कई बार अपने हितों की रक्षा के लिए हम दूसरों का अहित करने पर भी उतारू हो जाते हैं और इस प्रकार अपने लिए आप दुःख खरीदते हैं।

उपरोक्त तथ्य से सजनों स्पष्ट होता है कि जैसे ही हम अपने यथार्थ यानि वास्तविकता को भूल उसके विपरीत सब कुछ करने लगते हैं यानि संतोष-धैर्य खो, सच्चाई-धर्म के निष्काम रास्ते पर बने रहने के स्थान पर काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार के वशीभूत हो, जीवन में सब कुछ अपने लिए ही करना आरंभ कर देते हैं तो उस स्वार्थपरता के फलस्वरूप हुई प्राप्ति से चाहे हमें क्षणिक सुख की प्रतीति होती है पर वास्तव में अंत में उससे भी दुःख ही प्राप्त होता है। इस प्रकार दुःख आने पर हम फिर सुख प्राप्त करने के लिए शास्त्र विदित कर्मों का व नीति-नियमों का दिल खोलकर और गुस्ताखों की तरह उल्लंघन करने लगते हैं। यह अपने आप में विचार से हट अविचार यानि मनमानी का रास्ता अपना कर, इंसानियत से गिर हैवानियत का चलन अपनाने की बात होती है जिससे जीवन में दुःख आता है।

इस संदर्भ में सजनों याद रखो कि विवेकी पुरुष के लिए विषयजन्य सुख भी दुःख ही होता है। निःसंदेह इस संदर्भ में वह भली भांति जानता है कि जिस प्रकार एक चुम्बक लौह पदार्थों को अपनी ओर आकर्षित कर अपने साथ संयुक्त कर लेता है उसी प्रकार ये विषय भी साधारण मानव को अपनी ओर आकर्षित कर अपने साथ जोड़ लेते हैं और फिर उसके ख़्याल को अपने इशारों पर नचा भांति-भांति से संतप्त करते रहते हैं। इसलिए वह विवेकी उन तमाम क्षणभंगुर सुखों के प्रति आसक्त नहीं होता और प्रसन्नता से उनका त्याग कर देता है।

दुःख-सुख आदि के ज्ञान का साधन क्या है?

सजनों जिस प्रकार रूप, रंग, शब्द, रस, गंध आदि का ज्ञान प्राप्त करने का साधन नेत्र आदि इन्द्रियाँ हैं उसी प्रकार सुख-दुःखादि के ज्ञान का साधन मन है। आत्मा, इन्द्रियाँ, मन और अर्थ के संबंध से ही सुख-दुःख होते हैं। अंतःकरण, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार और इन्द्रियों तथा शरीर में अहंभाव और उनके विषयों में ममत्व पैदा कर लेना ही दुःखों में फँसना है।

दुःख कितने प्रकार का होता है?

मुख्यतः दुःख तीन प्रकार का होता है यथा

आध्यात्मिकः- जिसके अंतर्गत रोग, व्याधि आदि शारीरिक दुःख और क्रोध, लोभ आदि मानसिक दुःख आते हैं ।

आधिभौतिकः- जो स्थावर, जंगम यानि पशु, पक्षी, साँप, मच्छर आदि भौतिक प्राणियों के द्वारा पहुँचता है। तथा

आधिदैविकः- जो देवताओं अर्थात् प्राकृतिक शक्तियों जैसे आँधी, वर्षा, वज्रपात, शीत, ताप इत्यादि के द्वारा पहुँचता है।

सजनों उपरोक्त तीनों दुःखों को ही, क्रमशः तीन तापों के नाम से जाना जाता है। इन्हीं तीनों तापों के कारण हमारे स्वभावों का टैम्परेचर ठीक वैसे ही घटता-बढ़ता रहता है, जैसे बुखार घटता बढ़ता रहता है यानि यदि हम संतोष पर काबू पाते हैं तो धैर्य छूट जाता है और धैर्य पर काबू पाते हैं तो सच्चाई-धर्म छूट जाता है। इस संदर्भ में सजनों सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है कि 'सजनों जिन को तीनों तापों ने सताया है चाहे वह कितने ही यत्न करें विश्राम नहीं पा सकते।' इन

तीनों तापों से मुक्ति की गुहार करते हुए ही सुरति सजन श्री शहनशाह महाबीर जी के आगे प्रार्थना करती हैः-

'तीनों तापों ने आन सताया है,
हुन रक्षा करो महाबीर रक्षा करो।
महाबीर जी दे चरण मैं धो धो पीवां,
हुन रक्षा करो महाबीर रक्षा करो।।

इसके अतिरिक्त परिणाम दुःख, ताप दुःख और संस्कार दुःख ये अन्य तीन प्रकार के दुःख भी माने जाते हैं।

परिणाम दुःखः- यह वह दुःख है जिसका अन्यथाभाव हो अर्थात् जो भविष्य में अवश्य पहुँचेगा। इसके लिए सविस्तार से समझो कि विषय सुख के भोग से इन्द्रियों की तृप्ति नहीं होती है बल्कि राग उत्पन्न होता है। ज्यों-ज्यों भोग का अभ्यास बढ़ता है, त्यों-त्यों तृष्णा बलवती होती है। विषय कामना विषयों के उपभोग से कभी शांत नहीं होती अपितु और भड़कती है। इसी प्रकार विषय सुख के भोग से विषय सुख की कामना शांत नहीं होती, अपितु और बढ़ती है। विषयों के भोग से इन्द्रियाँ दुर्बल हो जाती है, अंत में इन्द्रियों में विषय-भोग की क्षमता बिल्कुल नहीं रहती और तृष्णा सताती रहती है। यह सुख परिणाम में दुःख ही है।

ताप दुःखः- यह वह दुःख है जो वर्तमान काल में कोई भोग रहा है और जिसका प्रभाव या स्मरण बना हुआ है। इसके लिए समझो कि विषय सुख की प्राप्ति में और उसके साधन में राग उत्पन्न होता है और उनमें जो रुकावटें आती हैं उनसे द्वेष उत्पन्न होता है। यह सुख के नाश होने का दुःख, सुख

के भोग-काल में भी सताता रहता है। इसी कारण यह सुख परिणाम में ताप दुःख है।

संस्कार दुःखः- सुख के भोग के जो संस्कार चित्त पर पड़ते हैं, उनसे राग उत्पन्न होता है। मनुष्य उनकी प्राप्ति के लिए यत्न करता है। उनमें रुकावटों से द्वेष उत्पन्न होता है। इसी प्रकार राग-द्वेष के भी संस्कार पड़ते रहते हैं और उनके वशीभूत होकर मनुष्य जो कर्म करता है, उनके भी संस्कार पड़ते हैं। यहाँ संस्कार शब्द से तात्पर्य पूर्व जन्म, कुल मर्यादा, शिक्षा, सभ्यता आदि के मन पर पड़ने वाले प्रभाव से है। ये संस्कार आवागमन के चक्र में डालने वाले होते हैं इसीलिए यह सुख परिणाम में संस्कार दुःख है।

इस संदर्भ में सजनों याद रखो भूतकाल का दुःख भोग देकर व्यतीत हो गया इसीलिए उस अतीत को स्मरण कर उससे जुड़ने की अब आवश्यकता नहीं। वर्तमान दुःख इस क्षण में भोगा जा रहा है दूसरे क्षण में स्वयं समाप्त हो जाएगा, अतः उसे भी भूल जाओ और अफुर बने रहो क्योंकि सच्चेपातशाह जी कहते हैंः-

पिछली जो गुज़री जो बीती विहाणी,
ख़्याल विच न बात ओ लियाओ।

इस दृष्टि से सजनों आने वाला दुःख ही त्यागने योग्य है। विवेकीजन उसी को हटाने का यत्न करते हैं।

सजनों उपरोक्त बात को याद रखते हुए आप निष्काम कर्म करते हुए हर हाल में राजी रहने का स्वभाव अपनाओ और कर्म फल से आज़ाद हो चिरस्थाई शांति को पाओ। जान लो

यह चिरस्थाई शांति ही वास्तव में शांति शक्ति का हथियार है। इसी के द्वारा हम शक्तिशाली हो सकते हैं। इस संदर्भ में मत भूलो कि वास्तव में सुख-दुःख कोई पदार्थ नहीं अपितु अनुभूतियाँ हैं जिन्हें यदि अनुभव करो तो हैं और न करो तो नहीं हैं। इसीलिए तो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है:-

फिर दुःख में सजनों सुख मनाइए,
तां शौह अपने दा दर्शन पाइये।
जैंदे महाराज दे नैनां नाल नैन मग्न हुए,
ओ सजन चरणों में रैंहदा अस्थित।
उस सजन दी सब तरह से होसी फतह और जित।।

याद रखो कि मन को सदैव प्रभु में लीन रखने से दुःख-सुख के स्थान पर आनन्द का अनुभव होता है। इसलिए सभी से प्रार्थना है इस यत्न द्वारा प्रसन्नचित्त इन्सान बनो व अपने आत्मबल का भरपूर प्रयोग करते हुए सदा आत्मतुष्ट बने रहो। सजनों दुःख से निवृत्ति पाने की युक्ति क्या है, इस विषय में हम आगामी सप्ताह बातचीत करेंगे।

दिनाँक 21 मई 2017 का सबक़

मृतलोक-3

साडा है सजन राम, राम है कुल जहान

अर्थात्

ईश्वर हमारा मित्र/प्रियतम सर्वव्यापक है, उसी को जानो, मानो व वैसे ही गुण अपनाओ।

शब्द है गुरु, शरीर नहीं है,

अर्थात्

ज्ञानी को नहीं ज्ञान को अपनाओ और निमित्त में नहीं नित्य में श्रद्धा बढ़ाओ।

इस पर सुदृढ़ता से डटे रह,
इस अटल सत्य पर स्थिर बने रहोः-

ओ३म् अमर है आत्मा, आत्मा में है परमात्मा

सजनों उपरोक्त तथ्यों को अपनाना अपने आप में इंसानियत में बने रहने का गुर है। इस गुर को जो अपनाता है, उसे अपने वास्तविक स्वरूप का प्रबोध हो जाता है और जो इसके विपरीत चलता है वह विकारों में फँस जाता है। इस संदर्भ में सजनों सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ कह रहा हैः-

मन शैतान शैतानी करे, भोगे विषय विकार।
मौत आवाजां मारदी, लश्कर होया तैयार।।

इस संदर्भ में सजनों गत दो सप्ताहों में मृतलोक के दुःखों के संदर्भ में हमने जाना कि मृतक की भांति अचेतन अवस्था में

जीवन जीने से शरीर शीघ्र ही जर्जर हो कर वृद्ध अवस्था को प्राप्त हो जाता है और अंततः ब्रह्मपद की प्राप्ति किए बगैर ही जीवन काल की समाप्ति मृत्यु के रूप में हो जाती है। इस तरह अपना जीवन का प्रयोजन सिद्ध किए बिना नष्ट होने पर, पाँच तत्वों का बना यह माटी का पुतला, अपना रूप छोड़, कर्म गति अनुसार चौरासी लाख योनियों में से कोई भी नया रूप धार लेता है। यह दुर्भाग्यपूर्ण बात होती है क्योंकि ऐसे अचेतन इंसान के पुनर्जन्म उपरान्त, आजीवन मृत्यु की छाया सिर पर मँडराती रहती है। इसी भय के कारण वह अपने आत्मिक बल की शक्ति से अनभिज्ञ हो, अधीरता से दुःखद जीवन जीता हुआ हर क्षण मृत्यु की ही प्रतीक्षा करता रहता है। जब उसके लिए यथार्थतापूर्ण जीवन जीना असंभव हो जाता है तो वह मनमत पर चलते हुए जानबूझ के ऐसे काम करता है जिसमें नष्ट होने की संभावना हो व दूसरों को दुःख व पीड़ा पहुँचे।

सजनों क्या आप जानते हो कि ऐसा दुःखी इन्सान अपनों को व अन्यों को क्या प्रदान करता है? इस संदर्भ में जानो किः-

जो जिसके पास होता है,
वही तो औरों को दे सकता है।
जो उसके पास है ही नहीं वह मिले,
यह उम्मीद रखना मूर्खता का चलन होता है।।

आओ इसी बात को अब अन्य शब्दों में भी समझते हैंः-

सजनों एक दुःखी व्यक्ति अपनी वाणी व कर्म द्वारा अपनों को

व अन्यों को केवल दुःख ही देता है क्योंकि उसकी वाणी दुःखमय होती है और उस के कर्म खोटे व निकृष्ट होते हैं। तभी तो वह दुःखी, दूसरे दुःखी का यथार्थ पहचान नहीं पाता और उसका दुःख बढ़ाने हेतु जो भी करता है बहुत ही अजीब ढंग से व चतुराई से करता है। याद रखो ऐसा निंदा-चुगली करने वाला अपनी बातों को सत्य सिद्ध करने हेतु कसमें खा-खा उसे सत्य सिद्ध करने का यत्न करता है और सुनने वाला उसी चक्रव्यूह में उलझ परस्पर ईर्ष्या-द्वेष व उससे उत्पन्न लड़ाई-झगड़े का शिकार हो जाता है। यही नहीं वह तो अन्यों पर अपना आधिपत्य जमाने हेतु भय के वातावरण का सृजन कर, उन्हें झूठे इलज़ामों द्वारा हताश कर, अपने अधीन रखने का प्रयत्न करने से भी नहीं सकुचाता। इस तरह आपसी रिश्ते खराब हो जाते हैं और एकता व सुख-शांति में अवरोध उत्पन्न होने के कारण पारिवारिक वृद्धि व विकास रुक जाता है। स्पष्ट है कि दुःख के वातावरण में डूबा हुआ उसका असंतोषी, अधीर व स्वार्थी मन, दूसरे का सुख व उत्कर्ष देखकर उनसे ईर्ष्यावश जलता है। परिणामस्वरूप उसके मन में एक के बाद एक दुर्भाव उत्पन्न होने आरम्भ हो जाते हैं। इस दीनहीन अवस्था में जब उसका ख़्याल मनुराज में गोते खाने लगता है तो परमार्थ यानि सच्चाई-धर्म की राह उसकी पकड़ से छूट जाती है। फलतः कुकर्म-अधर्म का रास्ता अपनाना उसकी विवशता हो जाती है जो उसके अंतःकरण की अशुद्धि व बुद्धि भ्रष्टता का कारण बनती है। सजनों यही तो इंसानियत के स्थान पर हैवानियत अपनाकर पथभ्रष्ट होने की बात होती है।

उपरोक्त विवेचना से सजनों स्पष्ट होता है कि प्रधान दुःख ज़रा और मरण है जिनसे सूक्ष्म शरीर की निवृत्ति हुए बिना जीवात्मा छुटकारा यानि मोक्ष नहीं पा सकती। इस प्रकार की मुक्ति या दुःख निवृत्ति तत्त्वज्ञान यानि ब्रह्म, आत्मा और ईश्वर आदि के सम्बन्ध का सच्चा और यथार्थ ज्ञान/ब्रह्मज्ञान प्राप्त करने पर ही संभव है। अन्य शब्दों में इस दुःख की निवृत्ति, प्रकृति (वह मूलशक्ति जिसने अनेक रूपात्मक जगत का विकास किया है तथा जिसका रूप दृश्यों में दृष्टिगोचर होता है) और पुरुष (अकर्त्ता तथा असंग चेतन पदार्थ जो प्रकृति से भिन्न तथा उसका पूरक अंग माना गया है) के भेदज्ञान को सूक्ष्मतया समझने पर ही हो सकती है। इस ब्रह्मज्ञान अर्थात् ब्रह्म या पारमार्थिक सत्ता के ज्ञान द्वारा ही जीव को यह सत्य बोध हो जाता है कि सुख-दुःख ज्ञान अविद्या है। अतः एक विचारवान इंसान की तरह सुख-दुःख की प्राप्ति होने पर भी समचित्त बने रहो क्योंकि सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ भी कह रहा है :-

दुःख-सुख जेहड़ा सम कर जाणे,
असलियत अपनी ओ पहचाणे।
असलियत अपनी जो पहचान गया,
हां.. हां.. हां.. हां.. हां.. हां..।
ओही परमधाम दियां मौजां माणे।।

सजनों यह वह अवस्था है जहाँ न संयोग है न वियोग, न रोग है न सोग, न ख़ुशी है न ग़मी, न सुख है न दुःख। ऐसा होने पर जीवन की किसी भी परिस्थिति में फिर मानव के मन में उद्वेग व हर्ष उत्पन्न नहीं होता और इस प्रकार वह सर्वदा

निःस्पृह यानि कामना, लोभ, लालसा व मोह इत्यादि से मुक्त बना रह, स्थिर बुद्धि बना रहता है। सजनों यह जीवन की वह परम आनन्दमय अवस्था है जिसके अंतर्गत जीवात्मा आत्मिक ज्ञान प्राप्त कर व उसको धर्मसंगत प्रयोग में लाते हुए मायाजाल से छूट जाती है। कहने का आशय यह है कि इस मृतलोक में आने के पश्चात् जब जीवात्मा जीवन धारण करने के मुख्य लक्ष्य की प्राप्ति कर लेती है तो वह जीवनमुक्त हो जाती है। इस संदर्भ में जानो कि इस भूमंडल में आने के पश्चात् उपाधियुक्त यानि द्वि-द्वेष व अहं भाव से ग्रसित हो भेद की प्रतीति कराने वाला वस्तु-धर्म अपनाकर, जीवात्मा अपने को पृथक समझती है परन्तु जब पूर्ण ज्ञान प्राप्त होने पर यह भ्रम मिट जाता है तो वह ब्रह्म स्वरूप हो जाती है। इस तरह मुक्त जीवात्मा परमात्मा के सत्यज्ञान से पवित्र होकर कर्म-बन्धन से मुक्ति पा जीवनकाल में ही परम मोक्ष की प्राप्ति कर लेती है और आवागमन के चक्र से स्वतन्त्र हो जाती है।

मोक्ष - सजनों सुनने-समझने में यह जितना सरल लगता है उतना ही इस परमपद को प्राप्त करना कठिन प्रतीत होता है क्योंकि इसके लिए आवश्यकता होती है महातप की। जान लो कि यह महातप बाल अवस्था के भक्ति-भाव वाला, कठिनाईयों से भरा आडम्बरी तप नहीं है यानि इसके लिए एक टाँग पर खड़े होकर कठिन साधना करने की या फिर विभिन्न तीर्थ स्थानों व जंगल-जंगल भटकने की आवश्यकता नहीं है। यह तो आत्मनियंत्रण द्वारा, अनुशासित ढंग से समभाव-समदृष्टि की युक्ति यानि युवावस्था की भक्ति भाव पर अडिग बने रहने का महातप है, जिसके अनुसार सबके

साथ सजन-भाव का वर्त-वर्ताव करने का विधान होता है। जान लो कि इस महातप द्वारा कोई विरला मनुष्य ही अपनी वास्तविकता प्रगट करने में समर्थ हो पाता है और निष्पाप, निष्कंटक सुखी इन्सान की तरह त्याग भावना से जीवन जीते हुए केवल सुख बाँटने का परोपकार दिखाता है। इस प्रकार पुण्य कर्म करते हुए वह ब्रह्म पद का अधिकारी बनता है और इस भूलोक से छुटकारा पा अपने सच्चे घर पहुँच विश्राम को पाता है। इसीलिए तो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है:-

ओ दयालता दिखावे,
सारे बन्धन छुड़ावे, ऐसी लीला वर्तावे।
समझन विच न आवे,
कोई विरला समझे ओन्हां दी लीला ओ सारी।
दुःख दर्द भागन, रोग सारे ओ नाशन,
उमरां खुशी दी गुज़ारी,
जय हो हनुमान बलधारी।।

हमें भी सजनों ऐसा ही पुरुषार्थ दिखाना है और इस हेतु प्रभु की लीला को समझते हुए, नित्यता के भाव में आना ही आना है। अचेतन अवस्था से उबरकर सचेतनता यानि नित्यता के भाव में आने के लिए सजनों आत्मिक ज्ञान यानि ब्रह्मविद्या रूपी संजीवनी ग्रहण करने की आवश्यकता का महत्त्व समझो और फिर तद्नुसार क्रिया यानि यत्न करना आरम्भ कर दो। इस संदर्भ में सजनों जान लो कि इस ब्रह्मविद्या के अतिरिक्त किसी अन्य भाषा को पढ़-समझ कर जब कोई भी

प्राणी मनुष्यत्व अनुरूप सामान्य व्यवहार करने में अपने आप को असक्षम पाता है तो जगतीय व्यवहार अपनाना उसकी विवशता हो जाती है। अतः हमारे लिए बनता है कि हम खुद को व अपनी संतानों को दोष रहित व दुःख रहित अवस्था में रखने के लिए, उनकी अपनी आत्मिक भाषा से परिचित करा, उसी की प्राप्ति के प्रति उनका मानसिक झुकाव बनाएँ ताकि सब अचेतन अवस्था से उबर एक बुद्धिमान इंसान की तरह वास्तविक जीवन जीने के योग्य बन सकें। इस तरह किसी को भी इस मृतलोक में नारकीय जीवन न जीना पड़े। इस विषय में सजनों इस यत्न द्वारा हमें खुद को व भावी पीढ़ियों को आज की प्रचलित दुःखों से भरी नश्वर व स्वार्थपर संस्कृति से उबार, सतयुग की संस्कृति का पाठ इस तरह से पढ़ाना होगा कि फिर किसी के भी मन में इस स्वार्थपर नश्वरता वाली संस्कृति के अवशेष या उल्लेख शेष न रह जाएँ। इस कार्य सिद्धि हेतु सजनोंः-

हर मानव को आत्मिक ज्ञान पढ़ाकर
मानवता में ढलने का सबक सिखाओ।
मानवता ही वास्तविक धर्म है उसका
भली भांति इस सत्य से परिचित कराओ।।

समभाव नज़रों में करा कर
समदृष्टि अनुरूप व्यवहार सिखाओ।
ए विध् सजनता का प्रतीक बनाकर
उसे सतयुग का दर्शन करवाओ।।

तभी तो हर घर सतयुग होगा
और समाज में सत्य प्रवाहित होगा।
फिर सत्य धर्म की भक्ति अपनाकर
हर मानव निष्कामी व ब्रह्मज्ञानी होगा।।

ब्रह्मज्ञान से ब्रह्ममय बनकर जब वह
ब्रह्म भाव को मन में ग्रहण करेगा।
तो बस फिर तो उसके हृदय में
सतवस्तु का ही साम्राज्य चलेगा।।

सजनों सजन श्री शहनशाह हनुमान जी के द्वारे पर होने के नाते यह हमारा कर्त्तव्य बनता है कि उपरोक्त लक्ष्य की सिद्धि हेतु हम अपने साथ-साथ समाज के प्रत्येक सदस्य को सतयुगी नैतिकता अनुरूप ढलने के लिए प्रेरित करें व इस महान कार्य की सिद्धि हेतु अपना तन-मन-धन वारने से भी न सकुचाएँ।

सजनों फिर से कह रहे हैं कि यह हर माता-पिता का मुख्य कर्त्तव्य है कि वह यह याद रखते हुए कि 'यह पृथ्वी दुःखी जीवों का घर है', उन लगभग मरे हुए जीवों को समस्त दुःखों से छुटकारा दिलवा, पुनः जीवित करने के लिए, लालन-पालन के दौरान, आत्मज्ञान रूपी औषधि प्रदान करने की क्रिया अवश्य करें ताकि संचित कर्मों के प्रभाव से उनके आत्मन् के आगे छाई हुई मैल य अज्ञान रूपी बादल इस तरह से छँट जाए कि उन्हें हर पल आत्मबोध बना रहे। यह उनकी वृत्ति, स्मृति को निर्मलता प्रदान कर, उन्हें पुनर्जीवित यानि चेतन अवस्था में लाने की बात है। सजनों

अपने इस महत्त्वपूर्ण कर्त्तव्य यानि फ़र्ज़ अदा को हँस कर पूरा करो।

आओ अब जानें कि दुःख का नितान्त अभाव कब हो जाता है?

सजनों जिसमें पूर्ण-ज्ञान है, जो सर्वज्ञ है, सर्वव्यापक और शक्तिमान है, जिसमें दुःख और जड़ता तथा अज्ञान का नितांत अभाव है, जहाँ तक आत्मा का पहुँचना आत्मा का अंतिम ध्येय है, जो ज्ञान का पूर्ण भंडार है, वहाँ से ज्ञान पाकर आत्मा जड़-चेतन का विवेक प्राप्त कर लेती है और अज्ञान व अविद्या के बंधनों को तोड़कर दुःख से सर्वथा मुक्ति पा जाती है। कहने का आशय यह है कि जड़तत्व से अपने को सर्वथा भिन्न करके निर्विकार, निर्लेप, शुद्ध परमात्म स्वरूप में अवस्थित होने पर, दुःख की निवृत्ति हो जाती है और इंसान को परमानंद का अनुभव होता है। सजनों ऐसा अद्‌भुत घटित होते ही वह शाश्वतता का भाव अपना वास्तविक रूप से जी उठता है। जानो हकीकत में यही जीवन है। मृत्युपाश से बच ऐसा जीवन जीने हेतु सजनों जीव, जगत व ब्रह्मज्ञान के बोध द्वारा अपनी आत्मा की शांति और तुष्टि बनाए रखना सुनिश्चित करो। मृत्यु से डरो मत, मृत्यु का वरण कर मृत्युवरता बनो और निर्भयता से निरोगी व स्वस्थ जीवन जीओ। अब इस संदर्भ में सजन श्री शहनशाह हनुमान जी के निम्नलिखित संदेश को सुनो व स्वतः उसमें विदित अर्थों को गहराई से समझते हुए सत्यनिष्ठा से ग्रहण करो। इस तरह समस्त दुःखों से छुटकारा पाने हेतु ब्रह्म भाव अनुसार जीवन जीना आरम्भ कर दो।

(सजन श्री शहनशाह हनुमान जी के मुख के शब्द)

उस कमरे विच वड़ जाओ सजनों, उत्थे शान्त ही शान्त है।
बिन सूरजों प्रकाश उस अन्दर, नज़र आवे अपना आप है।।

हुण नज़र आवे अपना आप है, नज़र आवे अपना आप है।
बिन सूरजों प्रकाश उस अन्दर, नज़र आवे अपना आप है।।

उस कमरे विच रोशनी आप दी, बिन जपयों जप जाप,
रामा बिन जपयों जप जाप।
जोत जगे सब अन्दर जावे,
किरण सब दे साथ सियापति रामचन्द्र जी की जय।।

ओ३म् ओ३म् दियां आवाज़ां आवन,
जोत दा विच प्रकाश, रामा जोत दा विच प्रकाश।
साज ताज ही समझो सजनों, उसे दा प्रताप,
सियापति रामचन्द्र जी की जय।।

आदि ओ३म् अन्त ओही है,
आप ही हो विराट, रामा आप ही हो विराट।
आप हो सारे भूमण्डल में, आप दिन और रात,
सियापति रामचन्द्र जी की जय।।

निकट आप दूर वी ओही है,
सर्व कला भरपूर, रामा सर्व कला भरपूर।
थित वार पलकां हो आप निकट हो नहीं दूर,
सियापति रामचन्द्र जी की जय।।

चानणा हो गये सब जग अन्दर मर्म ना जाने कोय,
रामा मर्म ना जाने कोय।

जोत जगे हर अन्दर आप दी, सब जग चानणा होय,
सियापति रामचन्द्र जी की जय।।

सबकी जानकारी के लिए इस मृतलोक में आने के पश्चात्, एक मानव को किस भाव से जीवनयापन करना होता है ताकि इस परदेस में उसकी जीवयात्रा सुख-शांति से सम्पन्न हो और अंततः वह अपने घर पहुँच परमपद पा सके, इस विषय में आगामी कक्षा में बात करेंगे।

दिनाँक 28 मई 2017 का सबक़

मृतलोक-4

साडा है सजन राम, राम है कुल जहान

अर्थात्

ईश्वर हमारा मित्र/प्रियतम सर्वव्यापक है, उसी को जानो, मानो व वैसे ही गुण अपनाओ।

शब्द है गुरु, शरीर नहीं है,

अर्थात्

ज्ञानी को नहीं ज्ञान को अपनाओ और निमित्त में नहीं नित्य में श्रद्धा बढ़ाओ।

इस पर सुदृढ़ता से डटे रह,

इस अटल सत्य पर स्थिर बने रहोः-

ओ३म् अमर है आत्मा, आत्मा में है परमात्मा

सजनों मृतलोक में कमाल के खेल होते हैं। यहाँ पर बुरे मनों वाले ऐसे स्वार्थी लोग रहते हैं जो तुच्छ विषयी सुखों की प्राप्ति के लिए छल-कपट व धोखाधड़ी का चलन अपनाते हैं और इंसानियत से गिर अपना यह अनमोल मानव जन्म बर्बाद कर बैठते हैं। इसीलिए तो सजनों वे चौरासी यानि आवागमन के चक्कर में फँस, इस मृतलोक के ही होकर रह जाते हैं यानि कदाचित् मृत्युपाश से आजाद नहीं हो पाते। ऐसा न हो इसलिए तो कह रहे हैं कि महल-माड़ियाँ, धन-दौलत आदि क्षणभंगुर विषयी सुखों का संग्रह करने के स्थान पर, सत्य-धर्म के भक्ति भाव पर अटलता से बने रह,

अपनी जीवन यात्रा को निर्विघ्न समाप्त करने के प्रति ध्यान दो और इस हेतु अपना ख़्याल आद् शब्द में जोड़ो। मत भूलोः-

जिस सुख लई दुनियां मर मिटदी,
उस सुख दा समुद्र मेरा साजन है।
ते आओ सामने दर्शन कर लईये
दस्सो फिर परमधाम होर केहड़ा है।

अर्थात् सजनों दुनियां के सारे सुख तुच्छ है। इस तुच्छता से प्रेम, गंदगी एकत्रित करने के समान घातक है जिसके परिणामस्वरूप शारीरिक-मानसिक व आत्मिक स्वस्थता नष्ट हो जाती है। अतः सजनों अपने जन्म के घातक आप मत बनो अपितु सजनता में आ अपना जीवन आबाद करो। इसी संदर्भ में अब ध्यान से सुनोः-

रहे यह सफ़र न अधूरा.....अधूरा।
इसे करना होगा इसी जीवन में ही पूरा.....हाँ पूरा।।

उठो, उठ कर खुद को खुद ही संभालो
बिगड़ती हुई अपनी किस्मत सँवारो।
ख़ुदी में बने रह ख़ुदाई को देखो,
हर शै में उस की नूराई को देखो,
हर शै में उस की नूराई को देखो।।

बुरों की बुराई गले मत लगाओ,
सच्चाई को समझो उसे अपनाओ।
ख़ुद को समझते कमज़ोर क्यों हो,

समझो हाँ समझो रणधीर हो तुम ,
समझो हाँ समझो रणशूर हो तुम।।

मृतलोक नहीं तेरा अंतिम ठिकाना,
इसकी शोखियों में फँस मत जाना।
तूं है शहनशाह तेरा घर शहनशाही,
जिसमें बसत है सारी ख़ुदाई,
जिसमें बसत है सारी ख़ुदाई।।

वहीं पर है जाना.....वहीं पर है जाना।
वहीं है ठिकाना.....वहीं है ठिकाना।।

सजनों गत सप्ताह हमने जाना कि जो इंसान इस मृतलोक में आने के पश्चात्, परमतत्व का संग प्राप्त कर, परमात्म स्वरूप होकर इस जगत में नित्य भाव से विचरता है, वही ब्रह्म नाम कहाता है और उसे मौत का भय नहीं सताता। इस प्रकार वह सर्व शक्तिशाली ईश्वर की तरह, मानव रूप में, निर्भयता व वीरता से अमरत्व के भाव में स्थिर बने रह, व्यवहार के समय, परस्पर मनुष्यत्व के भाव में सुदृढ़ बना रहता है। यहाँ मनुष्यत्व से तात्पर्य चित्त की कोमलता, दया भाव, शील, सभ्यता, शिष्टता यानि व्यवहार ज्ञान से है। निःसंदेह अपने अविनाशी स्वरूप में अस्थित मानव, मानव धर्म अनुसार, मनुष्य का मनुष्य के प्रति क्या कर्त्तव्य है, उसे भली-भांति समझता है। इसीलिए तो वह मानव धर्म की मानता करने वाला, जगत में निषंग विचरता है और जगतीय मिथ्या धर्म नहीं अपनाता। अन्य शब्दों में मानव वर्जित अर्थात् नीच कर्म करने की प्रवृत्ति में ढलने से बचे रहने हेतु, वह इन्द्रियों सहित अपने मन को वश में रखते हुए अपने

अंतःकरण को निरंतर विशुद्ध रखना आवश्यक समझता है। सजनों यह अपने मन को सदा उद्वेग रहित अर्थात शांत रखते हुए, मन को अखंडता से मनःपति यानि श्री विष्णु भगवान में लीन रखते हुए, आत्मिक साक्षात्कार द्वारा, सत्य ज्ञान प्राप्त करने की बात होती है जिससे इंसान के चित्त की प्रसन्नता भंग नहीं होती। इस प्रकार इस क्रिया द्वारा सजनों मन में मनोविकार नहीं पनपते और इंसान निर्विकारी हो उदार हृदय हो जाता है। अंतःकरण की इस वृत्ति के निर्मल होते ही अन्य वृत्तियों को निर्मल रखना सहज हो जाता है। सजनों जिस मनुष्य की हृदयगत वृत्तियाँ निर्मल होती हैं, वह अपनी भावना की शुद्धता के प्रति सदा सावधान रहता है ताकि उसे स्वभाव के अंतर्गत करने उपरांत उसके अन्दर किसी प्रकार का संकल्प-विकल्प न उपजे। इसीलिए तो सजनों सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया हैः-

जिन्हुं मेरे मिलने दी होइए चाह,
स्वभावां वल्लों ख़्याल नूं लवे ओ हटा।
इलाही सूरत चमके ओ मेरी,
इन्सान दर्शन लवे ओ पा।।

ऐसा होने पर मानव, यथार्थ से भटक, स्वार्थ में नहीं उलझता यानि इच्छापूर्त्ति हेतु मनमत नहीं अपनाता और न ही किसी से घृणा व छल-कपट करता है। वह विशाल हृदय तो सबमें आत्मस्वरूप का ही दर्शन करते हुए उसी से प्रेम करता है। इस प्रकार उस प्रसन्नचित्त आत्मतुष्ट इंसान का मन शांत हो जाता है और वह अफुरता से अपने जीवन के प्रयोजन को सिद्ध करने में रत रहता है। सजनों इसीलिए तो

ऐसा मानव जगत में सब कुछ न्यायसंगत करते हुए एकता व एक अवस्था में बने रहने का पराक्रम दिखा पाता है। यह होती है मन की कामनामुक्त अवस्था यानि मनमत से आज़ाद रहना। ऐसे सुन्दर मन में ही विद्यमान परमात्मा की मनोहर छवि प्रगट रहती है जिसके सतत् बोध से उसकी विवेकशक्ति क्रियाशील हो उठती है। फलतः वह इंसान सत्य-असत्य भले-बुरे की पहचान कर अपनी चित्त वृत्तियों का निरोध कर लेता है और जितेन्द्रिय कहलाता है। ऐसे सजनों की उत्तम अवस्था का वर्णन करते हुए कुदरती ग्रन्थ कह रहा हैः-

इक पासे प्यारे दे श्री रामचन्द्र जी,
दूजे पासे रैहंदे हिन शहनशाह हनुमान।
दुःख नूं ओ सुख किवें न मनावे,
जैंदे संग रैहंदे खुद आप भगवान।।

सजनों इसी उपलब्धि के दृष्टिगत ही तो कहते हैं कि सर्वव्यापक भगवान पर विश्वास रखते हुए सभी समभाव नज़रों में कर, सजन भाव प्रकृति में ले आओ और किसी के प्रति दुर्भाव न रखते हुए जीवन में जो भी करो दिल से दिल मिलाकर, प्रसन्नचित्तता से सर्वहित हेतु निष्काम भाव से करो। इस तरह परोपकारी नाम कहाओ। यह अपने आप में मनगढ़ंत अविचारी चलन छोड़कर एक विचारशील इंसान की तरह वास्तविकता से जीवन जीने की यानि चरित्रवान इंसान की तरह परमार्थ के रास्ते पर अग्रसर होने व अन्यों को भी उसी सत्य धर्म के निष्काम रास्ते पर चलने की प्रेरणा देने के योग्य बनने की बात है। जानो ऐसा समझदार मानव

ही कामनामुक्त जीवन जीने में समर्थ हो सकता है व मौत के भय से आज़ाद रह सकता है। मृत्युपाश से मुक्त रहने के लिए हमें और क्या करना चाहिए, अब उसके विषय में ध्यान से सुनोः-

सजनों सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ कह रहा हैः-

साजन जी दा सीस डिग्गे श्री राम चरणों में,
दयालु दा हाथ सीस ऊपर राहसी-ई ई ई ई ई
फिर बात बताऊँ सुनो मेरे साजन,
दुःख कहाँ से आसी ओ दुःख कहाँ से आसी।।
पोशाक तबदील करो मेरे साजन
नवीन पोशाक तुसां पहन लवो ओ ओ ओ ओ ।
दिन खुशियाँ राती सुखां दी नींदर,
इस दुनियां ते साजन जी चैन लवो।।

सजनों मृत्युपाश से मुक्त रहने के लिए हमें चाहिए कि हम भी संतोष, धैर्य, सच्चाई, धर्म की पोशाक पहन, सजन पुरुष बनने हेतु, अपने मन में उमंग पैदा करें ताकि हमारा हृदय कमल बहार की तरह सदा खिला रहे और हमारे मन को सदा पूर्ण संतोष प्राप्त रहे। यही एक तरीका है आंतरिक दुःखों से छुटकारा पाने का। यहाँ याद रखो कि जग से हारने पर तो पुनः विजय की संभावना बनी रहती है पर मन से हारने पर ऐसा संभव नहीं होता। इस तरह इंसान का जीवन मन, वचन, कर्म द्वारा सदा बुरा करने में ही व्यर्थ हो जाता है। इसीलिए तो हर मानव के लिए सदा सचेतन अवस्था में बने रहने के लिए बचपन से ही आत्मज्ञान प्राप्त

कर अपने मन को वश में रखने की युक्ति समझने व उसे अमल में लाने के प्रति सक्षमता ग्रहण करने का विधान है।

सजनों इस सक्षमता को ग्रहण करने हेतु सर्वप्रथम हमें समझना होगा कि हम वास्तव में शरीर नहीं अपितु जीवात्मा है। जीवात्मा अर्थात् प्राणियों का वह चेतनतत्व जिससे वह जीवित रहते हैं व जीवन चलता है। सजनों इस शरीर में, उस चेतन तत्व के निर्मल प्रवाह से ही, हृदयाकाश में विद्यमान, बिन सूरजों शब्द ब्रह्म प्रकाशित रहता है और आत्मिक ज्ञान का साक्षात्कार करा, जीव को उसके मूल शाश्वत गुणों का सत्य बोध कराते हुए, यथा वैसी ही प्रकृति अर्थात् स्वभाव में ढलने के लिए प्रेरित करता है। इसी तथ्य के दृष्टिगत सजनों सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है:-

आहा मेरी ब्रह्म सत्ता हनुमान जी दे वचन करो प्रवान,
अपना आप लवो पहचान ओ मेरी ब्रह्म सत्ता
ओ हर अन्दर प्रकाशे कोने-कोने डाली-डाली,
हर अन्दर ओ जापे ओ मेरी ब्रह्म सत्ता
ब्रह्म सत्ता पकड़ो इन्सान पा लवो सजनो आत्मिक ज्ञान,
ब्रह्म सत्ता हिवे हाज़रा हज़ूर निकट हिवे निवे कोई दूर।
ब्रह्म सत्ता है अजपा जाप हम तो हैं सारा जग प्रकाश,
ओ मेरी ब्रह्म सत्ता आहा मेरी ब्रह्म सत्ता
ब्रह्म सत्ता है बड़ी महान खुद हूँ मैं आप भगवान,
ओ मेरी ब्रह्म सत्ता आहा मेरी ब्रह्म सत्ता
ओ हर अन्दर प्रकाशे कोने-कोने डाली-डाली,
हर अन्दर ओ जापे मेरी ओ ब्रह्म सत्ता।

इस प्रकृति पर स्थिर बने रहने पर ही मानव के मन में, धीरता से आत्मीयता से परिपूर्ण धर्म पर सुदृढ़ बने रहने की निष्ठा जाग्रत होती है और वह एक आत्मतुष्ट, धर्मपरायण इंसान की तरह जीवन जीने के योग्य बन पाता है। याद रखो सजनों जो इंसान इस स्वभाव अनुसार निष्पाप जीवन जी पाता है, वही आत्मा में विद्यमान परमात्मा का आज्ञाकारी सुपुत्र कहलाता है और इस प्रकार परमपद का अधिकारी बन अपने घर परमधाम में पहुँच विश्राम पाता है।

इस प्रकार पूर्ण संतोष प्राप्त होते ही उसके अन्दर संसार से कुछ भी अन्य पाने की भूख या अभिलाषा मिट जाती है। मन की इस संकल्प रहित शांत अवस्था में मनुष्य आत्मोत्कर्ष करने हेतु, अफुरता से अपने मन को आत्मा में लीन रखने के सुख का अनुभव करते हुए, आत्मानंद प्रदान करने वाला, आत्मनुरूप आत्मज्ञान प्राप्त कर पाता है और इस तरह अपने बलबूते पर, एक सत्यवादी इंसान की तरह स्वतन्त्रता से जीवनयापन करता है। जानो कि मन के आत्मलीन रहने से परमात्मा के साथ एक अपनेपन का या मैत्रीपूर्ण खास रिश्ता स्थापित होता है यानि वह मानसिक तौर पर संसार से जुड़ कुछ भी ग्रहण करने के स्थान पर सदा आत्मा से सम्बन्ध रखना और वहीं से गुण ग्रहण कर अपने स्वभाव के अंतर्गत करना श्रेयस्कर समझता है। तभी तो उस आत्मेश्वर के लिए, सजन श्री शहनशाह हनुमान जी की तरह, इष्ट-मित्र के रूप में, सब कुछ प्रभु की सेवा के निमित्त अर्पित करते हुए, सत्य धर्म के निष्काम रास्ते पर बने रहना व अन्यों का मार्गदर्शन करते हुए परोपकार कमाना संभव हो पाता है।

यही तो होता है दूसरों की भलाई के निमित्त अपने हित-अहित का ध्यान छोड़ना व आत्मोद्धार की खातिर सांसारिक विषयों का परित्याग कर, पारमार्थिक पदार्थों को ग्रहण करते हुए अपने जीवन के मुख्य प्रयोजन यानि मोक्ष को प्राप्त करना।

जानो सजनों यही एकमात्र युक्ति है आत्मबोध द्वारा आत्मसंस्कार यानि आत्मसुधार करने हेतु, अपनी चित्तवृत्तियों को वश में रखते हुए, आत्मभाव से निर्विकारी जीवन जीने की। यह है अपने आप में द्वि-द्वेष जैसे वैर भाव को त्याग कर, अपने अंतःकरण को पवित्रता से संजोए रख, परस्पर धर्म भाव से श्रद्धा सहित व्यवहार करते हुए, सदा पुण्य कर्म करने में प्रवृत्त रहना। इस आत्मसंस्कार युक्त आचार संहिता को अपनाने वाला मनुष्य, सब प्रकार के रोगों, दोषों व दुःखों से सर्वथा रहित रहते हुए, सुमतिवान बन, देवताओं से भी श्रेष्ठ हो जाता है और निर्वाण पद को प्राप्त कर मुक्तिदाता कहलाता है। तभी तो सजनों सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ कह रहा हैः-

ओ साजन जैंदे ईश्वर संग राहवे,
ओन्हु दुःख क्लेश कष्ट, क्यों आवे।।

अंततः सजनों मृतलोक के विषय में अब तक हुई सारी बातचीत को दृष्टिगत रखते हुए, हम तो इस मृतलोक के तमाम परदेसियों से यही प्रार्थना करते हैं कि स्वधर्म के अनुसार स्वभावों की ईश्वर प्रदत्त स्वदेशी पोशाक पहनकर अर्थात् आत्मभाव अपनाकर इस जगत में बेखौफ़ा-बेखतरा शान से विचरना सुनिश्चित करो। इस हेतु उस सृष्टि के

रचनाकार परमेश्वर ने, जो भी इस सृष्टि का कार्य उचित ढंग से चलाने के लिए, व्यवस्था कायम की है, उस के प्रभुत्व को स्वीकारते हुए, आनन्दपूर्वक उसी परमनियंता की वेद विदित कार्यशैली को ठीक प्रकार से समझो। फिर उसी अनुसार आचार, विचार व व्यवहार अपना कर, ईश्वर प्रदत्त प्रकृति में ढल जाओ। याद रखो ऐसा पराक्रम दिखाने पर ही कुदरती स्वभावों में स्थिरता से बने रह, अंतर्निहित ईश्वरीय शक्ति अर्थात् आत्मिक बल का बोध रखते हुए, वेद विदित नियमानुसार, जीवन का हर कार्य आनन्दपूर्वक कर पाओगे। इस तरह एक जितेन्द्रिय इन्सान की तरह, सही अर्थों में निष्काम भाव से सत्य धर्म की साधना करते हुए इस जगत के उद्धार हेतु परोपकार कमा सकने में कामयाब हो जाओगे।

इस संदर्भ में सजनों दिल से इस बात को मानो कि हम कलियुगवासियों के पास इस दुःखमय संसार से छुटकारा पाने के लिए अन्य कोई रास्ता है ही नहीं। अतः खुद को उस कारियों के कारीगर की अद्भुत रचना मानते हुए, विवेकशीलता से अपने स्वभावों का ताना बाना निर्मल बनाओ। अन्य शब्दों में अपनी इस सुन्दर बनत बनाने वाले को, अपना शासक मानते हुए व हर हाल में आत्मनियन्त्रण रखते हुए, सहर्ष सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में वर्णित कुदरती विधि विधान पर, अविचलित बने रहने के प्रति प्रतिबद्ध हो जाओ। ऐसा करना अपने जीवन का मुख्य प्रयोजन सिद्ध करने हेतु आवश्यक मानो क्योंकि ऐसा सुनिश्चित करने पर ही एक विवेकबुद्धि इंसान की तरह सत्य के पारखी बन, मर्यादा पुरुषोत्तम बन जाओगे और एक उच्च बुद्धि

उच्च ख़्याल इंसान की तरह अपने कर्मों का लेखा-जोखा रखते हुए सदा सद्कर्मों में प्रवृत्त रह पाओगे। कहने का तात्पर्य यह है कि आत्मनियंत्रण द्वारा, उस व्यवस्था में बने रहने पर, हर प्रकार के दुःखों के हेतु स्वार्थी बंधनों से मुक्ति प्राप्त हो जाएगी। फिर जो भी करोगे उस प्रभु की देख रेख में उसी के निमित्त समर्पित व अकर्त्ता भाव से करोगे। अंत में सजनों हम कहना चाहेंगे कि ऐसे आत्मीयता से परिपूर्ण आचरण को अपनाने व उस पर सदा बने रहने हेतु शास्त्रविदित शब्द ब्रह्म विचारों के रूप में ईश्वरीय विधान अनुसार आज्ञाओं का नेक नीयत से पालना करने के लिए खुद को मना लो और स्वार्थ से परमार्थ हो जाओ। ऐसा करने पर ही स्वधर्मी कहला, अपना जीवन कर्त्तव्य निभाने उपरान्त, अपने घर परमधाम को सहजता से वापिस लौट कर, रोशन नाम कहा सकोगे।

दिनाँक 4 जून 2017 का सबक़

आत्मनिरीक्षण

साडा है सजन राम, राम है कुल जहान

अर्थात्

ईश्वर हमारा मित्र/प्रियतम सर्वव्यापक है, उसी को जानो, मानो व वैसे ही गुण अपनाओ।

शब्द है गुरु, शरीर नहीं है,

अर्थात्

ज्ञानी को नहीं ज्ञान को अपनाओ और निमित्त में नहीं नित्य में श्रद्धा बढ़ाओ।

इस पर सुदृढ़ता से डटे रह,
इस अटल सत्य पर स्थिर बने रहोः-

ओ३म् अमर है आत्मा, आत्मा में है परमात्मा

सजनों उपरोक्त सत्यों पर स्थिर बने रहने वाला मानव सदा चैतन्य बना रहता है। चेतनता से भरपूर होने के कारण उसका रोम-रोम, रग-रग यानि प्रत्येक अवयव शक्तिशाली/निरोगी बना रहता है तथा सदा सही ढंग से कार्य करता है। अन्य शब्दों में ऐसा मानव, ईश्वरीय बनत के अनुरूप, अपनी गुणवत्ता का पूर्ण लाभ उठा, अपने सहित कुल समाज को अच्छा परिणाम प्रदान करता है। आओ अब आगे बढ़ते हैंः-

सजनों क्या दुःखों के विषय में सुन-सुनकर व उन्हें भोग-भोग कर अभी तक थके नहीं और आपके मन में उन

दुःखवाहक कारणों से छुटकारा पाने हेतु चाहत उत्पन्न नहीं हुई? इस संदर्भ में सजनों आओ आज हम गंभीरता से आत्मनिरीक्षण करते हैं कि क्या हम समस्त दुःखों से छुटकारा पा आत्मबोध द्वारा यथार्थता से इस मानव जीवन के आनन्द का अनुभव करने हेतु नेक नीयती से प्रयत्नशील हैं भी या नहीं? याद रखो कि दुःखों से प्राप्त होने वाले झुखने-रोने के स्वभाव से समय रहते ही मुक्ति पाने के लिए, सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ, हमें अति श्रद्धापूर्वक समभाव-समदृष्टि की युक्ति को प्रवान कर व विचार शब्द को पकड़, उसका सतर्कता व आत्मविश्वास के साथ विधिवत् प्रयोग करते हुए, अपने जीवन के असली प्रयोजन को सिद्ध करने, यानि यश कीर्ति प्राप्त कर पाने के योग्य बनने हेतु इस प्रकार आवाहन दे रहा हैः-

(श्री रामचन्द्र जी के मुख के शब्द)

युक्ति जैं प्रवान कीती आ-आ-आ,
ओहदी भक्ति वी सावधान होई।
विचार शब्द जैं पकड़ लिया,
ओहदी दुनियां ते ऊच्ची शान होई।।

बात बताऊं है सुनने वाली आ-आ-आ,
बात बताऊं उसे जेहड़ा सुनने योग्य होवे।
किस तरह बताऊं उसे साजन जी,
जेहड़ा पुत्र ही अयोग्य होवे।।

(श्री साजन जी कह रहे हैं)

ओ दाता हनुमान जी आ-आ-आ,
जेहड़ा शब्द विचार बता रहे हो।
जैं शब्द विचार पकड़ लिया,
ओहदे सारे रोग हटा रहे हो।।
चरण शरण दयालु श्री राम जी दी आ-आ-आ,
साडी अरज़ सुणो ज़रूर।
रोग हटे संकट मिटे,
एहो साडी अरज़ी करो मन्जूर।।
रोग सारे मिट गये आ-आ-आ,
मिट गया ओहदा परिवार।
मुक गई ओहदी आरबला,
जेहड़ा रोग रिहा हाई दिखाल।।
रोग हटे कलेश हटे, गई विपत्ति सारी आ-आ-आ,
सुख सम्पति घर में बसे।
जित्थे खड़े हो गए कृष्ण मुरारी,
कृष्ण मुरारी चतुर्भुजधारी।।

(श्री महाबीर जी कह रहे हैं)

ओ बोल उठे हनुमान इस विच जीवां दा कल्याण।
अपना आप लवो पहचान इस विच जीवां दा कल्याण।।

ओ खुशियां माणे ओ हो, ओ खुशियां माणे वाह वाह।
ओ श्री राम जी दा बन गया यार,
कैसा सोहणा पावे सिंगार।
ओ देख लवे सारा विस्तार, ओ हो रंग माणे वाह वाह,
ओहो रंग माणे ओ हो।।

(यह शब्द जनता बोल रही है)

भगवान बैठे कुर्सी ते, जनता कैसी हर्षाई।
के अखियां मिच वे गइयां, ओ कैसी रौशनी आई।
के अखियां मिच वे गइयां, ओ कैसी रौशनी आई।
लालसा हाई श्री राम दीदार दी, नहीं कीती असां कमाई।
के अखियां मिच वे गइयां, अखियां कमज़ोरी दिखाई।
के अखियां मिच वे गइयां, अखियां कमज़ोरी दिखाई।।

सजनों यह कीर्तन सुनने के बाद निश्चित ही आपके मन के अन्दर, आत्मनिरीक्षण करते हुए आत्मसंयम द्वारा विकार वृत्तियाँ छोड़ यानि निर्विकारी बन, इसी जन्म में परमपद प्राप्त करने की लालसा उत्पन्न हो गई होगी। अगर ऐसा ही है तो चहुं ओर अपने फैले हुए ख़्याल को समेटकर, सही ढंग से इंसानियत अनुरूप मंगलमय जीवन जीने की युक्ति को प्रवान करना आरम्भ कर दो ताकि सत्य-धर्म की प्रबल भक्ति करते हुए आपकी शक्ति ताकतवर हो जाए और आप थोड़े ही परिश्रम से सफ़लता प्राप्त कर लो। इस संदर्भ में सजनों अपने मन में दुःखों के प्रभाव से पनपे नकारात्मक वातावरण को सकारात्मकता में परिवर्तित कर पुनः शांति प्राप्त करने हेतु दुःख में ही सुख मानकर उनके निवारण का यत्न करो और निम्नलिखित बिन्दुओं पर सत्यता से विचार करते हुए, पाई गई कमज़ोरियों पर विजय पा एक ताकतवर इंसान की तरह निर्भयता से परमपद प्राप्ति की ओर बढ़ोः-

1. कहीं हम इन्द्रिय विषयों यथा रूप, रस, गंध, शब्द व स्पर्श में फँस कर, आशा-तृष्णा व लोभ-लालसा का शिकार तो नहीं हो गए? अगर ऐसा है तो याद रखो जिस इंसान का

मन उसके वश में नहीं होता वह अज्ञानी इंसान इच्छाओं का गुलाम बन, अपने यथार्थ अस्तित्व की पहचान खो बैठता है और इस प्रकार स्वेच्छापूर्वक इस जगत में विचरते हुए, अपने जीवनकाल में दुःखों के संग्रह के अतिरिक्त और कुछ कर पाने के योग्य नहीं रहता। इसीलिए तो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया हैः-

जिस वेले भैणां नू लोभ जो आवे,
होश हवास पिया भुलावे।
लोभ तों आप बचा सुरति,
तूं अपना आप बना सुरति।।

2. क्या हम स्थाई रूप से दुःख-सुख के चक्रव्यूह से निजात पाने हेतु अपने मन को सदैव प्रभु में लीन रखते हुए अकर्त्ता भाव से निष्काम कर्म करने में प्रवृत्त हो पा रहे हैं या अभी भी कामना हमें दिन रात सताती रहती है। यदि ऐसा है तो याद रखो कि सच्चेपातशाह जी कहते हैं किः-

भैणां नूं हुण कामना सतावे घर घर दे विच भीख मँगावे।
बली नाम दी भिक्षा पा सुरति तूं अपना आप बना सुरति।।

3. कहीं हम दुःख के हेतु, मोह रूपी अज्ञान या भ्रांति के कारण, ईश्वर का ध्यान छोड़कर शरीर तथा सांसारिक वस्तुओं को अपना तथा सब कुछ समझ उनसे प्रेम तो नहीं कर बैठे? अगर ऐसा है तो याद रखो यह विचित्र संसार मन को लुभा इंसान के अन्दर अपने प्रति मोह उत्पन्न करता है। यही मोह अपने आप में भय, दुःख, घबराहट, अत्यन्त चिंता आदि से उत्पन्न चित्त की विकलता अर्थात् मूर्च्छा का कारण

बनता है। इसीलिए तो सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ कह रहा है:-

मोह माया दे जाल विच सोई,
सारी उमर बिना नाम दे खोई।
हुण पँजां नूं मार भजा सुरति,
तूं अपना आप बना सुरति।।

4. कहीं हम स्वार्थपरता के कारण, पीठ पीछे दूसरों की निंदा-चुगली यानि वास्तविक या कल्पित बुराई करके व दोषों की चर्चा करके एक दूसरे को परस्पर लड़ाने व भिड़ाने का प्रयत्न तो नहीं करते? यदि ऐसा है तो याद रखो ऐसा इंसान अपनी नकारात्मक सोच, विचार, वृत्ति व स्मृति के कारण खुद तो अत्यन्त दुःख भोगता ही है साथ ही अन्यों को भी अपने दुराचरण द्वारा संतप्त करता है। इस संदर्भ में सच्चेपातशाह जी कहते हैं:-

एह पहरेवे बड़े निकम्मे, मुड़ चौरासी दे विच घुम्मे।
इन्सान हो के गल्तियाँ खा खा,
सम्भले नहीं सारी उमर ओ रुन्ने।।

5. क्या हम तमाम संसारी कष्ट-क्लेशों से मुक्त होने हेतु, नित्यता के भाव में स्थिर हो, युवावस्था की भक्ति यानि समभाव-समदृष्टि की युक्ति पर अडिग बने रहने का महातप निर्विघ्नता से सम्पन्न कर पा रहे हैं यानि कहीं समभाव-समदृष्टि के स्कूल की पढ़ाई व सजन भाव की मर्यादाओं का उल्लंघन तो नहीं कर बैठते? सजनों यदि ऐसा हो रहा है तो सच्चेपातशाह जी के वचनानुसार 'विचार शब्द के महामंत्र

को हर समय अपने सामने रखो और हर एक कदम पर अपनी तुलना करते जाओ ताकि कोई ऐसा कदम न उठ जाए या कोई ऐसा ख़्याल न घर कर जावे जिससे समभाव समदृष्टि की पढ़ाई का उल्लंघन हो।'

6. क्या हम प्रति क्षण शरीर के स्थान पर अपनी आत्मा से सम्बन्ध रखते हुए उसी के गुणों को अपने स्वभाव के अंतर्गत करते हुए तद्नुसार आचार-विचार व व्यवहार अपना पा रहे हैं या नहीं? यदि नहीं तो सजनों इस संदर्भ में सच्चेपातशाह जी हमें उचित युक्ति बताते हुए कहते हैं किः-

शारीरिक स्वभावां नूं जे जितना चाहो,
कुसंगी संकल्प नूं सजन बनाओ।
फिर झुखना तुहाडा हट ही गया,
संतोष वल्लों जित पाओ।

पूर्ण संतोष-सजनों यही है दुःखों से निजात पाने का द्योतक। अतः संतोष में आओ और अपना जीवन आनन्दमय बनाओ।

7. अंत में सजनों सच-सच बताओ कि इस दुनियाँ के दुःखों से छुटकारा पा, यम की त्रास से बचने के लिए, क्या हम सच्चेपातशाह जी के वचनानुसार, समभाव-समदृष्टि की युक्ति अनुसार, परस्पर सजन-भाव अनुरूप आचार-विचार व व्यवहार अपना कर, मृतलोक पर फ़तह पाने का यत्न सही तरीके से कर रहे हैं या नहीं? इस संदर्भ में मत भूलना कि सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अनुसार एकमात्र यही तरीका है जिसके द्वारा हम संकल्प पर फ़तह पा आवागमन के चक्रव्यूह से आज़ाद हो सकते हैं। तभी तो कुदरती ग्रन्थ में

श्री साजन जी कहते हैंः-

सजनों सजन शब्द चलाओ जित्तो मृतलोक नूं,
सजनों जित्तो मृतलोक नूं।

अंततः सजनों हम मानते हैं कि आप सभी ने सजन भाव के वर्त वर्ताव द्वारा मृतलोक पर फ़तह पाने के योग्य बनने हेतु उचित ढंग से अपनी-अपनी परख कर ली होगी। इस संदर्भ में सजनों नतीजा जो भी रहा हो, पर हम में से किसी ने भी मृतलोक पर फ़तह पा परमपद प्राप्त करने के संकल्प को नहीं भूलना। इस हेतु सर्वप्रथम हमने संकल्प कुसंगी को संगी बनाकर उसे सजन और संगी बनाना है। इससे मन को संतोष प्राप्त हो जाएगा। जब संतोष प्राप्त हो गया तो फिर से हमारे संतुष्ट मन में असंतोष पैदा न हो जाए इस हेतु हमने संकल्प पर फतह पानी है। सजनों यदि सूक्ष्मतया समझने का प्रयत्न करो तो इन दोनों परिस्थितियों में लेश मात्र अंतर है। पहली स्थिति के अंतर्गत हमें संतोष प्राप्त होता है व दूसरी के अंतर्गत हम संकल्प पर फतह पा कर परोपकार की भावना से ओत-प्रोत हो अन्यों को संतोष प्रदान करते हैं। सजनों यह अति उत्तम अवस्था है। इसी अवस्था में प्रत्येक सतयुगी इंसान का मन-मस्तिष्क स्थिर रहता है। इस उपलब्धि के दृष्टिगत सजनों अगर हम इस शुभ कार्य की सिद्धि के प्रति दृढ़ संकल्प हैं, तो हमें, अपनी ताकत व कमज़ोरियों का समय-समय पर जायज़ा लेते हुए, व उत्साहपूर्वक अपनी मंज़िल की प्राप्ति सुनिश्चित करने के लिए हर प्रकार की कुर्बानी देने यानि सांसारिक सुखों को तुच्छ मानकर उनको त्यागने के लिए तत्पर रहना होगा। तो

क्या हम समझें कि इस कार्य में सफ़लता प्राप्त करने के प्रति कोई भी कमज़ोर पड़कर हमें पीठ दिखा निराश नहीं करेगा यानि स्वार्थपरता को त्याग कर परमार्थ का रास्ता अपनाने से नहीं सकुचाएगा। याद रखो यह कार्य सचेतन रहते हुए अति विश्राम के साथ सम्पन्न करना होगा। क्योंकि सच्चेपातशाह जी कहते हैं कि 'भगवान मिलते हैं विश्राम और ध्यान से। अगर हम सजनों ने भगवान को पाना है तो सब सजन विश्राम में रहें'। इस कथन को यादगीरी में रखते हुए सजनों अपने आपको कमज़ोर समझ इन्द्रिय विषयों में मत उलझो अपितु हिम्मत में आओ और ख़्याल ध्यान वल व ध्यान प्रकाश वल कर, अपने हृदय में सकारात्मक वातावरण का निर्माण करो। इस प्रकार निर्विकारी हो परमात्मा से मेल खा अपना जीवन सफल बनाओ।

इसी संदर्भ में सजनों पूर्ण सफलता प्राप्त करने हेतु हमको इन्सानियत धर्म पर खड़े होने के मकसद को समझना होगा। यह मकसद है जगत कल्याण। सजनों जो इस प्रवृत्ति से हटकर कार्य करता है वह अधर्मी है व अधर्म के रास्ते पर चलते हुए कुकर्म-अधर्म ही कमाता है। इसके विपरीत जगत कल्याण को निज धर्म समझ कर उस पर चलने वाला मानव सबको बराबर समझता है। उसकी नज़र में सर्वहित सर्वोपरि होता है इसलिए व्यक्तिगत तेरी-मेरी उसके रास्ते में कोई बाधा नहीं उत्पन्न कर सकती और वह समस्त सांसारिक बंधनों के मोह से मुक्त रह सदा पक्षपात रहित निष्काम बना रहता है। याद रखो ऐसा निष्कामी ही गृहस्थाश्रम की विभिन्न संघर्षात्मक परिस्थितियों में विचरते हुए भी इंसानियत धर्म पर मजबूती से डटा रहता है। इस प्रकार निज धर्म पर

उसकी यह मजबूती उसकी मानसिक स्थिरता का परिचायक होती है।

सजनों आप सब भी इसी मानसिक स्थिरता को प्राप्त कर सको इस परिप्रेक्ष्य में ध्यान से सुनो कि इस हेतु समस्त दुःखों से छुटकारा पा परमानन्द की अनुभूति करने के लिए हमें इन्द्रिय निग्रह के महत्त्व को मात्र समझना ही नहीं होगा अपितु आत्मसात् भी करना होगा ताकि हम यथार्थता से जीवन जीने के योग्य बनें और इस प्रकार अपना परमलक्ष्य प्राप्त करने के योग्य बनें। इस विषय पर सजनों हम आगामी कक्षाओं में बात करेंगे।

दिनाँक 11 जून 2017 का सबक़

आत्मनिग्रह-1

सजनों गत सप्ताह हमने जाना कि यह संसार दुःखी जीवों का घर है। अतैव ऐसे संसार में रहते हुए हमारे लिए बनता है कि हम घर-परिवार व जगत में विचरते समय अपना हर कदम शक्तिशाली होकर, अत्यन्त समझदारी से उठाएँ ताकि जिस उत्तम लक्ष्य यानि परमपद प्राप्ति की ओर हम बढ़ रहे हैं, उसे निर्विघ्न प्राप्त कर सकें। इस संदर्भ में सजनों हर कदम समझदारी से उठाने के लिए प्रसन्नचित्तता बहुत महत्त्व रखती है। अगर हम प्रसन्नचित्त नहीं हैं तो हम समझदारी से कदम नहीं उठा सकते क्योंकि दुःख का प्रभाव यानि सोच उसके मध्य रुकावट बनती है जिसके कारण हम एक अविवेकी इंसान की तरह अपने रास्ते से भटक जाते हैं। ऐसे भटके व अटके हुए इंसानों को सजनों फिर कोई नहीं पूछता और अंततः वे दुर्गति को प्राप्त होते हैं यानि उनका नरकों में वास होता है।

सजनों आत्मोन्नति हेतु, भरपूर प्रयत्न करना, व्यक्तिगत स्तर पर खुद करने की आवश्यकता है यानि इसमें कोई अन्य मददगार नहीं हो सकता। इस हेतु तो मात्र अपने अंतर्मन में शांति का वातावरण निर्माण करने की आवश्यकता है क्योंकि शांत मन ही घटित परिस्थितियों की गहराई में उतर कर उन्हें बेहतर तरीके से समझ सकता है और शान से सत्य-धर्म के निष्काम मार्ग पर आगे बढ़ सकता है। वरना तो अपनों की--परायों की उन्नति पथ में अनेकानेक रुकावटें पैदा करने की आदत पड़ जाती है और इंसान इन रुकावटों

में फँस कर कमज़ोर पड़ जाता है और पथभ्रष्ट हो जाता है। इस तरह जब सजन आगे नहीं बढ़ पाता तो फिर पीछे की ओर ही कदम बढ़ाना शुरू कर देता है। सजनों किसी के साथ ऐसा न हो इस हेतु आत्मनिग्रह करने की अत्यन्त आवश्यकता है। आओ आज इसी के विषय में जानते हैंः-

साडा है सजन राम, राम है कुल जहान

अर्थात्
ईश्वर हमारा मित्र/प्रियतम सर्वव्यापक है, उसी को जानो, मानो व वैसे ही गुण अपनाओ।

शब्द है गुरु, शरीर नहीं है,

अर्थात्
ज्ञानी को नहीं ज्ञान को अपनाओ और निमित्त में नहीं नित्य में श्रद्धा बढ़ाओ।

इस पर सुदृढ़ता से डटे रह,
इस अटल सत्य पर स्थिर बने रहोः-

ओ३म् अमर है आत्मा, आत्मा में है परमात्मा

सजनों यदि परिवार का प्रत्येक सदस्य उपरोक्त सत्य पर स्थिर बना रहता है तो फिर उस परिवार के लिए एकता में बने रहना कोई सवाल नहीं बनता क्योंकि परस्पर तेरी-मेरी, वैर-विरोध समाप्त हो जाता है और इंसान सजनतापूर्वक एक दूसरे के साथ सद्भावना से विचरता हुआ अफुरता से अपने मन को प्रभु में लीन रखने में समर्थ हो जाता है।

सजनों जब एक बार इसी जीवन में परमपद प्राप्ति का

संकल्प ले ही लिया है तो फिर आओ, आत्मविश्वास के साथ खुद पर मुक्कमल आत्मनियंत्रण रखते हुए, अपनी मंजिल की ओर निर्विघ्न बढ़ने हेतु हमें क्या करना है, उस युक्ति को जानते हैं ताकि हम भूल कर भी, इस जीवनकाल में सांसारिक विषयों का उल्टा-पुल्टा ज्ञान प्राप्त कर व संकल्प-विकल्पों में उलझ, अधर्मयुक्त जीवन जीते हुए अपनी हानि न कर बैठें। सजनों जानो कि यह अपने जीवन की बाज़ी जीतने का महान विषय है जिसके लिए आत्म अनुशासित व जितेन्द्रिय होकर सत्य-धर्म की ध्यानपूर्वक साधना करने की नितांत आवश्यकता है। इस संदर्भ में सजनों आत्मनिग्रही बनकर, एक सचेतन इंसान की तरह सत्य-धर्म की साधना करने के लिए, अब जो भी आपको बताया जाएगा, वह सब दिलचस्पी में आकर सुनना व उसे समझ कर अमल में लाने का पुरुषार्थ दिखाना। अब ध्यान से सुनो कि आत्मनिग्रही बनने के लिए सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ हमें क्या कह रहा हैः-

' काम, क्रोध, लोभ, मोह अहंकार को जीतना है। इन सब में बड़ा है काम। काम का परिवार है कामना। काम की दोस्ती है क्रोध से। यत्न कर कर के सजन हार गये। लेकिन जब कोई कामना पूरी नहीं हुई तो क्रोध उत्पन्न होता है। लोभ का दोस्त है मोह। अगर किसी ने लालच दिखाया, तो उस के साथ सजनों का मोह पड़ जाता है। सब सजनों को मालूम ही है कि अहंकारता कुल नाशक है। जिस सजन को ब्रह्म से ब्रह्म होने की चाहना है तो उसने सम, सन्तोष, धैर्य, सच्चाई, धर्म की पढ़ाई समाप्त करने के बाद फिर काम को जीतना है। आप सब सजन पढ़ चुके हैं

कि ऋषि विश्वामित्र, राज ऋषि, श्रेष्ठ ऋषि, उत्तम ऋषि और महाऋषि तो हो गये लेकिन ब्रह्म ऋषि न हो सके। वह यत्न तो लड़ाते थे लेकिन फिर गिर जाते थे। आखिर में जब उन्होंने काम को जीता तो फिर वह ब्रह्म ऋषि की पदवी पर पहुँचे। इसलिए सजनों को चाहिए कि गृहस्थ आश्रम में रहते हुए आहिस्ता आहिस्ता अपनी इन्द्रियों पर कन्ट्रोल करके काम पर फतह पावें।'

सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ से उद्धृत उपरोक्त गद्यांश में सजनों ब्रह्म ऋषि की पदवी अर्थात् परमपद प्राप्ति हेतु 'निग्रह' की महत्ता को, 'जीतना' व 'कन्ट्रोल' मात्र इन दो शब्दों के प्रयोग द्वारा, उदाहरण सहित बड़े ही सरल व स्पष्ट शब्दों में बखूबी व्यक्त किया गया है। निःसंदेह सजनों इस द्वारा सच्चेपातशाह जी हमें जीवन लक्ष्य प्राप्ति में, हृदय की निर्मलता व अंतःकरण की विशुद्धता की अतुलनीय भूमिका का बोध कराते हुए, युक्तिसंगत जितेन्द्रिय एवं निर्विकारी बने रहने का तरीका तो समझा ही रहे हैं, साथ ही मन, बुद्धि, इन्द्रियाँ, जगत आदि की माया में फँस कर, जीव किस प्रकार विषयभोगी यानि विकारी हो जन्म की बाज़ी हार जाता है, इसका स्पष्टीकरण भी दे रहे हैं। आत्मोद्धार हेतु सजनों आओ जीवन में 'इन्द्रिय निग्रह', 'आत्मसंयम', 'आत्मनियंत्रण' आदि अपनाने की महत्ता को गहनता से समझते हैं और इस प्रकार जितेन्द्रिय यानि समवृत्ति होने का निश्चय लेते हैं।

'इन्द्रिय निग्रह'

इन्द्रिय निग्रह दो शब्दों के योग से बना है यथा इन्द्रिय तथा निग्रह। यहाँ इन्द्रिय से तात्पर्य - शरीर के उन अवयवों यानि

अंगों से है, जिनके द्वारा विषयों का यानि बाहरी पदार्थों के भिन्न-भिन्न गुणों का भिन्न-भिन्न रूपों में अनुभव, बोध या ज्ञान होता है तथा जिनके द्वारा किसी भी प्रकार का कर्म सम्पन्न किया जाता है तथा निग्रह का अर्थ है रोकना, वश में करना, बाँधना, दमन करना आदि। इस प्रकार इन्द्रिय-निग्रह का अर्थ है - इन्द्रियों को वश में करना, इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करना, उन्हें विषयों की ओर जाने से रोकना। यहाँ विषय का अर्थ स्पष्ट करते हुए बता दें कि विषय वे हैं जिसे इन्द्रियाँ ग्रहण करती हैं। जैसे नाक गंध को ग्रहण करती है। यहाँ गंध नाक का विषय है।

इन्द्रियाँ दो प्रकार की होती हैं। एक - ज्ञानेन्द्रियाँ और दूसरी - कर्मेन्द्रियाँ। जो विषयों का बोध कराती हैं उन्हें ज्ञानेन्द्रियाँ कहते हैं तथा जो कर्म सम्पन्न करती हैं उन्हें कर्मेन्द्रियाँ कहते हैं। ज्ञानेन्द्रियों की संख्या पाँच है और उनके नाम हैं - दर्शनेन्द्रिय-आँख, श्रवणेन्द्रिय-कान, घ्राणेन्द्रिय-नाक, रसनेन्द्रिय-जिह्वा और स्पर्शेन्द्रिय-त्वचा। इसी प्रकार कर्मेन्द्रियों की संख्या भी पाँच है यथा हाथ, पैर, वाणी, गुदा, उपस्थ/लिंग। इन दस इन्द्रियों के अतिरिक्त हमारे वेद शास्त्रों में मन, जो सुख-दुःखादि के ज्ञान का साधन है तथा जिससे संकल्प-विकल्प, इच्छा, विचार व अनुभव होता है, को उभयेन्द्रिय (अर्थात् जिसमें ज्ञानेन्द्रिय व कर्मेन्द्रिय दोनों के गुण हों) माना गया है। इस प्रकार इसे मिलाकर इन्द्रियों की कुल संख्या ग्यारह है। ज्ञात हो कि संशयात्मक यह मन आंतरिक व्यापार में स्वतन्त्र है पर बाह्य व्यापार में इंद्रियाँ परतंत्र हैं। इन्द्रियों में सबसे प्रभावशाली आँख और कान हैं, शेष का प्रभाव सीमित है।

याद रखो प्रत्येक ज्ञानेन्द्रिय का अपना-अपना विषय है जैसे आँख का विषय रूप है, कान का विषय शब्द है, नाक का विषय गंध है, जिह्वा का विषय रस है और त्वचा का विषय स्पर्श है। इस तरह ज्ञानेन्द्रियों के विषय समान नहीं हैं यानि यदि एक ज्ञानेन्द्रिय का विषय एक तरह का है, तो दूसरी ज्ञानेन्द्रिय का विषय गुणात्मक अन्तर के साथ दूसरा है। ये सभी इन्द्रियों के सूक्ष्म विषय हैं। सूक्ष्म विषय के अलावा ज्ञानेद्रियों के स्थूल विषय भी हैं। इन्हें हम पंचमहाभूतों - आकाश, वायु, अग्नि, जल व पृथ्वी के नाम से जानते हैं। इन्द्रियों का प्रत्येक सूक्ष्म विषय अपने-अपने स्थूल विषयों से सम्बद्ध है। जैसे - आँख अग्नि से, शब्द-आकाश से, स्पर्श वायु से, स्वाद (रस) जल से व गन्ध धरती से सम्बन्धित है। सजनों इन पंचविराट् महाभूतों से सिर्फ हमारे शरीर की नहीं, बल्कि पूरे विश्व की रचना हुई है।

उपरोक्त विवेचना से सजनों यह स्पष्ट हुआ कि मनुष्य का शरीर इन्हीं इन्द्रियों पर आश्रित है। इस संदर्भ में आओ अब ध्यान से समझें कि इन पंचभूतों में रहते हुए हमारी ज्ञानेन्द्रियाँ व कर्मेन्द्रियाँ, मन व बुद्धि के सहयोग से कार्य करती हुई किस प्रकार मानव को इस विषयी जगत का गुलाम बना देती हैं:-

1. सजनों विषय बाह्य हैं। इनकी इन्द्रियों से स्वतन्त्र सत्ता जगत में है।

2. ज्ञानेन्द्रियाँ मन के सहयोग से बाहरी विषय का चित्त में विधान यानि अनुष्ठान/व्यवस्था करती हैं।

3. चित्त में प्रतिष्ठित विषयों के मानसिक रूपों का विश्लेषण और सामान्यीकरण बुद्धि करती है।

4. शरीर के विभिन्न अंगों में इन्द्रियाँ स्थित हैं, पर मन-बुद्धि उनके वास्तविक अभिधान यानि रहने का स्थान हैं। वे मन और बुद्धि के सहारे ही मनुष्य को ज्ञानसम्पन्न बनाती हैं।

5. इस परिप्रेक्ष्य में याद रखो यदि मन और बुद्धि, इन्द्रियों का साथ न दें तो वे निरर्थक सिद्ध होती हैं। जैसे - आँख का काम है देखना। यदि आँख के व्यापार के साथ मन का सहयोग न हो तो आँख देखते हुए भी न देखेगी। उदाहरणस्वरूप यदि कोई परिचित आदमी हमारे पास से गुजर रहा है और हमारा मन भीतर ही अपने संकल्प-विकल्प में रत है या उधेड़बुन में लगा है तो वह आदमी दिखते हुए भी दिखाई नहीं पड़ेगा। इसी को हम व्यवहार में कहते हैं कि हमारा ध्यान नहीं गया।

6. अतः इन्द्रियों को, विषय और मन-बुद्धि के बीच साधन माना गया है और उनसे अधिक महत्त्व मन और बुद्धि को दिया जाता रहा है। मन और बुद्धि के अभाव में इन्द्रियों के व्यापार कोई मायने नहीं रखते।

7. सजनों विषयों के प्रति इन्द्रियों का व्यवहार दो प्रकार का होता है - प्रवृत्तिमूलक और निवृत्तिमूलक। जो विषय मनोनुकूल होते हैं, इन्द्रियाँ उनसे जुड़ती हैं, उनकी तरफ खिंची चली जाती हैं और जो मनोनुकूल नहीं होते, इन्द्रियाँ उनसे दूर हट जाती हैं। उदाहरणस्वरूप रूप सुन्दर है तो आँखें उधर लगी रहेंगी, यदि विकराल और डरावना है तो

आँखें उन की तरफ से मुख मोड़ लेंगी। यह बात सभी विषयों के बारे में कही जा सकती है।

8. हमारी कर्मेन्द्रियाँ अपने व्यापार और प्रवृत्ति के लिये मूलतः ज्ञानेन्द्रियों पर निर्भर हैं। इसीलिए कर्मेन्द्रियों की तुलना में ज्ञानेन्द्रियों का महत्त्व प्राथमिक माना जाता है।

9. कर्मेन्द्रियाँ भी ज्ञानेन्द्रियों की तरह वही करती हैं जो मन करवाना चाहता है या बुद्धि जैसा उन्हें निर्देश देती है। उदाहरणतः लिखने का काम हाथ करते हैं और चलने का पैर, लेकिन लिखने और चलने में हाथ-पैर तब तक प्रवृत्त नहीं होते जब तक बुद्धि निर्देश नहीं देती।

10. इससे सजनों स्पष्ट होता है कि इन्द्रियों के स्थान पर मन को वश में करने की अधिक आवश्यकता है। मन ही इन्द्रिय विषयों का चिन्तन करता है और इन्द्रियों को उनमें अनुरक्त करता है। तभी तो सजनों सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है:-

मन शैतान शैतानी करे, भोगे विषय विकार।
मौत आवाज़ां मारदी, लश्कर होया तैयार।।

इस प्रकार मन ही विषयों का भोक्ता है, आत्मा नहीं। इन्द्रियां तो मात्र साधन हैं, माध्यम हैं और उपकरण हैं जो मन के आदेशों का पालन करती हैं। असली कर्त्ता-धर्त्ता तो मन ही है। यह बात स्मरण रखने योग्य है कि विषयों यानि सुख भोगों में लिप्त मन ऐश्वर्य भोगते-भोगते अपनी चेतना शक्ति गँवा बैठता है और उनमें आसक्त हो उन्हीं का होकर रह जाता है। इस आसक्ति की दशा में विषय इंसान के अन्दर

नहीं घुसते अपितु इंसान विषयों में घुस जाता है और उसका ख़्याल चारों तरफ से विषयों से घिर कर उन्हीं का होकर रह जाता है। इस संदर्भ में सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ हमें और स्पष्टता से समझा रहा है:-

पंज ज्ञान इन्द्रियां पंज कर्म इन्द्रियाँ, रथ ते मन असवार।
अंजनी लाल सानूं मिल गए, मन नूं लिया ने संवार।।

स्पष्ट है सजनों मन का निग्रह होने के पश्चात् ही इन्द्रियों का निग्रह संभव है। चंचल मन का निग्रह, यह कोई सहज काम नहीं अपितु वैराग्य व अभ्यास का विषय है तथा इसके लिए निरंतर प्रयत्नरत रहने की आवश्यकता है।

इस संदर्भ में जानो कि पूर्णता प्राप्त करने के लिए पूर्ण सामर्थ्य और उत्साह के साथ एक ही क्रिया करना यानि फिर-फिर प्रयत्न करना अभ्यास कहलाता है। सजनों लगातार अभ्यास करने से यानि एक ही विषय का बार-बार चिंतन करने से मन व मस्तिष्क एकाग्र हो जाता है। इस प्रकार सतत् प्रयत्न अभ्यास का स्वरूप है और चित्तवृत्तियों का निरोध अभ्यास का प्रयोजन। पठन-पाठन, लेखन, पाक, क्रय-विक्रय सब कार्य अभ्यास से ही सिद्ध होते हैं। अभ्यास से कोई कार्य दुष्कर नहीं रहता। इसके लिए श्रद्धा और विश्वास के साथ धैर्य से निरंतर यानि उठत-बैठत, स्वप्न-जाग्रत प्रयत्न करने की आवश्यकता होती है।

सजनों विवेक द्वारा विषयों को अनंत दुःखरूप और बन्धन का कारण समझकर उनमें पूर्णता अरुचि के हो जाने तथा उनमें सर्वथा संग दोष के निवृत्त हो जाने का नाम वैराग्य है।

सरल शब्दों में मन की वह वृत्ति जिसके अनुसार संसार की विषयवासना तुच्छ प्रतीत होने लगती है और व्यक्ति विषयभोग आदि से निवृत्त हो जाता है, वैराग्य कहलाता है। सजनों मन में वैराग्य उत्पन्न होने पर मन किसी विषय की ओर नहीं जाता और चित्त में कोई वृत्ति नहीं रहती। फलतः चित्त निर्मल, शांत व प्रसन्न हो जाता है और आत्मशुद्धि उत्तमोत्तम प्रतीत होती है। सजनों इसी प्राप्ति के दृष्टिगत सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में सुरत रूप में दासी महाबीर जी से प्रार्थना करती हैः-

वैराग दी हनेरी चला ही दियो,
सूरज अगों कंध हटा ही दियो।
दासियां नूं चरणां विच बिठा ही दियो,
मेरे महाबीर प्यारे जी।।

सजनों भक्ति-भाव द्वारा जब ख़्याल ध्यान वल व ध्यान प्रकाश वल कर, चित्त की वृत्तियों को आत्मस्वरूप में ठहराने का यत्न किया जाता है, तब मन अन्य विषयों में राग होने के कारण उनकी ओर दौड़ता है यानि अक्षर चलाने पर भी मन एकाग्र नहीं होता और तरह-तरह के फुरने सताते रहते हैं। विषयों में राग सकाम कर्मों से होता है, इसलिए विषयों से वैराग्य प्राप्त करने के लिए कर्मों में निष्कामता का होना आवश्यक होता है अर्थात् पाप रूप अधर्म कर्म तो त्याज्य होते ही हैं, पुण्य रूप धर्म अर्थात् कर्त्तव्य कर्मों को भी उनकी फलों की इच्छा को छोड़कर निष्काम व परोपकारिता के भाव से करना आवश्यक होता है। इस तरह निष्कामता का भाव भी ध्यान द्वारा चित्त में स्थिर हो जाता है। परिणामस्वरूप

मन उपशम हो विषयों की तरफ से वैरागी हो जाता है और युक्ति प्रवान कर यानि शब्द ब्रह्म विचार धारण कर, परमार्थ सिद्ध करने में जुट जाता है। इसीलिए तो सजनों सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया हैः-

मन शैतान शैतानी करे, रघुनाथ जी दा रस्ता भुलाम।
अंजनी लाल सानुं मिल गए, मन नूं मन्दिर बनाम।।

सजनों उपरोक्त बातचीत द्वारा यह स्पष्ट होता है कि मनोनिग्रह ही प्रत्येक कार्य में सफलता प्राप्ति का हेतु है। सृष्टि के सारे महान पुरुषों की अद्‌भुत शक्तियों में उनके मन की एकाग्रता का रहस्य छिपा हुआ है। मन के एकाग्र होने पर ही परमार्थ सिद्धि हो सकती है और सद्-वृत्तियों के विकास के साथ-साथ बुरी वृत्तियों व मानसिक रोगों का परिहार हो सकता है। इस संदर्भ में सजनों गीता में भी कहा गया है 'जो पुरुष विवेकयुक्त बुद्धिसारथी से विषय विकारों से युक्त मन का निग्रह करता है वह व्यापक ब्रह्म के परम पद को प्राप्त करता है।'

सजनों परमपद प्राप्ति हेतु निग्रह के विषय में आगे जानकारी हम आगामी कक्षा में प्राप्त करेंगे।

दिनाँक 18 जून 2017 का सबक़

आत्मनिग्रह-2

साडा है सजन राम, राम है कुल जहान

अर्थात्

ईश्वर हमारा मित्र/प्रियतम सर्वव्यापक है, उसी को जानो, मानो व वैसे ही गुण अपनाओ।

शब्द है गुरु, शरीर नहीं है,

अर्थात्

ज्ञानी को नहीं ज्ञान को अपनाओ और निमित्त में नहीं नित्य में श्रद्धा बढ़ाओ।

इस पर सुदृढ़ता से डटे रह,
इस अटल सत्य पर स्थिर बने रहोः-

ओ३म् अमर है आत्मा, आत्मा में है परमात्मा

गत सप्ताह सजनों हमने जाना कि आत्मपद की प्राप्ति हेतु आत्मनिग्रह करना आवश्यक है। मुख्यतः आत्मनिग्रह शब्द से तात्पर्य खुद को नियंत्रण व नियम में रखने से है। अन्य शब्दों में आत्मनिग्रह मानव के मनमाने क्रियाक्लाप पर रोक यानि अंकुश तो लगाता ही है साथ ही विचारों को सुदृढ़ कर, आत्मानुशासन द्वारा चित्त वृत्तियों का निरोध भी करता है। इससे शारीरिक, मानसिक व आत्मिक शक्ति का विकास होता है, परिणामतः आत्मविश्वास बढ़ता है और आध्यात्मिक सुख प्राप्त होता है। आओ इसी संदर्भ में आज जानें कि आत्मनिग्रह करने की आवश्यकता क्यों पड़ती हैः-

सजनों सामान्यतः आदमी एक साथ दो संसारों में रहता है। एक संसार वह है जो हमारे बाहर है, जिसकी रचना इन्द्रिय-विषय करते हैं तथा जिसे हम भौतिक जगत के नाम से जानते हैं। एक संसार हमारे चित्त के भीतर है जिसकी रचना इन्द्रियों की मदद से मन करता है और जिसे मानसिक जगत के नाम से जाना जाता है। भौतिक प्रपंच बाहर से और मानसिक प्रपंच अन्दर से यानि सर्गुण-निर्गुण का घेरा आदमी को बाँधे या घेरे रहता है। हमारे भीतर जो मानसिक प्रपंच है, चित्तवृत्ति है, उसका निरोध योग कहलाता है और भौतिक प्रपंच जो बाहर है व संसारी विषयों से रचित है, उनसे इन्द्रियों का निरोध करने का नाम इन्द्रिय-निग्रह कहलाता है।

हकीकत में इस जीवनयात्रा के दौरान होता यह है कि कभी तो हमारी इन्द्रियाँ संसारोन्मुखी हो जाती हैं और कभी अन्तर्मुखी यानि बाह्य संसार के मानसिक रूप में खोई रहती हैं। इसे मानस या हृदय ग्रन्थि यानि अविद्या रूपी संसार का बंधन भी कहते हैं। इन्हीं दोनों के बीच उलझा हुआ अचेतन आदमी पल-पल जन्मता-मरता रहता है। इस प्रकार न जाने वह कितनी बार जन्मता-मरता है परन्तु बाहरी और भीतरी बन्धन उसे आसानी से नहीं छोड़ते। बाहरी सांसारिक मोह बन्धन से मुक्ति के लिए ही सजनों इन्द्रिय-निग्रह पर बल दिया जाता है, पर भीतर के बन्धन से मुक्ति भी उतनी आवश्यक है। इसलिए दोनों की मुक्ति के लिए दो भिन्न प्रकार के विधान हैं। इस विषय में सजनों सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया हैः-

पंज ज्ञान इन्द्रियां पंज कर्म इन्द्रियां विच है ख्याल तुम्हारा।
मनुराज नूं छड के सजनों टप्पा मारो ज्ञान इन्द्रियां दा,
पावो स्थान हमारा।।

इस परिप्रेक्ष्य में सजनों जिस प्रकार कहते हैं कि कीचड़ से कीचड़ नहीं धुलता, आग से आग नहीं बुझती उसी प्रकार भीतरी यानि मानस/ख़्याली जगत जिसका निर्माण मन, बुद्धि और इन्द्रियाँ मिलकर करते हैं, उनमें यह सामर्थ्य नहीं कि वे मनुष्य को अपने बन्धनों से मुक्त कर दें। इसके लिए तो उस एकमात्र उच्च तत्व को मानक मानना पड़ता है जिसका नाम आत्मा है। सजनों यह आत्मा ही व्यापक रूप में परमात्मा है। आत्मा, परमात्मा जैसे सर्वोच्च लक्ष्य के अभाव में इन्द्रिय-निग्रह सम्भव नहीं है, इसलिए आत्मानुशासन पर बल दिया जाता है। तभी तो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है:-

तुआडी ओ खातिर पंज ज्ञान इन्द्रियाँ नूं दमन कर,
ख़्याल दयालु नाल जोड़िया।
मन शैतान दा मुख जगत वल्लों मोड़िया।
आत्मपद दी सजनां नूं है चाह,
ओ दयालु आ ओ दयालु आ।।

सजनों ऐसा इसीलिए कहा गया है क्योंकि सामान्यतः इन्द्रियाँ मन के निर्देशन में संसारोन्मुखी हो जाती हैं। नानाविध सांसारिक विषयों में जुड़ना और उनके बोध को चित्त में संचित करना उनका स्वभाव बन जाता है। इन संचित कर्मों के बंधन से मनुष्य का छूटना फिर अत्यन्त दुष्कर हो जाता है। ऐसी हालत में वे परमतत्त्व और आत्मा

दोनों से विमुख हो जाती हैं। जगत की ओर बहती हुई इन्द्रियाँ मनुष्य को मोह, माया, लोभ, प्रीति, तृष्णा से इतना ग्रस्त कर देती हैं कि वह इस दुर्लभ मानव जीवन के प्रयोजन को अस्वीकारते हुए, आजीवन उन्हीं का दास बना रहता है। सजनों यह अत्यन्त दयनीय स्थिति होती है। अतः जान लो कि आत्मा-परमात्मा के बोध, साक्षात्कार और उपलब्धि के लिए, इन्द्रियों के दासत्व से मनुष्य की मुक्ति आवश्यक है। इसी के लिए इन्द्रिय-निग्रह जरूरी समझा जाता है।

इसके पीछे एक महत्त्वपूर्ण कारण सजनों यह भी है कि यदि सांसारिक विषयों या जगत के नानात्व यानि अनेक प्रकारों के पीछे, मन इन्द्रियों को यूँ ही भगाता रहता है तो वह हमेशा अस्थिर और चंचल बना रहता है। इस अवस्था में मन कभी आँख के सहारे रूप की ओर भागता है तो कभी कान के आश्रय पर शब्द की ओर भागता है जबकि आत्मा-परमात्मा के बोध, साक्षात्कार व उपलब्धि के लिए, इस प्रकार के आचरण का त्याग आवश्यक होता है। इसी तथ्य के दृष्टिगत सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में दासी सजन श्री शहनशाह हनुमान जी से प्रार्थना करते हुए कहती है किः-

मन उपशम कर देओ मेरा महाबीर,
इसने अन्दर जमा लिया डेरा महाबीर।
इस मन नूं आप समझावो महाबीर जी,
तुहाडे चरणां तों जावां बलिहार महाबीर जी।।

इस विषय में सजनों याद रखो कि जब इन्द्रियाँ अपनी-अपनी जगह पर स्थिर हो जाती हैं, मन, संकल्प-विकल्प की तरंगें उठाने की प्रवृत्ति को अर्थात् चंचलता को त्याग उपशम व शांत

हो जाता है तो ही मनुष्य आत्मा-परमात्मा के बोध/साक्षात्कार और उपलब्धि के काबिल बनता है। यह चेतनता व विवेकशीलता से शुभ कर्मों के निमित्त जीवन जीने की बात होती है।

इसके अतिरिक्त सजनों इन्द्रिय निग्रह के संदर्भ में जरा इस बात को और ध्यान से समझो कि व्यक्ति व्यापी चेतना यानि आत्मा और विश्व व्यापी चेतना यानि परमात्मा दोनों का ही प्रवाह बाह्य के साथ-साथ आंतरिक भी है। तभी तो कहा गया है:-

जब अंश हूँ मैं प्रभु तेरा तो फरक कहाँ है तेरा मेरा।
हम एक हैं हम एक हैं, हम एकता के प्रतीक हैं।।
तूं सर्व में है तो क्या हुआ,
मैं शरीर में हूँ तो क्या हुआ।
मैं तेरी सत्ता का ही रूप हूँ,
तूं अनूप है मैं अनूप हूँ।।

इस चैतन्य से जुड़ने के लिए इन्द्रियों समेत मन को अन्तर्मुखी बनाना आवश्यक है। इसीलिए वेद शास्त्रों में ब्रह्मबोध और ब्रह्म के साक्षात्कार के लिए अन्तर्मुखता को बहुत महत्त्व दिया गया है। परन्तु सजनों यहाँ समझने की बात यह है कि यह अंतर्मुखता, व्यावहारिक अन्तर्मुखता या मनोविज्ञान के अन्तर्मुखी स्वभाव से बहुत पृथक है। व्यावहारिक अन्तर्मुखता या अन्तर्मुखी स्वभाव की स्थिति में व्यक्ति बाहरी विषयों की तुलना में चित्त में स्थित विषयों के मानसिक रूपों में रमा रहता है, इसलिए विषयों के मानसिक रूपों का ग़ुलाम हो सदा तनावग्रस्त रहता है। इसके विपरीत

आत्मा और ब्रह्म के साक्षात्कार के लिए जिस अन्तर्मुखता की बात हमारे धर्म ग्रन्थों में कही गई है, उसमें चित्त स्थित मानसिक रूपों का निषेध आवश्यक होता है। यह अन्तर्मुखता सही अर्थों में तभी प्राप्त होती है, जब इन्द्रियों और मन ने जो एक दुनियाँ हमारे अन्दर रची है, उसे आंतरिक तेज की अग्नि में जलाकर राख कर दिया जाये। इसी हेतु सजनों मूलमंत्र आद् अक्षर के अजपा जाप की महत्ता है।

इस प्रकार सजनों स्पष्ट होता है कि, बाहर जो सांसारिक विषयों की दुनियाँ है और हमारे भीतर - जो मानसिक रूप में विषयों की दुनियाँ है, दोनों से मन और इन्द्रियों को विमुख करके आत्मा-परमात्मा की ओर उन्हें उन्मुख करना ही वास्तविक अन्तर्मुखता है। इस विषय में सजनों इन्द्रियों को अन्तर्मुख यानि आत्माभिमुख बनाने के लिए ही इन्द्रिय-निग्रह की आवश्यकता होती है। इसलिए परमपद जैसी उच्च पदवी को प्राप्त करने के लिए हमें जाग्रति में आना होगा और सजन श्री शहनशाह हनुमान जी की युक्ति अनुसार आचार-व्यवहार अपनाकर अर्थात् उनके रंग में रंग कर एक तेजस्वी इंसान की तरह अपने ही प्रताप द्वारा अन्दर की लंका पर विजय प्राप्त कर पुनः सत्य की स्थापना करनी होगी। यही तो हृदय में सतवस्तु का राज स्थापित करने की बात है।

इन्द्रिय-निग्रह करने के संदर्भ में सजनों बेहतर यही है कि बलपूर्वक इन्द्रियों का दमन करने के स्थान पर उनका सतत् और आहिस्ते-आहिस्ते निरोध किया जाए। कारण यह है कि यदि आदमी को मकान की छत पर जाना है, तो सही तरीका

यह है कि वह नीचे से पहली सीढ़ी से चढ़ना शुरु करे, फिर दूसरी, फिर तीसरी सीढ़ी क्रमवार चढ़ने का फल यह होगा कि वह सुरक्षित पहुँच जायेगा। अतः इन्द्रिय-निग्रह के लिए सजनों जिस प्रकार आपको पिछली कक्षा में भी बताया गया था, सतत् अभ्यास और वैराग्य यानि विषयों से अनासक्ति, अनिवार्य है। इस विषय में सजनों जैसे कहा भी गया है कि जिस प्रकार कछुआ अपने अंगों को भीतर समेट लेता है, उसी प्रकार अध्यात्म पथ के राही को भी निरन्तर अभ्यास पूर्वक अपनी इन्द्रियों को, जिनकी आदत है बाहरी विषयों में रमना, अपनी जगह पर स्थित रखने में सक्षम होना चाहिए। याद रखो सजनों बिना इन्द्रिय-निग्रह के प्रज्ञा यानि बुद्धि स्थिर नहीं होती। इन्द्रियों पर पूरा अधिकार हो जाने पर ही प्रज्ञा स्थिर होती है और इंसान के अन्दर सब कार्य भली-भांति समझ-बूझ कर करने की शक्ति अथवा क्षमता पैदा होती है जिससे वह विद्वान कहलाता है।

उपरोक्त विवेचना के आधार पर सजनों स्पष्ट होता है कि बाहरी विषयों से इन्द्रियों को अलग कर लेना मात्र ही इन्द्रिय-निग्रह नहीं है क्योंकि ऐसा हो सकता है कि व्यक्ति अपनी आँखों से चाहे बाहर का रूप न देखे, लेकिन अपने भीतर उन्हीं का चिन्तन करता रहे। अतः निग्रह बाहर और भीतर दोनों का होना चाहिए। इसीलिए तो सजनों जो व्यक्ति इन्द्रियों के बाह्य व्यापार को बलपूर्वक रोके रखता है, पर अपने मन के भीतर उन्हीं का चिन्तन करता है, वह मिथ्याचारी और पाखण्डी कहलाता है। याद रखो सजनों इन्द्रिय-निग्रह तभी पूर्ण निग्रह कहलाता है जब बाहर-भीतर, मन और इन्द्रियों का एक साथ हो। इस विषय में स्पष्टता

देते हुए सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है:-

पंज ज्ञान इन्द्रियाँ, पंज कर्म इन्द्रियाँ जित के ते,
मन जितिया जग जितिया जान सजनों,
जित लिया उस कुल जहान सारा,
उन्हां दा दुनियां ते हो गया नाम सजनों।।

सजनों यह है पूर्ण निग्रह की स्थिति।

इस संदर्भ में विडम्बना यह है कि इन्द्रियों से अधिक ताकतवर मन है। एक को रोकने पर वह प्रायः दूसरी इन्द्रिय को अपने साथ भगा ले जाता है। इसलिए इन्द्रियों के साथ ही उसका निग्रह भी आवश्यक है जिसके लिए आवश्यकता है सतत् साधना की। इस विषय में सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में भी, इधर-उधर भटकते मन को साधना द्वारा सदा परमात्मा में लीन रखने के लिए इस प्रकार कहा गया है:-

साधना करो ते लावो ध्यान, रस्ता पकड़ो निष्काम।

जान लो कि यहाँ साधना से तात्पर्य किसी कर्मकांडयुक्त साधारण साधना से नहीं है, क्योंकि सच्चेपातशाह जी कहते हैं:-

कर्मकांड करो कई कई साधना, न पाए मन विश्राम।
पकड़ो रस्ता निष्काम, पकड़ो रस्ता निष्काम।।
किसे तरह करिए साधना, किसे तरह तरह दा ध्यान।
रस्ता पकड़ो निष्काम, रस्ता पकड़ो निष्काम।।

यह तो सत्य धर्म के भक्ति भाव पर सुदृढ़ बने रह, मानव जीवन के महान प्रयोजन को सिद्ध करने की बात है। यह

क्रिया युक्तिसंगत किया जाने वाला वह अभ्यास है जिसके सतत् अनुशीलन द्वारा हमारा मन विकार वृत्तियों के पंजे से छूट पुनः विचारशील हो एकाग्र हो सकता है और हम एकचित्त यानि ध्यान स्थिर हो अपने जीवन लक्ष्य को न केवल भेद सकते हैं अपितु मन-वचन-कर्म से तद्नुकूल व्यवहार दर्शा कर उसकी सत्यता को प्रमाणित भी कर सकते हैं। इस प्रकार एकमात्र इसी क्रिया को भली-भांति संपादित करने से ही हमारा इधर-उधर बिखरा हुआ ख़्याल और अस्थिर ध्यान क्रमशः एकीकृत व स्थिर हो सकता है। फलतः हृदय सचखंड बनाने हेतु ख्याल ध्यान वल और ध्यान प्रकाश वल निरंतर जुड़ा रह सकता है और हम यथार्थता का अर्थात् ज़र्रे-ज़र्रे, में अपने असलियत ब्रह्म स्वरूप का, यानि सर्वव्यापक भगवान का बोध रखने वाले ब्रह्मज्ञानी बन सकते हैं। यह सही अर्थों में ब्रह्म सत्ता को पूर्ण सजगता से ग्रहण कर, उस ब्रह्म शक्ति द्वारा अपने जीवन की बाज़ी सहजता से जीतने की बात है। इस प्रकार संयम और धैर्य रखते हुए हम अनेकता से एकता की ओर यानि विषमता से समानता की ओर बढ़ते हुए, एक परिपूर्ण इंसान की तरह अपने मूल गुणों को इस जगत में प्रकाशित कर सकते हैं।

सजनों सच्चेपातशाह जी ने उपरोक्त पंक्तियों में साधना के संदर्भ में निष्कामता को भी विशेष महत्त्व दिया है, वह इसलिए क्योंकि एक निष्काम साधक ही हर प्रकार की कामना, आसक्ति व इच्छा के प्रति निश्चेष्ट रहते हुए, अपने मन व इन्द्रियों को, संतुलन व संयम के अनुशासन में साध सकता है। इस अनुशासन में सधने के पश्चात् वह परमार्थी धन से इतना भरपूर हो जाता है कि फिर उसे भौतिक वस्तुएँ पाने की लालसा नहीं सताती। वह सागर तुल्य हो जाता है-

स्वयं में सदैव पूर्ण। मिथ्या सब कुछ त्याग कर भी वह सदा भरपूर रहता है। इच्छाएँ उसके समीप आती हैं किन्तु वह उन इच्छाओं की पूर्ति में नहीं जुटता अपितु अपनी इच्छानुसार विषयों आदि से रहित होकर अंतर्मुखी होने की क्षमता धार उनसे निश्चल बना रहता है। इस प्रकार ममता, अहंकार जैसी तुच्छ भावनाओं से मुक्त होकर स्थितप्रज्ञ बन जाता है और हर कर्म न्यायसंगत अकर्त्ता भाव से करते हुए, फल प्राप्ति के प्रति तटस्थ व अनासक्त बना रह पाता है। यह ही तो है सजनों जीवन मुक्ति जिसके बारे में इस कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है:-

निष्काम नूं धारण करके जेहड़ा निष्काम हो जावे।
बिन औखियाइयों, बिन खेचलों,
बिन तकलीफों पार हो जावे।।

इस उपलब्धि के निमित्त सजनों युवावस्था की भक्ति अर्थात् समभाव समदृष्टि की युक्ति अनुसार, संतोष-धैर्य अपना कर, सच्चाई-धर्म की निष्काम भाव से साधना करो व विशाल हृदय होकर परोपकार कमाओ। इस हेतु जीवन में सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य आदि का पालन करते हुए, संयमित भोजन लेने, सोने-जागने, परस्पर बातचीत आदि के दौरान आत्मसंयम अपनाओ व सजनता के भाव पर सुदृढ़ता से बने रहो। याद रखो यदि हमने ए विध आचार-व्यवहार विवेकपूर्वक करना सुनिश्चित कर लिया तो हम कभी भी कोई गलती कर कलियुगी स्वभाव नहीं अपनाएंगे और इस प्रकार हम अवचेतन मन की गलत प्रवृत्तियों को नियंत्रण में रख सदाचारी इंसान बन सकेंगे।

निग्रह के विषय में सजनों इससे आगे बातचीत हम आगामी कक्षा में करेंगे।

दिनाँक 25 जून 2017 का सबक़

आत्मनिग्रह-3

साडा है सजन राम, राम है कुल जहान

अर्थात्

ईश्वर हमारा मित्र/प्रियतम सर्वव्यापक है, उसी को जानो, मानो व वैसे ही गुण अपनाओ।

शब्द है गुरु, शरीर नहीं है,

अर्थात्

ज्ञानी को नहीं ज्ञान को अपनाओ और निमित्त में नहीं नित्य में श्रद्धा बढ़ाओ।

इस पर सुदृढ़ता से डटे रह, इस अटल सत्य पर स्थिर बने रहोः-

ओ३म् अमर है आत्मा, आत्मा में है परमात्मा

सजनों गत दो सप्ताहों में हमने जाना कि परमपद प्राप्ति हेतु इन्सानियत में ढलना अनिवार्य है व इन्सानियत में ढलने हेतु आत्मनिग्रह करना अति आवश्यक है। आत्मनिग्रह द्वारा ही आत्मिक स्वभावों का ग्रहण हो सकता है। आओ अब आगे जानते हैं।

सजनों जैसा कि सबको ज्ञात ही है कि शरीर के वे अंग जिनकी शक्ति हमें जगत के विषयों का बोध कराती है ज्ञान इन्द्रियाँ कही जाती हैं। सजनों विगत जन्मों व पालना के दौरान प्रदत्त संस्कारों के प्रभाववश, मनुष्य प्रायः मन के वशीभूत हो, इन्द्रियों के माध्यम से अपनी जीवनशक्ति,

धार्मिक कृत्य करने के स्थान पर विषयभोग और कायिक लिप्साओं में गँवाता है क्योंकि विषय-वासना शब्द, गन्ध, स्पर्श, रस आदि नाना रूपों में मनुष्य को वश में किये रखती है। तभी तो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया हैः-

मन मस्त हाथी चारों पासे फिराया
वाशना इसनूं घियो पिलाया,
सीधा रस्ता बताया इक तूं ।

इस अवस्था में इंसान को अपने यथार्थ नित्य स्वरूप की विस्मृति हो जाती है। ऐसा होने पर उसके मन को जब संतोष प्राप्त नहीं रहता तो वह मानव मन और इन्द्रियों की तुष्टि के लिए भ्रष्टाचारिता व व्यभिचारिता का स्वभाव अपना प्रायः उत्पात मचाता है और अनर्थ करते हुए फुलझड़ी की तरह अपना बहुमूल्य जीवन रस जलाता रहता है। फलतः मन की अशांति के प्रभाव से आजीवन रोने-झुखने के स्वभाव में फँस, दुःख पाता है और दुःख ही बाँटता है। तभी तो सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ कह रहा हैः-

चौपाईयाँः-

ए दुनियाँ अजब तमाशा है।
सजनों वेख के आंदा हासा है।।
हुन रघुवर जी दी तूं शरणी आ।
ओ इको सब दा दाता है।।
मूर्ख रोंदा ही नज़र आंदा है।
अभिमानी हस्से ते मखौल उड़ांदा है।।
इस ज़िन्दगी दा नहीं भरवासा है।

ए दुनियाँ अजब तमाशा है।।
हुन पल विच शत्रु नज़र आंदा है।
होश आई ते सजन बन बैहंदा है।।
नाले ओ शोर मचांदा है।
ज़िन्दगी घुले जिवें पताशा है।।
ज़िन्दगी घुले जिवें पताशा है।
ए दुनियाँ अजब तमाशा है।।
मोह माया बिना ग़मग़ीन होया।
ग़मग़ीन होया परेशान होया।।
भुलिया धन दियां मौजां माणदा है।
गर्ज मार ग़रीब डरांवदा है।
अधा अन्ना ते अधा सुजाखा ए।
ए दुनियाँ अजब तमाशा है।।
उलटे रस्ते ते चढ़यों तूं।
औझड़ां दे विच वड़ियों तूं।।
बलधारी जी दी तूं शरणी आ।
ओ रस्ता देवन तेरा उलटा।
रघुवर जी दे प्यारे दी आशा है।
ए तमाशा नहीं हुन हासा है।
हुन सब दी औषधि बलधारी जी हैं।
जैं परखी सब दी नाड़ी है।।
जेहड़ा पीवे होंदी दूर बीमारी है।
हृदय विच चरणां दा वासा है।।
हृदय विच चरणां दा वासा है।
ए दुनियाँ अजब तमाशा है।।

सजनों आत्मपद की ओर बढ़ने वाले साधक के मार्ग में

फुरना बाधा उत्पन्न करता है, अतः उसकी निवृत्ति के लिए सर्वप्रथम अपने मन को उपशम कर इन्द्रियों का निरोध करना आवश्यक होता है। इस कार्य को सिद्ध करने वाला अंतर्मुखी व जितेन्द्रिय मानव ही आत्मशक्ति संचय कर आत्मोत्कर्ष में रत रह पाता है और अंत में आत्मा में ही व्याप्त विराट् परमात्म चेतना से सम्बन्ध स्थापित कर, अपने जीवन का परम लक्ष्य सिद्ध कर लेता है।

इसी संदर्भ में आओ सजनों आज आत्मनिग्रह के ही एक महत्त्वपूर्ण पहलू 'आत्मनियन्त्रण' के विषय में जानते हैं:-

'आत्मनियन्त्रण'- यह शब्द दो शब्दों के योग से निर्मित है- आत्म और नियन्त्रण। 'आत्म' का अर्थ है, निज का, स्वयं का, जीव, मन, बुद्धि, आदि। इसी प्रकार 'नियन्त्रण' का मूल अर्थ है - नियमों में बाँधकर रखना, वश में रखना, स्वच्छन्द न रहने देना, प्रतिबन्धन आदि। इस प्रकार 'आत्मनियन्त्रण' शब्द का मूल अर्थ हुआ अपने आप को नियन्त्रित करना। अन्य शब्दों में शरीर, मन, इंद्रियों व बुद्धि का नियमन व नियन्त्रण आत्मनियंत्रण कहलाता है।

सजनों आत्मनियन्त्रण का प्रारम्भ होता है आत्मा के अध्ययन से यानि आत्मिकज्ञान प्राप्ति द्वारा अपने को जानने का प्रयत्न करने से। यह प्रत्येक माता-पिता की सर्वोच्च जिम्मेवारी होती है कि वे विषयों का गुलाम बनने के स्थान पर, खुद आत्मिक ज्ञान प्राप्त कर, अपने बच्चों को भी इस ज्ञान के प्रयोगात्मक पहलू से परिचित करा, उनके संस्कार व भाव-स्वभाव तद्नुरूप ही ढालें।

इस संदर्भ में सजनो जानो कि इन्द्रियाँ शरीर से परे अर्थात् सूक्ष्म और बलवान हैं। इन्द्रियों से परे है मन जिसकी कैद में आपने अपने आप को कैद कर रखा है। चूंकि आपको आत्मस्वरूप की विस्मृति हो गई है और इसी अचेतनता के कारण आपको अपनी परमात्म शक्ति व समर्थता का बोध नहीं और आपने अपने मन को बलवान व खुद को कमज़ोर समझा हुआ है। सजनों इस मन से परे बुद्धि है और जो बुद्धि से परे है, वह सर्वशक्तिशाली आत्मा है। यही हमारा वास्तविक स्वरूप है। अपने इस सर्वशक्तिमान स्वरूप का बोध रखने वाला व वहीं से सब कुछ ग्रहण करने वाला अपनी इन्द्रियों, मन और बुद्धि का निरोध कर उन्हें पवित्र व निर्मल अवस्था में साधे रखने में सक्षम होता है। यही सजनों सच्चा आत्मनियन्त्रण है। समय-समय पर इस क्रिया को उचित ढंग से करने के स्वभाव में ढलने पर ही इंसान अपने आत्मिक बल का सही अर्थों में प्रयोग करते हुए अपने वाक् बल, काय् बल का भरपूर लाभ उठाते हुए अपने जीवन का महत्त्वपूर्ण प्रयोजन सिद्ध कर सकता है।

आओ अब जानते हैं कि इस आत्मनियन्त्रण में मुख्य बाधा क्या है:-

सजनों इस आत्मनियन्त्रण में सबसे बड़ी बाधा है काम जिसका परिवार है कामना। जानो कि अग्नि के समान भोगों से न तृप्त होने वाले इस काम ने आत्मज्ञान को अपनी माया से आवृत्त कर रखा है। इसी काम में ही क्रोध, लोभ, मोह व अहंकार का अंतर्भाव है। कामना पूर्ति में बाधा पड़ने पर क्रोध व पूरी होने पर लोभ, मोह, अहंकार उत्पन्न हो जाता है।

अतैव हम निष्काम भाव से धर्म कृत्य करने में कमज़ोर न पड़ें उसके लिए हमें इस प्रकार सावधान रहने की आवश्यकता है :-

1. आत्मनियंत्रण के लिए सर्वप्रथम काम, क्रोध व अन्य विकारों के अज्ञान आवरण में ढँके हुए आत्मज्ञान को अनावृत करना है।

2. तत्पश्चात् काम-क्रोध के पूरक राग-द्वेष को शत्रु मानकर उस पर विजय प्राप्त करनी है। इस हेतु दैनिक आवश्यकताओं और इच्छाओं के मध्य अंतर को ध्यान से समझते हुए अपनी आवश्यकताओं तक सीमित रहना है व संतोषमय बने रहते हुए अपनी हैसियत में विचरना सीखना है। इस तरह धीरता से इन्द्रियों का नियमन व संयमन करके, उनको नियन्त्रित रूप से कार्य करना सिखाना है।

3. फिर इस शरीर व बुद्धि से परे जो अति सूक्ष्म व बलवान आत्मा है, उसके गुणों/स्वभाव को, जानना-परखना है और उसके ज्ञानस्वरूप चेतनता से परिपूर्ण, निर्मल प्रवाह से इन्द्रियों, मन, बुद्धि आदि के मल का शोधन कर उनका निरोध करना है।

4. याद रखो जो इस प्रकार आत्मा का स्वरूप जानकर उसमें लीन हो जाता है यानि आत्मसाक्षात्कार के निरंतर अभ्यास से आत्मस्वरूप हो जाता है उसे फिर आत्मनियंत्रण करने की आवश्यकता नहीं रहती।

5. अतः मान लो कि आत्मानुभव ही, संसार का मूल है और संशय, द्वंद्व, भ्रम को नाश करने वाला है। इस

आत्मानुभव का प्रकाश, आत्मनियन्त्रण के बिना नहीं फूट सकता।

मत भूलो सजनों कि मन ही बन्धन और मोक्ष का हेतु है। मन की मुक्ति ही आत्मनियन्त्रण का कारण बनती है। इसलिए, अपने मन को आप देखो, जानो, पढ़ो और उसे वश में रखो। अपना लक्ष्य आप निर्धारित करो और फिर किसी विषमता-बाधा की परवाह न कर उस पर अमल करो। इस कार्य सिद्धि में स्वाध्याय, सत्संग और चिन्तन ये ही आपके सहायक साधन सिद्ध हो सकते हैं। इनके द्वारा ही विचारशक्ति बढ़ती है और विवेक उत्पन्न होता है। इस विवेक के बल पर ही इंसान सत्य-असत्य, भले-बुरे की परख कर, अपने आप को सांसारिक विषमताओं से विलग कर देखता है और ईश्वर के रंग में अपने मन को रंगने की चेष्टा करता है और सहसा ही कह उठता है:-

रंगन वालिया रंगीला सोहणा रंग रंग दे,
ऐसा रंग रंगीला रंगीं लोकी दंग करदे।

यह प्रयत्न होता है अपने मन को उपशम यानि संसारी विषयों व झगड़े-बखेड़ों व कामों आदि से विरक्त कर, उस ईश्वर के हुक्म अनुकूल स्वयं को ढालने का व उसी में ही अपने चित्त को रमाने का। यह प्रक्रिया आत्मनियन्त्रण में अति सहायक सिद्ध होती है। इसकी परिपक्वावस्था में पहुँच जाने पर नियत कर्म व आराधना की आवश्यकता नहीं रह जाती। व्यक्ति न इन्द्रियों के भोगों में आसक्त होता है, न कर्मासक्त होता है। ऐसे में सभी संकल्पों का अभाव हो जाता है। यही प्राप्ति ही आत्मनियन्त्रण की कसौटी है। यही

आत्मनियन्त्रण आत्मोद्धार का कारण बनता है। इसी के दृष्टिगत सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है:-

मन मजूर किस ने बनाया,
किसने इस नूं रथ ते बिठाया।
किस ने इस नूं राज दिवाया,
किस ने इस नूं राज दिवाया।
जैं मन बनाया ओ नादान मालका,
तेरी जोति हिम कुल जहान मालका।
रथ उत्ते तेरी जोत नज़र आई,
जैंदी त्रिलोकी दे विच रौशनाई।
मन मिटया ते होया है आनंद मालका,
तेरी जोति हिम कुल जहान मालका।।

सजनों मन की ही तरह, किसी भी इन्द्रिय का निग्रह आत्मनियंत्रण के अभाव में संभव नहीं। आत्मनियन्त्रण के लिये सर्वप्रथम आवश्यक है आत्मनिरीक्षण अर्थात् अपनी इन्द्रियों की गतिविधि को परखना व उनके स्वभावों को देखना, पढ़ना। उनकी विपरीत गति (जैसे कान ग्रहित बातें न सुनें, आँखें बुरी चीज़ न देखें) को अनुकूल बनाना व सदा सावधान रखना कि वे कुरस्ते पर न चलें यानि अनीति का मार्ग न अपनाएँ। इस प्रकार उनकी बहिर्मुखी प्रवृत्ति को अन्तर्मुखी बनाना। याद रखो जब तक इन्द्रियों का व्यापार व्यक्तिगत स्वार्थ में निहित होता है तब तक वे हानिकारक सिद्ध होती हैं। जब यही इन्द्रियाँ लोक-मंगल-सर्वजनहितकारी भगवत्-रूपों से जुड़ जाती हैं, तो उनका दोष मिट जाता है। ऐसे निर्दोष इंसान के लिए सत्य धर्म के

निष्काम रास्ते पर बने रह परोपकार कमाते हुए परमपद पाना सहज हो जाता है।

याद रखो सजनों जब तक कर्त्ता भाव है, तब तक ही अहंकार है, उसकी अभिव्यक्ति है, कर्म-अकर्म दोनों हैं। यदि यत्न करके कर्त्ता भाव को ही शनैः शनैः मिटा दिया जाए और प्रभु समर्पित सब कार्य निष्काम भाव से किए जाएं तो बिना किसी यत्न के ही आत्मनियन्त्रण हो जाता है। इसीलिए तो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया हैः-

मैं नहीं, मैं नहीं, मैं नहीं, मैं नहीं,
इक तूं, इक तूं, इक तूं, इक तूं।
तूं ही तूं, तूं ही तूं, तूं ही तूं, तूं ही तूं।।

उपरोक्त तथ्यों के दृष्टिगत सजनों ज्ञात होता है कि काम जनित चंचलता ही वर्तमान युग में मानव को अनियंत्रित कर पथ-भ्रष्ट कर देती है पर एक बुद्धिमान सदाचारी व्यक्ति इंद्रिय, मन और बुद्धि को वश में रखकर इनका निरोध कर लेता है जिससे उसके वास्तविक व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास होता है। अन्य शब्दों में विश्व के नाना आकर्षणों के बीच जो व्यक्ति अपनी आंतरिक शक्ति के द्वारा अपनी इन्द्रियों के पीछे न भागकर, लोभ-लालच में नहीं फँसता और संयमी बना रहता है, वास्तव में वही सच्चा आत्मनिग्रही कहलाता है और पुरुष से महापुरुष बनने का साहस दर्शा पाता है। इस तरह सजनों हृदय में स्थित सम्पूर्ण कामनाओं का समूलतः नाश करने वाला वह अमरधर्मा मनुष्य अमर हो जाता है यानि इसी मनुष्य योनि में परब्रह्म का भली भान्ति साक्षात् अनुभव कर लेता है। इसके विपरीत जो कामनाओं का नाश

करने के स्थान पर खुद कामनाओं के वशीभूत हो जाता है यानि उनको नियन्त्रित करने के स्थान पर खुद कामनाओं के अधीन हो जाता है, कामनाएँ उसका सर्वनाश कर डालती है। किसी के साथ भी ऐसा होना जीवन की बाजी हारने की बात होती है।

सजनों इस सारी बात को दृष्टिगत रखते हुए हमारे लिए बनता है कि कामनाओं पर विजय पा, निष्काम हो जाएँ और अमर पद प्राप्त करने हेतु अपने हृदय में तीव्र उत्कंठा पैदा करें व ऐसा ही शुभ परिणाम प्राप्त करने हेतु अनथक परिश्रम दिखाने से न घबराएं।

सजनों आप सब भी अपने जीवन के इस मकसद को पाने में कामयाब हों इस हेतु कैसे आपने अपने आपको आत्मानुशासित करना है, इस विषय में आगामी सप्ताह बताया जाएगा।

दिनाँक 02 जुलाई 2017 का सबक़

आत्मनिग्रह-4 (आत्मानुशासन)

साडा है सजन राम, राम है कुल जहान

अर्थात्

ईश्वर हमारा मित्र/प्रियतम सर्वव्यापक है, उसी को जानो, मानो व वैसे ही गुण अपनाओ।

शब्द है गुरु, शरीर नहीं है,

अर्थात्

ज्ञानी को नहीं ज्ञान को अपनाओ और निमित्त में नहीं नित्य में श्रद्धा बढ़ाओ।

इस पर सुदृढ़ता से डटे रह,
इस अटल सत्य पर स्थिर बने रहोः-

ओ३म् अमर है आत्मा, आत्मा में है परमात्मा

सजनों अभी तक हमने जाना कि चाहे जीवन का जो भी क्षेत्र हो भौतिक, शारीरिक, मानसिक या आध्यात्मिक, कैसा भी उद्देश्य हो छोटा या बड़ा-आत्मनियन्त्रण से ही सिद्ध हो सकता है। संकल्प की सुदृढ़ता केन्द्रापसारी (केन्द्र के आस-पास फैली हुई) शक्तियों को केन्द्राभिगामी बनाने (केन्द्र की तरफ अग्रसर करने) से ही आती है। यह अपने मन की दसों दिशाओं में भटकन को रोके बिना यानि एकाग्र किए बिना सम्भव नहीं है। आत्मनियन्त्रण के बल पर व्यक्ति महान उद्देश्य सिद्ध कर सकता है।

इस संदर्भ में सजनों हम सब जानते हैं कि वर्तमान समय में

मनुष्य की गति अधोगामिनी (नीचे की ओर प्रवृत्त) है यानि वह मानवता के स्तर से नीचे गिर गया है। इसी कारण काम, क्रोध, लोभ, मोह, माया, राग-द्वेष सभी उसको भटका रहे हैं, पतित कर रहे हैं और ऊपर उठने ही नहीं दे रहे। इसलिए मानव उत्तरोतर नीचे नर्क की ओर गिरता जा रहा है और काम भोगो में फँस कर उसके भाव-स्वभाव पशुओं से भी बद्तर होते जा रहे हैं। इस विषय में सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है:-

मानसी रोग जीवाँ नूं कठिन लगा है,
भजन बन्दगी पकड़ो विशाल।
इस रोग दी कोई दवा न सुज्झे,
चाहे यत्न करो हज़ार।

स्पष्ट है सजनों आज चाहे राजा हो या प्रजा, धर्मनीति वाले हों या राजनीति वाले सब आत्मिक ज्ञान के अभाव के कारण अपने आप को व समाज को इस दुःखद परिस्थिति से उबारने में असमर्थ पा रहे हैं। इंसान की इसी हालत का वर्णन करते हुए सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में फिर से कहा गया है:-

राजे महाराजे कम्ब के ते,
कम्बे ऋषि मुनि कुल जहान सजनों।
कोई विरला ओ न कम्बिया जे,
जेहड़े निष्काम रस्ते ते चढ़ जान सजनों।।

इस दुःखद परिस्थिति से उबारने हेतु ही सजनों सब मानवों से यह कहा गया कि:-

हैवानी छड देवो तुसां इन्सानों,
मनुराज विच आके इन्सान हो के न फिरो गंवार।
दोस्ती संकल्प विकल्प नाल लाके हो गए तुसां खुवार।।

सजनों मन को संकल्प-विकल्प के दुष्चक्रव्यूह से बचाने यानि उसकी भटकन और पतन को रोकने के लिए आत्मनियन्त्रण/आत्मसंयम ही एकमात्र साधन है। यही उसे अधोगति से बचा सकता है और परमपद रूपी विराट् लक्ष्य को साधने हेतु, समभाव-समदृष्टि की युक्ति का अनुशीलन करते हुए परस्पर धीरता से सजन भाव का चलन अपनाने का बल, प्रदान कर सकता है। इस प्रकार इसी के द्वारा मनुष्य निजी स्वार्थ को त्याग व अखण्ड आत्मभाव अपना कर यानि अपने ख़्याल व ध्यान को एक करके अपने जीवन के महान प्रयोजन को सिद्ध कर सकता है। इसीलिए तो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया हैः-

मशीनरी अपनी ठीक करो,
पुर्ज़ा कोई न पाना गलत।
कारियां दा ओ कारीगर बड़ा,
किसे दे पुर्ज़े विच न राहवे फ़र्क।।

इस संदर्भ में सजनों हम सब जानते हैं कि आज के मनुष्य की प्रकृति स्वच्छन्दतावादी है। वह नियमों में नहीं बँधना चाहता किन्तु जहाँ सारी प्रकृति नियमबद्ध हो वहाँ मनुष्य को मनमानी करने की छूट नहीं दी जा सकती। इसीलिए सजनों आदि काल से ही कुदरती तरीके से जीवनयापन करने के लिए कुछ नीति-नियम बनाए जाते हैं व मानव को बाल्य अवस्था से ही उनकी पालना द्वारा, मर्यादित व अनुशासित आचरण करने के

लिए प्रेरित किया जाता है। सजनों इस प्रकार आत्मनियंत्रण रखते हुए, कुदरती विधि विधान अनुसार, अनुशासित ढंग से अपने मन-वचन-कर्म को ढालने के तौर-तरीकों से मन-चित्त की एकाग्रता सधती है यानि ख़्याल और ध्यान एक हो जाते हैं। यह अवस्था इंसान की परिपूर्ण सचेतनता का प्रतीक होती है जिसके अंतर्गत उसकी बुद्धि, वृत्ति, स्मृति व भाव स्वभाव रूपी बाणा सदा निर्मल बना रहता है, व्यवहार में गंभीरता व स्थिरता आती है और आत्मोत्कर्ष द्वारा परमपद पाना सहज हो जाता है। परमपद प्राप्ति में आत्मानुशासन के महत्त्व को देखते हुए सजनों आओ आज आत्मानुशासन को समझते हैं:-

आत्मानुशासन शब्द दो शब्दों के योग से बना है:- आत्म + अनुशासन। यहाँ आत्म से अभिप्राय अपना या निजी से है व अनुशासन से तात्पर्य आदेश, नियन्त्रण, कर्त्तव्य के विधान, नियमाचरण आदि से है। इस प्रकार आत्म अनुशासन का मूल अर्थ अपने यथार्थ स्वरूप अर्थात् आत्मा में परमात्मा के आदेश के पालन द्वारा, अपने ऊपर शासन करने, अपने को वश में रखने यानि स्वनियन्त्रण, आत्मसंयम व इन्द्रिय संयम से है। सजनों जब व्यक्ति अपने ऊपर अपना स्वयं का आदेश लागू कर देता है व स्वयं स्वीकृत कुदरती नियमों का स्वेच्छा से पालन करता है यानि उस नियम पालन में उसके ऊपर कोई बाहरी दबाव, प्रलोभन या दंड का भय नहीं होता तो ऐसी स्वयं स्वीकृत व्यवस्था को आत्मानुशासन कहा जाता है। आत्मानुशासन ही किसी व्यक्ति या किसी संस्था के सदस्यों को विधि विधान अनुसार ठीक तरह से कार्य करने या आचरण करने के लिए बाध्य

करता है। यह पराक्रम ही व्यक्ति के विक्षिप्त/उद्विग्न हृदय को तनाव रहित व निर्मल करके, भीतरी विकारों को नष्ट करता है और ए विध् उसे संयमी, जितेन्द्रिय व तपस्वी बनाता है। इस अर्थ के दृष्टिगत सजनों आत्मानुशासन अपने ऊपर, अपनी आत्मा, बुद्धि और मन पर अपने द्वारा बिना किसी बाहरी दबाव के लगाया गया अनुशासन है। याद रखो आत्मानुशासन के पथ पर चलकर ही व्यक्ति अपना उद्धार कर सकता है यानि सहजता से परमपद प्राप्ति कर अपने असली घर परमधाम पहुँच विश्राम को पा सकता है।

सजनों जब व्यक्ति अपनी वासनाओं, इच्छाओं व चित्तवृत्तियों पर स्वयं अंकुश लगा देता है यानि अपनी इच्छा से बुरी वृत्तियों का त्याग कर देता है और उन पर आत्मसंयम का ताला लगा देता है तो वह आत्मानुशासित कहलाता है। उदाहरणस्वरूप जब किसी रूपवान स्त्री या वस्तु को देखकर भी इंसान के अन्दर उसको प्राप्त करने की अभिलाषा नहीं जाग्रत होती या फिर कामना पूर्त्ति न होने पर क्रोध जैसा मनोविकार अन्दर नहीं उपजता तो व्यक्ति के मन की यह स्थिति आत्मानुशासित कहलाती है। याद रखो संयम व आत्मानुशासन में अंतर बस इतना है कि आत्मानुशासन कारण है और संयम कार्य। आत्मानुशासन वह विधि है जो व्यक्ति को संयम तक पहुँचाती है। आत्मानुशासन वह पथ है जिसका गंतव्य संयम है। आत्मानुशासन काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार आदि मनोविकारों के उद्वेग से मन को बचाता है यानि यह मनुष्य के मन को विचलित नहीं होने देता। अन्य शब्दों में आत्मानुशासन से व्यक्ति के मन के विचार इतने उच्च और गूढ़ हो जाते हैं कि किसी प्रकार के दुर्विकार उसमें जागते ही नहीं,

उसकी बुद्धि उसके मन की गति को आत्मानुशासन के पथ पर चलाती है। यह व्यक्ति के भीतर आत्मिक शक्तियों का विकास करता है जिससे वह मन की स्वाभाविक व पतनगामी गति को रोक उसको बुराई के पथ पर बढ़ने से रोक सकता है।

आत्मानुशासन मानसिक स्तर पर पहले अपनाया जाता है। शरीर तो उसके बाद स्वतः ही बुद्धि के आदेशों पर चल पड़ता है। आत्मानुशासन को अपनाने के लिए व्यक्ति का अंतःकरण अत्यन्त सबल होना चाहिए। वासनाओं के गुलाम, दुर्बल मन और क्षीण आत्मिक बल वाले व्यक्ति तथा प्रलोभन या भय से अपने द्वारा निर्धारित आत्मोत्थान के पथ से भटकने वाले लोग आत्मानुशासन के मार्ग पर नहीं चल सकते।

आत्मानुशासन सजनों दो तरह के व्यक्ति अपनाते हैं। एक तो वे जो चरित्रवान, समाज-सेवी, त्यागी व भक्त होते हैं दूसरा वे जो लोभी, स्वार्थी, चरित्रहीन व दानवीय प्रकृति के होते हैं। उदाहरणस्वरूप जहाँ एक मुमुक्षु अपनी चित्तवृत्तियों पर विजय प्राप्त करने हेतु क्रोध से बचता है व विपरीत परिस्थितियाँ आने पर भी संतोषी व धीर बना रह, खेद, रोष या कोप प्रगट नहीं करता वहीं एक लोभी व्यापारी स्वार्थपूर्त्ति हेतु अपने ग्राहक की तमाम उद्दण्डताओं को सहन करते हुए अपने क्रोध का शमन करता है। रावण ने भी सजनों दीर्घ काल तक आत्मानुशासन का परिचय देते हुए घोर तप किया परन्तु उसका तप ब्रह्मा से अजर-अमर, त्रिलोकजयी होने का वरदान माँगने के लिए था। उसका आत्मानुशासन

उसकी वासनाओं के निर्बाध भोग तथा परपीड़न के लिए था। अतः इसे निषेधपरक माना जाता है।

इससे सजनों स्पष्ट होता है कि लोकहित, आत्मोद्धार और मोक्ष की प्राप्ति या मन को निर्विकार बनाने हेतु अपनाया गया अनुशासन ही उत्तम प्रकार का आत्मानुशासन कहलाता है। ऐसे आत्मानुशासन में जनहित/परहित व त्याग का भाव प्रमुखतः सम्मिलित होता है तथा ऐसा अनुशासन ही शासन व व्यवस्था के अनुसार कार्य करने के लिए प्रेरित करता है। इसमें आदर्शों या परहित के लिए इच्छाओं, आकांक्षाओं, आवेगों और अभिरुचियों का दमन करना पड़ता है तथा कार्य को पूर्ण करने के लिए निरन्तर सक्रिय रहकर स्वनिर्देशित, स्वनियन्त्रित प्रयास करने पड़ते हैं। इन प्रयासों में सफलता प्राप्त करने वाला ही आत्मानुशासन के पथ का पथिक कहलाता है।

सजनों आत्मानुशासन को विकसित करने का सर्वोत्तम साधन विवेक है। यह विवेक तभी क्रियाशील होता है जब मन शांत होता है। याद रखो जब विवेक जाग्रत होता है तभी मानव जीवन के चरम और परम लक्ष्य मोक्ष को पहचान सकता है। इसलिए तो कहा गया है--

मन अपना सब शांत रखो, मस्तिष्क भी सब शांत रखो।
सोचने समझने की शक्ति को बुद्धि से बलवान रखो।।

इसी प्रकार जब जीवन का लक्ष्य मोक्ष पहचान में आ जाता है और उसे पाना जीवन का उद्देश्य बन जाता है तो मानव को लगता है कि वासनाएँ और कामनाएँ ही उसे संसार चक्र में

फँसाती हैं। अतः इन पर लगाम कस कर इन्हें त्यागना जरूरी है। इस जरूरत का अनुभव होने पर ही इंसान में आत्मानुशासन की तीव्र अभिलाषा जाग्रत होती है। यही इच्छा उसे समझाती है कि निष्काम होना ही मोक्ष का सबसे बड़ा साधन है। तब वह धीरे-धीरे निष्काम होने का प्रयास करता है। निष्कामता उसे सांसारिक मोह और शरीर के सुखों के आकर्षण से मुक्त कर देती है और वह अपने अंतःकरण की वृत्तियों यथा मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार को जीत कर सम्पूर्ण भोगों की सामग्री को धर्म-कर्म के निमित्त त्याग देता है। इस प्रकार निष्कामता व अकर्त्ता भाव से कर्म करते हुए वह सुख-दुःख, लाभ-हानि, पाप-पुण्य के अच्छे-बुरे प्रभावों से मुक्त हो जाता है। सजनों यह हर परिस्थिति में सम अवस्था में बने रहने की बात होती है। इस संदर्भ में सजनों गीता में भी कहा गया हैः-

अपने आप जो प्राप्त हो उसमें संतुष्ट रहने वाला, हर्ष-शोकादि द्वन्द्वों से अतीत हुआ, मत्सरता (द्वेष) और ईर्ष्या से रहित, सिद्धि और असिद्धि में समत्व भाव वाला पुरुष कर्मों को करके भी उनमें नहीं बँधता।

सजनों यह बंधन मुक्ति ही मोक्ष है जिसके अंतर्गत आत्मानुशासन के प्रभाव से भोगों से उपराम प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार व्यक्ति के मन में इन्द्रिय-भोगों के प्रति विरक्ति और अनासक्ति ही आत्मानुशासन की कसौटी है। यह ही मानव को संस्कारित कर ईश्वरत्व की गरिमा प्रदान करने वाला तत्व है। इस संदर्भ में इन तीन शब्दों पर ध्यान दो यथा प्रकृति, विकृति और संस्कृति। भूख लगने पर भोजन करना प्रकृति है। अपना पेट भरा होने पर भी भोजन का संग्रह करना विकृति है व स्वयं भूखे होते हुए भी अपना भोजन

किसी अन्य को खिला देना संस्कृति है। इस संस्कृति को मनुष्य आत्मानुशासन से ही प्राप्त करता है।

सारतः सजनों जान लो कि आत्मानुशासन व्यक्ति को इन्द्रिय भोगों तथा व्यसनों से दूर करता है। उसके अंतनिर्हित इंसानियत का भाव जगाता है और उसके भीतर छिपे अव्यक्त ब्रह्म का प्रकाशन होता है। इस संदर्भ में हम स्वीकारते हैं कि मानव मन निम्नगामी तत्त्व है। वह सदैव उसे विपथगामी बनाता है। मन मनुष्यों को इन्द्रियभोगों और व्यसनों की ओर ले जाता है। उसी में उसे सुख का अनुभव होता है। यह मन की सहज गति है। परन्तु यदि मनुष्य अपने मन को उपशम कर अतंर्निहित विवेक को जगा ले तो आत्मानुशासन का मार्ग पकड़कर वह मन का नियमन कर सकता है। उसे उर्ध्वगामी बना सकता है। इसी से उसमें संयम का विकास होता है और वह सत्पथ पर चलने में सक्षम होता है। सबसे बड़ी बात यह है कि आत्मानुशासन से मनुष्य में आत्मविश्वास पैदा होता है। उसके भीतर की पशुता और क्षुद्रता नष्ट हो जाती है और उसके चरित्र का परिष्कार होता है। चरित्र का परिष्कार होने से ईश्वरत्व की प्राप्ति यानि मोक्ष प्राप्ति सहज हो जाती है। सजनों यही तो है हमारा लक्ष्य जिसे हमने चैत्र के यज्ञ तक पूरा कर मानवता के उच्चतम आदर्श पर खरा उतरने का प्रयोजन सिद्ध करना है।

सजनों हम सब इस मकसद में कामयाब हो सकें इस हेतु आगामी कक्षाओं में आपको विस्तार से इन्द्रियों के समुचित कार्य के बारे में बताया जाएगा।

दिनाँक 09 जुलाई 2017 का सबक़

आत्मनिरीक्षण (आत्मनिग्रह)

न बुरा सोचूँगा, न बुरा बोलूँगा और न ही किसी का बुरा करूँगा।

सजनों यदि मजबूती से अपने ऊपर कंट्रोल करके ऐसा कर लिया तो आपके मन में शांति अपने आप स्थापित हो जाएगी और आप स्वयंमेव शक्तिशाली हो जाओगे। याद रखो जहाँ शांति है वहाँ पूर्ण संतोष है। जहाँ संतोष है वहाँ धैर्य है व कर्मठता है। ऐसा धीर व कर्मवीर इंसान ही सत्य-धर्म के निष्काम रास्ते पर डटा रह सकता है। अतः सर्वांगीण उन्नति हेतु अपने ख़्याल को परमतत्त्व के साथ जोड़ लो और अब मिल कर बोलोः-

साडा है सजन राम, राम है कुल जहान

अर्थात्

ईश्वर हमारा मित्र/प्रियतम सर्वव्यापक है, उसी को जानो, मानो व वैसे ही गुण अपनाओ।

शब्द है गुरु, शरीर नहीं है,

अर्थात्

ज्ञानी को नहीं ज्ञान को अपनाओ और निमित्त में नहीं नित्य में श्रद्धा बढ़ाओ।

इस पर सुदृढ़ता से डटे रह,

इस अटल सत्य पर स्थिर बने रहोः-

ओ३म् अमर है आत्मा, आत्मा में है परमात्मा

सजनों इस सत्य पर स्थिर रहने के पश्चात् ही इंसान धर्म पर स्थिर रह सकता है।

सजनों गत सप्ताहों में हमने जाना कि परमपद पाने के इच्छुक व्यक्ति के लिए आत्मनिग्रह द्वारा जितेन्द्रिय बनना अनिवार्य है। जितेन्द्रिय का सामान्य अर्थ है इन्द्रियों को जीत लेने वाला अथवा इन्द्रियों पर विजय प्राप्त कर लेने वाला। जब किसी भी प्रकार विषय के सम्पर्क में आने पर यानि कुछ भी स्पर्श करके, कुछ भी सुन कर, कुछ भी देखकर, कुछ भी भक्षण करके तथा कुछ भी सूँघ कर, व्यक्ति न तो हर्षित होता है और न ही ग्लानि अनुभव करता है, न राग-द्वेष ग्रस्त होता है और न ही क्षोभ ग्रस्त, तो उसे जितेन्द्रिय कहते हैं यानि कोई रस उसको अपना रसिक नहीं बना सकता। अन्य शब्दों में सजनों आत्मशुद्धि हो जाने पर, मन व इन्द्रियों में चंचलता उत्पन्न नहीं होती वरन् हर विषय में अनासक्ति पैदा हो जाती है। इस प्रकार निश्चित विषय यानि नित्य परमात्मा में चित्त के अनुरक्त हो जाने पर अन्य विषयों में फिर मन नहीं रमता, जिससे इन्द्रियाँ पराजित हो जाती हैं। इस जितेन्द्रिय स्थिति के प्राप्त हो जाने पर आत्मदर्शन होता है और व्यक्ति मोक्ष के मार्ग पर प्रशस्त होता है।

इस संदर्भ में सजनों हम सब अभी तक इस मकसद में कितने कामयाब हो पाए हैं, आओ इस विषय में सत्यता से अपना आत्मनिरीक्षण करते हैंः-

1. सजनों क्या परमपद प्राप्ति हेतु हम गृहस्थ आश्रम में रहते हुए आहिस्ता-आहिस्ता अपनी इन्द्रियों पर कन्ट्रोल करके काम जो सब विकारों की जड़ है उस पर फतह पाने

का यत्न कर रहे हैं या अभी भी इन्द्रिय वाशना के अधीन हो, कामी व्यक्तियों की तरह, दुराचार व व्यभिचार करने में फँसे हुए हैं? यदि ऐसा हो तो याद रखनाः-

काम के कारण जगी अगर कामना,
अशान्त रहोगे, रोते रहोगे।।

2. क्या जितेन्द्रिय बनने हेतु हम हृदय की निर्मलता व अंतःकरण की विशुद्धता की अतुलनीय महत्ता को समझते हुए अपने मन को जगत की कल्पना से स्वतन्त्र रखने का यत्न कर रहे हैं या नहीं? सजनों इस मकसद में यदि हम अपने आप को कमजोर समझ रहे हैं तो जान लो कि सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ कह रहा हैः-

इस नगरी तों मन आज़ाद रखो स्थान अपना जे पावणा,
साडे इष्ट देव श्री रामचन्द्र नाल मेल तुसां खावणा।।

3. क्या हम चित्तवृत्तियों के निरोध के लिए पूर्ण सामर्थ्य, श्रद्धा और विश्वास के साथ उठत-बैठत, स्वप्न-जाग्रत अक्षर के अजपा जाप द्वारा अपना ख़्याल ध्यान वल व ध्यान प्रकाश वल जोड़े रखने में कामयाब हो पा रहे हैं या नहीं? याद रखो इस संदर्भ में सच्चेपातशाह जी कहते हैंः-

हरदम ध्यान मैं लावां तेरा,
हटी विसूचिका मिट गया अंधेरा।
दिन रात करां मैं तेरी सेवा,
चरणां विच प्रेम बढ़ावां।।
जी मैं एहो वर्ताव दिखावां।।

हमको भी सजनों यही वर्ताव दिखाना है।

4. सजनों क्या हम वैरागियों की तरह संसारी विषयों को अनंत दुःखरूप और बन्धन का कारण समझकर, उनका त्याग करने की सामर्थ्य जुटा पा रहे हैं यानि राग-द्वेष मुक्त हो आनन्द से जीवन जी पा रहे हैं या नहीं? यदि नहीं तो समझोः-

सांसारिक सुखों की चाहना राग है,
जो कष्ट और पीड़ा दिखाए ।
राग का मूल अविद्या है, परिणाम क्लेश कहाए,
सजन जी, परिणाम क्लेश कहाए।।

ऐसा न हो इसलिए तो सजनों शास्त्र कह रहा हैः-

वैराग दी डोर नूं धारण करो,
फिर सुरत चरणां दे कोल कर लवो।
फिर सुरत चरणां दे कोल करो,
इस बात तों कभी छूटो न, इंसान कभी छूटे न।।

5. क्या हम बुरी वृत्तियों व मानसिक रोगों का परिहार करने के साथ-साथ, सद्-वृत्तियों के विकास के प्रति भी जाग्रत हैं या नहीं? इस संदर्भ में सजनों शास्त्र में वर्णित श्री महाबीर जी के निम्नलिखित वचनों को सदा स्मरण रखते हुए सद्-वृत्तियों का समुचित विकास करोः-

अच्छा फल प्यारा लगे साजन जी,
जैंदे विच खुशबू बड़ी आवे।
ओ फल फैंक्या जांवदा है,
जेहड़ा फल मुश्कया और तरक्क जावे।।

6. क्या परमपद जैसी उच्च पदवी को प्राप्त करने के साथ साथ अपना घर सतयुग बनाने हेतु, हम आत्मानुशासित व, आत्माभिमुख हो अनेकता से एकता की ओर यानि विषमता से समता की ओर बढ़ पा रहे हैं या नहीं? यदि नहीं तो समझोंः-

सूरजां दा सूरज चढ़या होया है हमेश।
ओही सजन देख सकदा है, जेहड़ा सब नूं समझे एक।
जेहड़ा समझे सब नूं एक, ओहदी बुद्धि हो गई सुचेत।
ओ बिन सूरजां दे सूरज नूं सुञाण सकदा।।

7. क्या हम अन्दरूनी व बैहरूनी दोनों वृत्तियों का दमन करने हेतु, अपने अन्दर की वृत्ति दर्शन में और बाहर की वृत्ति राम रूप-कृष्ण रूप में सबको देखते हुए समदृष्टि होने का यत्न कर पा रहे हैं या नहीं? नहीं तो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में वर्णित समभाव-समदृष्टि की महत्ता को समझोः-

समभाव समदृष्टि, समभाव समदृष्टि,
सजन जेहड़ा इक निगाह इक दृष्टि देखे,
जगत जहान ओजी ओजी।।
कर लैंदा ओ मेरे साजना कर लैंदा ओ मेरे साजना।
कर लैंदा आत्मिक ज्ञान ओजी ओजी।।

उपरोक्त विश्लेषण के संदर्भ में सजनों हम विश्वास करते हैं कि पूर्ण कामयाबी प्राप्त करने के लिए यानि विषमता से समता की ओर बढ़ने के लिए आपने सही तरीके से आत्मनिरीक्षण कर अपनी नाकामयाबी के कारणों को समझ लिया होगा। इस विषय में सजनों हम आपको एक बार फिर आत्मसंयम की महत्ता से सारतः परिचित कराते हुए बताना

चाहेंगे कि हमारे भीतर शक्ति का अनंत कोष है। उस शक्ति का बहुत बड़ा भाग ढका हुआ है यानि प्रतिहत है। कुछ भाग केवल अस्तित्व में है और कुछ भाग उपयोग में आ रहा है। अन्य शब्दों में न हम अपनी यथार्थ शक्ति को पूरी तरह से जान पा रहे हैं और न ही उसका उचित उपभोग कर पा रहे हैं। हम अपनी शक्ति के प्रति यदि जागरुक हों तो केवल अस्तित्व में रही हुई शक्ति और प्रतिहत शक्ति को उपयोग की भूमिका तक ला सकते हैं। शक्ति का जागरण आत्मसंयम के द्वारा ही किया जा सकता है।

इस संदर्भ में सजनों हमारे मन की अनेक माँगें होती हैं। हम उन उचित/अनुचित माँगों को पूरा करते चले जाते हैं। फलतः हमारी शक्ति स्खलित होती जाती है। उसके जागरण का सूत्र है--मन की माँग को अस्वीकार करना। मन की माँग को अस्वीकारने का अर्थ है--संकल्प-शक्ति का विकास। यही आत्मसंयम है। जिसका निश्चय (संकल्प या संयम) दृढ़ होता है, उसके लिए कुछ भी दुष्कर नहीं होता। संयम से जीव बुरी वृत्तियों का निरोध करता है अन्यथा वह बुरी वृत्तियों में फँस जाता है। संयम का फल अनास्त्रव है यानि कभी नहीं समाप्त होने वाला। इससे मन को पूर्ण संतोष प्रदान रहता है। याद रखो जिसमें संयम की शक्ति विकसित हो जाती है उसमें विजातीय द्रव्य यानि अमानवीय गुणों का प्रवेश नहीं हो सकता। संयम का सूत्र है- सब काम ठीक तरीके से करो। सब काम निश्चित समय पर करो। यह न हो कि समय हाथ से निकल जाए और तब आपको अपने जीवन के लक्ष्य की याद आए। जानो तब पछतावे के सिवाय और कुछ प्राप्त नहीं होगा।

सजनों संयम से इच्छा का निरोध होता है। अतः सर्दी-गर्मी, भूख-प्यास, बीमारी, इन सब घटनाओं को धीरता से सहन करो। यह संयम का प्रयोग है। संयम का प्रयोग करने वाला माँगों के साथ जुड़ता नहीं अपितु उनकी उपेक्षा करता है। मन की माँग को जान लेता है, देख लेता है पर उसे पूरा नहीं करता। ऐसा करते-करते मन माँग छोड़ देता है, फिर जो घटना घटती है, वह सहज भाव से सह ली जाती है। संयम-शक्ति का विकास इस प्रक्रिया से किया जा सकता है जो करना है या जो छोड़ना है, उसकी धारणा करो-उस पर मन को पूरी एकाग्रता के साथ केन्द्रित करो। निश्चय की भाषा में उसे बोलकर दोहराओ, फिर उच्चारण को मंद करते हुए उसे मानसिक स्तर पर ले आओ। इसके बाद ज्ञान तन्तुओं और कर्म तन्तुओं को कार्य करने का निर्देश दो। फिर ध्यानस्थ और तन्मय हो जाओ। इस प्रक्रिया के द्वारा आप शक्ति के स्रोत को उद्घाटित करने में सफल हो जाओगे और आत्मविजय प्राप्त कर लोगे। हम सब आत्मविजयी हों उसके लिए हम सब सजनों से प्रार्थना करते हैं कि आत्मनियन्त्रण द्वारा जीवन की हर परिस्थिति में अपनी सुरत को शब्द ब्रह्म के साथ जोड़े रखने में कमजोर न पड़ना और इस प्रकार ब्रह्म नाल ब्रह्म हो जाना।

दिनाँक 16 जुलाई 2017 का सबक़

ज्ञानेन्द्रियों का समुचित कार्य-1

साडा है सजन राम, राम है कुल जहान

अर्थात्

ईश्वर हमारा मित्र/प्रियतम सर्वव्यापक है, उसी को जानो, मानो व वैसे ही गुण अपनाओ।

शब्द है गुरु, शरीर नहीं है,

अर्थात्

ज्ञानी को नहीं ज्ञान को अपनाओ और निमित्त में नहीं नित्य में श्रद्धा बढ़ाओ।

इस पर सुदृढ़ता से डटे रह,
इस अटल सत्य पर स्थिर बने रहोः-

ओ३म् अमर है आत्मा, आत्मा में है परमात्मा

याद रखो जो उपरोक्त विचारों पर डटा रहता है उस की ज्ञानेन्द्रियाँ पूर्ण सजग यानि सचेतन होती हैं और वह देवता तुल्य इंसान अपना हर कार्य, अपने बलबूते पर कुशलता से सिद्ध करते हुए, सदा आनन्दमय बना रह अपना जीवन लक्ष्य प्राप्त कर लेता है। इसके विपरीत जिसकी ज्ञानेन्द्रियाँ सांसारिक अज्ञान धारणा के कारण अचेतन हो जाती हैं वह अपने जीवन को बर्बादी की ओर धकेल अंत दुर्दशा को प्राप्त होता है। किसी के साथ ऐसा न हो इस हेतु ज्ञानेन्द्रियों का समुचित प्रयोग कैसे करना है, इस विषय में जानना अनिवार्य है। आओ आज इसी विषय में जानते हैं।

सजनों अभी तक हमने जो भी जाना समझा उससे ज्ञात होता है कि मनुष्य संसार में सर्वश्रेष्ठ प्राणी है। सीमाबद्ध शरीर में असीम का वास है। यह हमारा दुर्भाग्य है कि हमारे अंतर्घट में जो असीम विराजमान है हम उसे नहीं जानते और इसी कारण मानवता की मर्यादाओं का उल्लंघन कर बैठते हैं। सजनों उस अनंत को जानने की यात्रा तो तब आरंभ होती है जब हम अनासक्त भाव से अपने व्यक्तित्व में व्याप्त बुराईयों, दोषों, दुर्गुणों और कुप्रवृत्तियों को पहचानकर उनसे सदा के लिए मुक्ति पाने के लिए आत्मनिग्रह कर आत्मसुधार करने का नित्य प्रति सुनिश्चित रूप से यत्न करते हैं। कहने का अभिप्राय यह है कि मन की अस्थिरता के कारण, इन्द्रिय विषयों के प्रभाव से, वास्तविक अस्तित्व के अज्ञानमय वातावरण में पनपे, काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार आदि विकार ही ऐसे कारक हैं जो सत्य ज्ञान व मति-बुद्धि तथा प्रेरणा को सावधान करने वाली शुद्ध बुद्ध आत्मा को आवृत्त कर लेते हैं और इंसान को परम सत्ता का बोध नहीं होने देते। फलतः वह आत्मिक ज्ञान के अभाव के कारण अपनी वास्तविक ब्रह्म सत्ता से अपरिचित हो, जगतीय मिथ्या सत्ता में ही बंधनमान होकर रह जाता है।

इस बंधन से छुटकारा पाने हेतु जब व्यक्ति आत्मविश्लेषण कर आत्मसंयम द्वारा अपनी इन्द्रियों व मन पर अंकुश लगा पाने की कला में प्रवीण हो जाता है तो अपनी वृत्तियों को अधिकाधिक नियमित एवं परिष्कृत कर, समस्त विकारों की जननी, आशा-तृष्णा को समूलतः शमित यानि शांत कर लेता है व निर्मल वृत्ति हो जाता है। यह अवस्था परिपूर्ण मनः

शांति व हृदय के सचखंड होने का प्रतीक होती है जिसके अंतर्गत मन को पूर्ण संतोष प्राप्त हो जाता है और स्वतः ही मनुष्य के हृदय में आत्मप्रकाश व्याप्त हो जाता है। फिर जैसे बाह्य वातावरण में दीप या धूप निर्धूम होकर प्रकाश या सुवास फैलाते हैं और उसे स्वच्छ, स्पष्ट व मोहक बना वस्तुओं का यथा बोध कराते हैं वैसे ही आत्मतुष्टि के प्रभाव से निर्मित हृदयगत स्वच्छ वातावरण के प्रभाव से, सचेतन अवस्था में स्थिरता से बने रह, इंसान के लिए आत्मबोध करना सहज हो जाता है। इस प्रकार मानव स्वतः ही वितृष्ण और जितेन्द्रिय बन जाता है। इस मुक्तावस्था में फिर मोह-माया यानि इन्द्रिय विषयों का आकर्षक प्रपंच सत्य-धर्म के निष्कामी साधक को, चाहे कितना ही भ्रमित कर पथभ्रष्ट करने का यत्न क्यों न करें, वह आत्मसंतोषी मानव उन ऐन्द्रिक कामनाओं और लोभ का शिकार हो सत्पथ से विचलित नहीं होता और समभाव नजरों में कर, समदृष्टि हो जाता है और परस्पर सजनता का व्यवहार करते हुए एकता, एक अवस्था में बने रहता है। इस प्रकार वह आजीवन अपने वास्तविक सत्-चित्त-आनन्द स्वरूप में स्थित रह सर्व एकात्मा का दर्शन करते हुए, इस जगत में विचरता भी है और नहीं भी विचरता।

इसी महत्ता को दृष्टिगत रखते हुए सजनों इस नश्वर जगत में रहते हुए, हमें भी अपने परमलक्ष्य को सुनिश्चित रूप से प्राप्त करने हेतु अपनी इन्द्रियों व मन को इसके मायावी विषयी जाल के आकर्षण से विमुक्त रख निर्लिप्तता से विचरने की कला सीखनी है यानि मन को संकल्प रहित रख

सतवस्तु की चाल पकड़नी है। सजनों अपनी वृत्ति, स्मृति, बुद्धि व भाव-स्वभावों को निर्मल रखने हेतु ऐसा पुरुषार्थ दिखाना आवश्यक मानो। निःसंदेह इसके लिए हमें अपनी ज्ञानेन्द्रियों को वश में रखते हुए उनका धीरता से संचालन करने की समुचित विधि को समझना होगा। आओ आज इसे ही समझते हैंः-

ज्ञानेन्द्रियाँ

शाब्दिक अर्थ

सजनों जैसे पहले भी बताया गया था कि जिनसे मानव को विषयों का ज्ञान होता है उन्हें ज्ञानेन्द्रियाँ कहते हैं। ये पाँच हैं और इन्हें क्रमशः दर्शनेन्द्रिय, श्रवणेन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, स्वादेन्द्रिय और स्पर्शेन्द्रिय कहते हैं। इन इन्द्रियों के आधार अंग क्रमशः आँख, कान, नाक, जिह्वा और त्वचा हैं।

यौगिक अर्थ

सजनों ज्ञानेन्द्रिय, यह शब्द ज्ञान और इन्द्रिय दो शब्दों के योग से बना है। यहाँ ज्ञान से तात्पर्य वस्तुओं और विषयों की उस जानकारी से है जो मन या विवेक में होती है और इन्द्रिय से तात्पर्य उस शक्ति से है जिसके द्वारा बाहरी पदार्थों के भिन्न-भिन्न गुणों का भिन्न-भिन्न रूपों में अनुभव होता है।

ज्ञानेन्द्रियों के विषय

हर इन्द्रिय अपने-अपने विषय के ज्ञान का बोध कराती है

जैसे आँख रूप का, कान शब्द का, नाक गंध का, जिह्वा रस का और त्वचा स्पर्श का। इस तरह ज्ञानेन्द्रियों के विषय समान नहीं हैं यानि यदि एक ज्ञानेन्द्रिय का विषय एक तरह का है, तो दूसरी ज्ञानेन्द्रिय का विषय गुणात्मक अन्तर के साथ दूसरा है। ये सभी इन्द्रियों के सूक्ष्म विषय हैं।

सूक्ष्म विषय के अलावा ज्ञानेद्रियों के स्थूल विषय भी हैं। इन्हें हम पंचमहाभूतों - आकाश, वायु, अग्नि, जल व पृथ्वी के नाम से जानते हैं। इन्द्रियों का प्रत्येक सूक्ष्म विषय अपने-अपने स्थूल विषयों से सम्बद्ध है। जैसे - आँख-अग्नि से, शब्द-आकाश से, स्पर्श-वायु से, स्वाद (रस) जल से व गन्ध-धरती से सम्बन्धित है।

यहाँ सजनों विषय का अर्थ स्पष्ट करते हुए हम बता दें कि विषय वे हैं जिन्हें ज्ञानेन्द्रियाँ ग्रहण करती हैं व जिसे संभोग की सम्पत्ति मान उनके सम्बन्ध में कुछ कहा या विचार किया जा सकता है। इस आधार पर इन्द्रियजन्य सुख को विषय कहा जाता है। सजनों विषयों की ज्ञानेन्द्रियों से स्वतन्त्र सत्ता जगत में होती है यानि ये बाह्य व लौकिक होते हैं। मन के सहयोग से ये ज्ञानेन्द्रियाँ बाहरी जगतीय विषयों का चित्त में अनुष्ठान/व्यवस्था करती हैं और संस्कार रूप में उन्हें चित्त में संचित करती हैं।

ऐन्द्रिक विषयों में लिप्ति की प्रक्रिया और उसका परिणाम

ऐन्द्रिक किसी भी विषय के साथ ख़्याल का सम्बन्ध स्थापित होने पर उस विषय का भाव या धर्म मन में जाग्रत हो जाता है

और इंद्रिय सुख व वासनात्मक आनन्द प्राप्त करने की भावना पनपने लगती है। ऐसा होने पर इंसान भौतिक पदार्थों या सुखों की कामना पूर्त्ति हेतु सांसारिक सुखों का ज्ञान यानि वासनात्मक ज्ञान प्राप्त कर विषयकर्म/भौतिक कर्म करने में जुट जाता है। परिणामतः ख़्याल अपने सच्चे घर से भटक जगतीय विषयों में अटक जाता है। यह अपने आप में चेतनायुक्त इंसान के अचेतन अवस्था को प्राप्त हो अपने नित्य परमात्म स्वरूप की विस्मृति होने की व सत्य-धर्म के निष्काम रास्ते से भटक अज्ञानमय जगत से नाता जोड़ने की बात होती है। ऐसा होने पर उस अविचारी का ध्यान अस्थिर हो जाता है और वह अपनी विवेकशक्ति का प्रयोग करने में असमर्थ हो जाता है। यह परमार्थ से भटक स्वार्थपर रास्ता अपनाने की बात होती है।

हममें से किसी के साथ ऐसा न हो इसके लिए याद रखो कि विषयों के भोग से जिस सुख-दुःख की अनुभूति होती है, उसे भोग कहते हैं। प्रकृतिस्थ तीन गुणों में से रजोगुण के बढ़ने पर इंसान में विषय भोगों की इच्छा बढ़ती है और सांसारिक कार्यों में लिप्त मनुष्य भोगविलासी हो भौतिकवादी हो जाता है और सांसारिक विषय वासनाओं में आसक्त हो जाता है। इसी कारण सजनों सभी धनवान, राजा-महाराजा विषयी इंसानों की गणना में आते हैं।

स्पष्ट है सजनों प्रभु का चिंतन करने के स्थान पर, ज्ञान इन्द्रियों के विषयों का चिन्तन करने वाले इंसान की आसक्ति यानि चाहना विषयों में हो जाती है। आसक्ति से कामना उत्पन्न होती है और कामना की पूर्त्ति न होने पर क्रोध व पूर्त्ति

होने पर लोभ-मोह उत्पन्न होता है। इस अज्ञानमय अवस्था में सजनों इंसान परमेश्वर का असीमित साम्राज्य छोड़कर मनुराज का आधिपत्य स्वीकार लेता है। अन्य शब्दों में इस अवस्था में उसके असंतुष्ट, अधीर मन में नाना प्रकार की संकल्प-विकल्प की तरंगे उठने लगती हैं और इस विकृति के कारण उसकी विवेकशक्ति कमज़ोर पड़ जाती है और इंसान की पकड़ से विचार छूट जाता है।

विचार छूटने पर वह भोगविलास में आसक्त विवेकशून्य इंसान अधर्मयुक्त अवलड़ा रास्ता अपना बैठता है जो अपने आप में उसके लिए अपने वास्तविक धर्म से गिरने की अति हानिकारक बात होती है। यथार्थ में इसी भूल के कारण सजनों इंसान का ख़्याल ग्रहण किए हुए विषयों के नश्वर धर्म यानि सत्य के स्थान पर झूठ के साथ जा जुड़ता है और उन विषयों का उपभोग करने हेतु उन्हीं में ही निवास करने लगता है यानि उस अचेतन इंसान को उन विषय-भोगों का रस पड़ जाता है। इस तरह उसके विषयी ख़्याल के लिए मनुराज की सीमा पार कर पुनः अपने सच्चे घर में स्थिर होना यानि अपने वास्तविक स्वरूप को जानना कठिन हो जाता है। यह उसके लिए यथार्थता का रास्ता छोड़ स्वार्थवाद का सिद्धान्त अपनाने की अर्थात् अंतः स्थित परमेश्वर की तरफ से मुख घुमा, बहिर्मुखी होने की यानि सच का राज छोड़ सांसारिकता रूपी कच का राज अपनाने की बात होती है। इसलिए तो कहते हैं कि इन ज्ञानेन्द्रियों के विषय-भोग द्वारा ही जीव प्रगट संसार की वासना में फँस जाता है और अनेक प्रकार के भोग्य पदार्थों की कामना कर,

उनकी प्राप्ति के चक्कर में उलझ अंत अशांति को प्राप्त कर अत्यन्त दुःखमय जीवन व्यतीत करता है व जन्म-मरण के चक्रव्यूह में उलझा रहता है।

उपरोक्त विवेचना से सजनों ज्ञात होता है कि मनुष्य के चारों ओर विषयों की अनंत लहरें उठती रहती हैं और उनमें घिरा हुआ मनुष्य का ख़्याल अपने वास्तविक लक्ष्य के प्रति जाग्रत नहीं रह पाता। भावार्थ यह है कि जो इन्द्रिय निग्रह नहीं कर पाता उसकी इन्द्रियाँ, आत्मा-परमात्मा यानि परमार्थ तत्त्व को छोड़कर विषयों की ओर दौड़ती हैं, उन्हें विषयों में रमण का अभ्यास पड़ जाता है। याद रखो किसी भी इंसान का इन्द्रिय रस में उलझना कर्मेन्द्रियों को, पुण्य कर्म करने के स्थान पर पाप कर्मों में प्रवृत्त करने की बात होती है। इस संदर्भ में गीता में भी कहा गया है जो इन्द्रियों और विषयों के संसर्ग से उत्पन्न होने वाले भोग हैं वे निःसंदेह दुःख की योनियाँ हैं, वे आदि और अन्त वाले हैं यानि नश्वर हैं। उनमें बुद्धिमान नहीं रमते। वास्तव में विषयों से अनासक्त रहने वाला सजन पुरुष ही अन्तःकरण का सुख पाता है। अतः ज्ञानेन्द्रियों को उनके विषयों से हटाकर चित्त को हर परिस्थिति में शांत रखना अनिवार्य है। इस हेतु सदा याद रखो विषयों में आसक्त मन ही बन्धन का कारण है और विषय रहित मन मोक्ष का हेतु है।

ऐन्द्रिक विषयों से छूटने का उपाय और परिणाम

स्मरण रखो कि आत्मनियन्त्रण द्वारा अंतर्मन में फैले विष का प्रभाव विषनाशक औषधि यानि मूलमंत्र आद् अक्षर के अजपा

जाप द्वारा नष्ट किया जा सकता है। ऐसा होने पर बुद्धि सचेत हो जाती है और ख़्याल को ध्यान वल व ध्यान को प्रकाश वल स्थिर रखना सहज हो जाता है। कहने का आशय यह है कि जब हम अक्षर के अजपा जाप द्वारा अपने मन, बुद्धि और चित्त को एकाग्र करके, अपने ख़्याल को उस परमसत्ता के स्रोत के साथ जोड़ने में कामयाब हो जाते हैं यानि उस ब्रह्म सत्ता से जो सचेतना का प्रवाह चल रहा है उसे ग्रहण करने के योग्य हो जाते हैं तो इन संसारी विषयों से स्वयंमेव मुक्ति प्राप्त हो जाती है।

यहाँ यह भी स्पष्ट कर दें कि वह आद् प्रणव ध्वनि इस वातावरण में अनावरत स्वतः गुंजायमान है। अतः किसी मानव को जिह्वा, श्वास-प्रश्वास आदि साधनों के प्रयोग द्वारा उसका जाप करने की कोई आवश्यकता नहीं। यह जानते-समझते हुए भी सजनों हमारे वेद-शास्त्रों में उस सर्वश्रेष्ठ प्रणव ध्वनि यानि आद् अक्षर को मानसिक रूप पर अपने ख़्याल द्वारा घड़ी की टक-टक की तरह चलाने का विधान रखा गया है। वह इसलिए क्योंकि यह संसारी विषयों में गलतान, इंसान के भूले-भटके बिखरे ख़्याल को, इन ऐन्द्रिक विषयों के क्षणिक रस भोगों से उबार कर, अखिल ब्रह्मांड में गुंजायमान उस अनहद ध्वनि की ओर केन्द्रित कर, उसका मानसिक रूप से बोध कराने के लिए आवश्यक होता है। इसे ही आत्मबोध कहते हैं। इस ध्वनि के साथ अफुरता से जुड़ने पर मानव को अपने यथार्थ स्वरूप का सज्ञान हो जाता है और वह अपने अंतःस्थल में प्रवाहित सत्य ज्ञान को प्राप्त कर यह जान जाता है कि 'ईश्वर है

अपना आप प्रकाश, ईश्वर है जे अजपा जाप' । ऐसा होने पर फिर बैहरूनी वृत्ति में अक्षर को चलाने की आवश्यकता नहीं रहती अपितु वह तो स्वतः ही बिना किसी यत्न के चौबीस घंटे अजपा चलता रहता है। अतः इंसान चेतन अवस्था को प्राप्त रहता है। यह मनुराज से दोस्ती छोड़ ख़्याल को परमेश्वर में लीन रख आत्मज्ञानी बनने की बात होती है। इस प्रकार विषाद रहित इंसान मूर्खता वाला जड़ता का दुःखमय भाव छोड़ पुनः सचेतनता से अपने यथार्थ धर्म पर निष्कामता व सत्यनिष्ठा से बने रह, परोपकार कमाता हुआ स्वार्थी से परमार्थी बन जाता है और उसकी समस्त विघ्न बाधाओं का अंत हो जाता है। ऐसा शुभ होने पर इंसान भक्ति-शक्ति को धारण कर समभाव को नजरों में रखते हुए, जीवन की हर अच्छी-बुरी परिस्थिति में समरस बना रहता है।

निष्कर्ष

ज्ञानेन्द्रियों द्वारा की जाने वाली ज्ञान-धारणा क्रिया का महत्त्व

सजनों जानो कि किसी भी विषय या पदार्थ का सत्य ज्ञान प्राप्त करने हेतु हमें ज्ञान-धारणा क्रिया को सदा कुदरती विधि विधान अनुसार निर्धारित ढंग से अत्यंत ध्यानपूर्वक संचालित करना चाहिए ताकि ज्ञान-धारणा क्रिया के समय हमारा मन, बुद्वि, चित्त और ज्ञानेन्द्रियाँ एक ओर ही स्थिर यानि एकाग्र बनी रहें। यह अंतःकरण की स्वच्छता और शुद्धता यानि हृदय की पवित्रता बनाए रखने के लिए अत्यन्त आवश्यक है। इसके विपरीत अगर ज्ञान-धारणा क्रिया के समय हमारा मन एक ओर हो और हमारी ज्ञानेन्द्रिय दूसरी ओर (उदाहरणतः आँख जिस समय दृश्य को देख रही है उस समय यदि हमारा मन

किसी अन्य विषय के बारे में सोच रहा है) तो हम दोनों ही विषयों के ज्ञान को पूर्ण रूप से प्राप्त नहीं कर पाते। इसी कारण हमारा मन और इन्द्रियाँ चंचलता के स्वभाव में फँस, अज्ञान को ही ज्ञान समझ कर स्वीकार लेती हैं और उसका अपने आप प्रयोग करना आरम्भ कर देती हैं यानि हम मनमत के अनुसार अज्ञानमय रास्ते पर चलना प्रारंभ कर देते हैं। यह बुद्धिभ्रम, चित्त के डाँवाडोल होने व मन की अस्थिरता को दर्शाता है। इसीलिए हम अच्छे-बुरे की पहचान खो बैठते हैं और कई बार ऐसे कर्म कर बैठते हैं जिससे आत्मविश्वास टूटता है। परिणामस्वरूप हम पराश्रित हो, एक अक्लमंद इंसान की तरह स्वतंत्र रूप से जीवन जीने में नाकामयाब हो जाते हैं।

इस प्रकार सजनों ज्ञानेन्द्रियों द्वारा की जाने वाली ज्ञान-धारणा प्रक्रिया के प्रति असावधान व अचेत रहने के कारण हम ज्ञानतत्व यानि यथार्थ-ज्ञान से वंचित रह न तो तत्त्वज्ञानी बन सकते हैं और न ही शुद्ध ज्ञान का आदान-प्रदान करने की योग्यता प्राप्त कर सकते हैं। परिणामस्वरूप हम अपनी लापरवाही के कारण अपने जीवनकाल में न तो अपनी असलियत पहचान सकते हैं और न ही इस जीव, जगत और ब्रह्म के खेल को समझ पाते हैं। इस तरह पारस्परिक सम्बन्धों का कुशलता से निर्वाह कर पाने के स्थान पर झुखने-रोने का स्वभाव अपना बैठते हैं। अतः सजनों आत्मज्ञान/तत्त्वज्ञान/ ब्रह्मज्ञान प्राप्ति हेतु अपनी ज्ञान धारणा क्रिया का अत्यंत ध्यानपूर्वक संचालन सुनिश्चित करते हुए बुद्धिमत्ता से काम लेना आवश्यक है।

सारतः याद रखो कि इन ज्ञानेन्द्रियों का संचालन कुदरती रूप से ही करना अनिवार्य है क्योंकि चाहे ये ज्ञानेन्द्रियाँ देखने में छोटी हैं परन्तु इनकी ताकत अपार है और उस ताकत का सही प्रयोग करने की समझ या बुद्धि रखने वाला मानव ही अपने जीवन का असली प्रयोजन सिद्ध करने हेतु अपनी कर्मेन्द्रियों का उचित ढंग से प्रयोग कर पाता है। इस संदर्भ में सजनों हम सब इन इन्द्रियों रूपी अश्वों की लगाम, बुद्धि के हाथ में कर, इस अपार ताकत का संयमित रूप से सदैव सदुपयोग कर सकें इस हेतु अपनी पाँचों ज्ञानेन्द्रियों को सही ढंग से संचालित करने की विधि जानना अनिवार्य है जिसके विषय में हम आगामी कक्षा में बात करेंगे।

दिनाँक 23 जुलाई 2017 का सबक़

ज्ञानेन्द्रियों का समुचित कार्य-2

दर्शेनेन्द्रिय (भाग-1)

साडा है सजन राम, राम है कुल जहान

अर्थात्

ईश्वर हमारा मित्र/प्रियतम सर्वव्यापक है, उसी को जानो, मानो व वैसे ही गुण अपनाओ।

शब्द है गुरु, शरीर नहीं है,

अर्थात्

ज्ञानी को नहीं ज्ञान को अपनाओ और निमित्त में नहीं नित्य में श्रद्धा बढ़ाओ।

इस पर सुदृढ़ता से डटे रह,
इस अटल सत्य पर स्थिर बने रहोः-

ओ३म् अमर है आत्मा, आत्मा में है परमात्मा

सजनों इस संसार में दो तरह की वस्तुएँ हैं ... एक नाशवान दूसरी अविनाशी। इस संदर्भ में सभी प्राणियों का शरीर नाशवान है लेकिन उसी में स्थित आत्मा अविनाशी है। शरीर - जाति, कुल, अवस्था, देश, काल व रिश्ते-नातों और मोह-माया में बद्ध है, अतः विनाश को प्राप्त होता है, लेकिन आत्मा शरीर का नाश होने पर भी नष्ट नहीं होता और उद्देश्य सिद्धि हेतु दूसरी काया में प्रवेश कर जाता है। स्पष्ट है सजनों आत्मा अजर है और उसकी सत्ता सार्वकालिक है यानि उसका सम्बन्ध भूत, वर्तमान, भविष्य आदि काल

विशेष से न होकर एक ही साथ सबसे है और वह कालजयी और कालातीत है। इसी तथ्य को यदि हम दूसरे तरीके से समझें तो ज्ञात होगा कि वह प्रकृति के त्रिगुणों, पंचमहाभूतों, इन्द्रियों, शरीर रूपी विकारों से अतीत है इसलिए वह अजन्मा, नित्य, शाश्वत, अविनाशी, अव्यय, अचल, स्थिर तथा सनातन है।

सजनों अपनी असलियत का बोध कराने वाले इस तथ्य को आत्मसात् करते हुए, हमें भी पंच तत्त्वों, मन और इन्द्रियों की विकारी सत्ता से स्वतन्त्र रह इस जगत में नित्य भाव अनुसार, निर्विकारी जीवनयापन करने की योग्यता प्राप्त करनी है। निःसंदेह यह तभी सिद्ध हो पाएगा जब हम 'ब्रह्म विद्या' द्वारा, सांसारिक विषय बंधनों में बाँधने वाली व हमें अधिकाधिक भौतिक सुखों की उपलब्धियों तक सीमित रखने वाली 'अविद्या' का नाश कर, सम्यक् ज्ञान प्राप्त नहीं कर लेते। इस हेतु सजनों सर्वप्रथम आवश्यकता है मन के दासत्व से इन्द्रियों को मुक्त करा, उन्हें उनके निज धर्म में स्थिर करने की यानि कान को कान के धर्म में, आँखों को आँखों के धर्म में, जिह्वा, नाक, त्वचा आदि को उनके धर्म में स्थिर करने की। निज धर्म में स्थिर रहने पर ही ये अंतर्मुखी हो दिव्यता को धारण करेगी और मानव को इस लौकिक प्रपंचना से मुक्त रख अपने अलौकिक स्वरूप में स्थित होने की सामर्थ्य प्रदान करेगी। इसी परिप्रेक्ष्य में आओ आज हम सर्वप्रथम इन्द्रियों में सर्वाधिक प्रभावशाली इन्द्रिय आँख/दर्शनेन्द्रिय/दृष्टि के विषय में जानते हैं:-

आँख/दर्शनेन्द्रिय/दृष्टि

यह देखने की इंद्रिय है जिससे प्राणियों को रूप अर्थात् वर्ण, विस्तार तथा आकार का ज्ञान होता है। यह ऐसी इन्द्रिय है जिस पर आलोक यानि प्रकाश के द्वारा बिंब खिंच जाता है। सजनों यह दृष्टि ही दर्शन का हेतु है। दर्शन यानि नेत्रों के द्वारा होने वाला बोध या ज्ञान अर्थात् पदार्थों का नेत्रों द्वारा होने वाला ज्ञान जिससे पदार्थों के धर्म, कार्य, कारण, संबंध आदि का बोध होता है। यह कार्य उस शक्ति या वृत्ति द्वारा होता है जिससे मनुष्य अथवा जीव सब चीजें देखते हैं यानि दृष्टि। दृष्टि के सामने जब कोई पदार्थ आता है तब उस पदार्थ का आभास नेत्र गोलकों के साथ जुड़े सूक्ष्म ज्ञानवाहक-सूत्रों के द्वारा मस्तिष्क में स्थित सूक्ष्म-नेत्र पर जाकर आघात करता है व उसका प्रतिबिम्ब बनता है जिसका बोध बुद्धि के द्वारा होता है। फिर जिस तत्त्व के साथ बुद्धि व ख्याल जुड़ते हैं वही माध्यम बनकर दर्शन का हेतु बन जाता है।

सजनों दृष्टि मनुष्य के मन के अच्छे या बुरे भावों को भी प्रदर्शित करती है जैसे भोग्य विषयों को देखते ही इन्द्रियलोलुप व्यक्ति की दृष्टि चंचल हो जाती है। सत्संग के प्रभाव से दृष्टि प्रसन्नता की ओर झुकती है। दुई भाव से युक्त आँखें शैतानों जैसी भयानक होती हैं। क्रोध के आवेग से आवेशित होते ही वक्र/टेढ़ी/मंद हो जाती हैं और वक्रदृष्टि कहलाती है। मन में किसी के प्रति अनुग्रह आते ही दृष्टि रहम वाली हो जाती है और दयादृष्टि कही जाती है। इस संदर्भ में सजन श्री शहनशाह हनुमान जी की दया दृष्टि का वर्णन करते हुए सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है:-

धन धन हिन हनुमान जी जिन्हां मेहर दी दृष्टि दिखाई ए
ओन्हां जन्म दी पीड़ा मिटाई ए।

तेरी-मेरी, अपने-पराए आदि के भाव से युक्त व निजी सुख-समृद्धि आदि के उत्कर्ष से सम्बन्धित, स्वार्थपर संकुचित दृष्टि, संकीर्ण दृष्टि कहलाती है। सजनों संकीर्ण दृष्टि अविद्या की परिचायक है व इसी के साथ राग-द्वेष, अभिनिवेश आदि क्लेश जुड़े हुए हैं। ऐसी दृष्टि साम्प्रदायिक, धर्ममताभिमान, ऐश्वर्याभिमान, साम्राज्याभिमान, देशाभिमान, ज्ञानाभिमान आदि में बद्ध होती है। दिन-प्रतिदिन जगत में बढ़ रहा महाविनाशक आतंकवाद का उग्र रूप इसी संकीर्ण दृष्टि का परिणाम है। इस प्रकार सजनों आँखें चाहे झुकी हुई हों या उठी हुई हों, सीधी हों या वक्र हों, पूर्व की ओर घूमें या पश्चिम की ओर, उन सबसे मानव के मन के भावों व स्वभावों के रूप का स्पष्ट दर्शन हो जाता है।

इसके अतिरिक्त सजनों दृष्टि की और भी विशेषताएँ हैं, जैसे भूत-भविष्य और वर्तमान की ओर दृष्टिक्षेप करते हुए दीर्घकालीन नियोजन करने वाली दृष्टि दूरदृष्टि कहलाती है। मन की आँखों द्वारा छोटी से छोटी यानि सूक्ष्म से सूक्ष्म बात को सहज समझने वाली दृष्टि सूक्ष्म दृष्टि कहलाती है तथा बुद्धि की आँख से देखना ज्ञान दृष्टि का होना जनाता है। इस ज्ञान दृष्टि के अंतर्गत प्रज्ञा और प्रतिभा दोनों का मुक्त विलास देखने को मिलता है। इसी तरह सजनों बहुत दूर के या छिपे हुए पदार्थों को देखने या बातों को समझने की शक्ति जो कुछ विशिष्ट अवस्थाओं या कुछ विशिष्ट व्यक्तियों में मानी जाती है, वह दिव्य दृष्टि कहलाती है। इस संदर्भ में सजन अर्जुन का उदाहरण देते हुए सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है:-

ए ऐनक अर्जुन लाई हे, सोहणे दिव्य दृष्टि दिखाई हे।

इसे तत्त्वदर्शियों एवं संतों की विश्वात्मक दृष्टि भी कहते हैं जिसके अंतर्गत जड़-चेतन, सर्गुण-निर्गुण, व्यक्त-अव्यक्त, साकार-निराकार, द्वैत-अद्वैत, प्रकृति-पुरुष आदि समस्त द्वंद्वों का लय हो जाता है और विश्ववस्तु का अलौकिक यानि यथार्थ दर्शन होता है। तभी तो सजनों कहा गया है:-

जिस सजन ने दिव्य दृष्टि करी,
जिस सजन ने दिव्य दृष्टि करी।
ओ निगाह ओहदी महाराज नाल,
ओ निगाह ओहदी महाराज नाल ओ अड़ी।।

जित लिया उस सजन मृतलोक नूं,
बिन औखियाइयों बिन खेचलों।
निष्काम रस्ते ते सुरत उस सजन दी,
ओ सुरत उस दी उलट पड़ी,
ओ सुरत उस दी उलट पड़ी।।

स्पष्ट है सजनों जहाँ स्थूल दृष्टि भौतिक पदार्थों का दर्शन कराती है वहाँ दिव्य-दृष्टि गुप्त पदार्थों का यथार्थ जनाती है यानि दृष्टि का क्षेत्र अतिविशाल व सर्वव्यापक है। प्रधानतः दृष्टि का प्रारंभ नेत्रों की अनुभूति से होता है और उसका अंत विश्व में रहते हुए अपने मन, बुद्धि, अहंकार इन सबका लय कर स्वयं विश्वरूप हो जाने में होता है। तभी तो कहा गया है:-

दिव्य दृष्टि निगाह कर लौ सजनों,
फिर मेल खाओ रे असीं तुसीं
दिव्य दृष्टि दिखाओ, फिर प्रगट होवांगें असीं तुसीं।

उपरोक्त विवेचना से सजनों स्पष्टतः ज्ञात होता है कि नेत्रों

की दृष्टि यानि पंचज्ञानेन्द्रियों की अनुभूतियों द्वारा प्राप्त होने वाली दृष्टि स्थूल दृष्टि है। प्रत्यक्ष अनुभूतियों की नींव होने से इसका महत्त्व भी अनन्य साधारण है। लेकिन इन्द्रियों द्वारा जितना दिखता है, वही अंतिम सत्य है, ऐसा समझना अपूर्ण ज्ञान का लक्षण है अर्थात् जो इन्द्रियग्राह्य नहीं है, उसका अस्तित्व ही नहीं है इस तरह का दुराग्रह या हठवाद दृष्टि विकास में बाधक है। निःसंदेह सजनों आज का भौतिकवादी इंसान, पदार्थ दृष्टि यानि खाओ, पियो और मजे करो, अज्ञानता से परिपूर्ण इस भोगवादी दृष्टि का समर्थन करता है और इन्द्रियों विषयों में फँसकर मौज मस्ती में जीवन व्यतीत करना पसंद करता है परन्तु हमें तो यह समझना है कि मूढ़मत ही इस अनित्य मायावी धन-संपत्ति व सुख संसाधनों को आनन्द प्राप्ति का स्थाई साधन मानकर, इस अनमोल मानव जीवन को ऐश्वर्य व भोगों में गँवाने की भूल करता है और परिणामस्वरूप कुकर्मों और अधर्मों के फल भोगों के निमित्त बार-बार जन्मता व मरता हुआ इस संसार में भटकता रहता है।

इस सन्दर्भ में सजनों हमारी यात्रा स्थूल से सूक्ष्म की ओर, व्यष्टि से समष्टि की ओर, व्यापकत्व से अदृश्यता की ओर है। इसलिए तो सच्चेपातशाह जी ने बार-बार कहा कि :-

'अनडिठी चीज़ को देखें'
'महाराज जी की ओर ध्यान जोड़ें।
शरीरधारियों की ओर से दृष्टि हटानी है,
महाराज जी के साथ दृष्टि जोड़नी है।'

अर्थात् विभिन्न रूप, रंग, रेखा से अलंकृत जो देहिक प्राणी है उन की ओर से अपनी दृष्टि (ध्यान) हटाकर जो इस देह का

अधिष्ठात्रा परमात्मा है यानि देहेश्वर है उसके साथ जोड़नी है। जानते हो यदि ऐसा करने में सफ़ल हो गए तो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अनुसार क्या कह उठोगेः-

दृष्टि विच आये ने ओ राजयां दे राजे,
हिन ओ शहनशाहवां दे शाह।

इसी के साथ सच्चेपातशाह जी यह भी कहते हैं किः-

'जहाँ ख़्याल वहाँ दृष्टि'

यहाँ ख़्याल का अर्थ है अनुमान, अटकल, अंदाज, कल्पना और दृष्टि का अर्थ है आँख का वह व्यापार जिससे वस्तुओं के रूप, रंग आदि का ज्ञान होता है। इसे ध्यान, नज़र, निगाह, पहचान या परख भी कहते हैं। सजनों हमारा ख़्याल भूतकाल की स्मृतियों व वर्तमान में अर्जित अनुभवजन्य ज्ञान के आधार पर तरह-तरह की अटकलें यानि अनुमान लगा, कोरी कल्पनाएँ करता है। उसके पास न तो देखने की शक्ति होती है और न ही बोध करने की। इस ख़्याल को जब अंतर या बाह्य दृष्टि की सहायता प्राप्त होती है तो ही यह नित नई और अनूठी कल्पित वस्तुओं के स्वरूप को अन्तःकरण में उपस्थित कर उसका वस्तुतः दर्शन करता है और विवेकशक्ति द्वारा उसका यथार्थ ज्ञान प्राप्त कर गुणसहित यह परख लेता है कि अमुक वस्तु क्या है व यह ग्रहण करने योग्य है भी या नहीं। स्पष्ट है सजनों कि ख़्याल की प्रत्येक क्रियाविधि में दृष्टि (ध्यान) उसकी सहायक होती है।

यहाँ 'जहाँ ख़्याल वहाँ दृष्टि' यह कहने के पीछे अभिप्राय

यह है कि हमारा ख़्याल और दृष्टि (ध्यान) एक तरफ ही स्थिर हो। यह मन की चंचलता रहित अनन्य भाव से उस कार्य विशेष में रत यानि लय रहने की स्थिति है जिसके परिणामस्वरूप एकाग्रचित्तता हो जाती है। याद रखो एकाग्र दृष्टि से ही मन में एकात्मता का भाव पनपता है और इंसान सारे संसार के प्राणियों तथा पदार्थों में एक ही आत्मा व्याप्त है, यह सिद्धान्त या मत अपनाकर एकरूप हो जाता है यानि सजनता का प्रतीक बन जाता है। आगे हमने अपने ख़्याल व दृष्टि को किस ओर स्थिर करना है, इसकी स्पष्टता देते हुए सच्चेपातशाह जी कहते हैं:-

अन्दर ख़्याल अक्षर वल-दृष्टि लोचे महाराज जी नूं।

कहने का अभिप्राय यह है कि ख़्याल, मूलंमत्र जो आद् अक्षर है अफुरता से उसके अजपा जाप से हृदय में गुंजायमान सार्थक ध्वनि के साथ जुड़ा रहे और उस दिव्य धुर की वाणी के भाव या धर्म को ग्रहण करते हुए उसे अर्थसहित यथा जीवन व्यवहार के दौरान प्रयोग करने की कला सीखे। इस क्रिया के कुशलता से सम्पन्न होने पर स्वतः ही ख़्याल स्वच्छ हो जाएगा और अन्दर बाहर विचरते समय दृष्टि में आत्मा में व्याप्त परमात्मा के सर्वमहान दर्शन हेतु लोच पैदा होगी। इस तरह दृष्टि कंचन हो जाएगी। इस अवस्था में स्थिरता से बने रहने पर जब दृष्टि यानि ध्यान उस अगम अगोचर परमात्मा के नैनों के साथ जुड़ जाएगी तो सूरजों के सूरज के प्रकाश से प्रकाशित हो उठेगी और इस तरह शब्द में विद्यमान परमात्मा यानि शब्द ब्रह्म गोचर हो जाएगा और सर्व एकात्मा का सत्य समझ में आ जाएगा। सजनों इस युक्ति को अपनाने से आत्मा में व्याप्त परमात्मा की सार को

पाना सहज हो जाएगा। यह समभाव समदृष्टि के सबक अनुसार जो मन मन्दिर प्रकाश है जग अन्दर जनचर, बनचर, जड़-चेतन सबमें उसी प्रकाश को दृष्टिगत करने की बात है। अतः सजनों ए विध एक निगाह एक दृष्टि हो जावे व एक ख़्याल हो जावे। यह महाराज जी के साथ मेल खा महाराज हो जाने की बात है। इस महान उपलब्धि के दृष्टिगत ही ग्रन्थ कह रहा हैः-

जिह्वा स्वतन्त्र संकल्प स्वच्छ,
इक निगाह इक दृष्टि दिखाओ आहा,
इक निगाह इक दृष्टि दिखाओ वाह वाह।
कदम कदम ते विचार, विचार नाल होवे प्यार,
सजनों दिव्य दृष्टि दिखाओ आहा,
सजनों दिव्य दृष्टि दिखाओ वाह वाह।

स्पष्ट है सजनों कि इस युक्ति को अपनाने से सर्वव्याप्त निज चेतन सत्ता का बोध हो जाएगा और सच्चेपातशाह जी के वचनानुसारः-

इससे बाहर की दृष्टि जो फुरने की है वह भी भगवानमय हो जाएगी।

अतः

सजनों एक दृष्टि कर लेवें,
घर सतयुग हो जावे, सर्व भगवानमय दृष्टि हो जावे।
यह है विराट्।
दृष्टि विराट् रूप हो जावे।
इस विचार को पक्का कर लेवें।

याद रखो विराट् पर
जो खड़ा हो गया उसकी जीत जीत फतह फतह।

इस सन्दर्भ में जानो कि जब दृष्टि विराट् रूप हो जाती है तो सर्व एकात्मा का भाव यानि समभाव हमारी नज़रों में हो जाता है और इन्सान के लिए निरंतर परस्पर सजनता के व्यवहार में बने रहना कोई कठिन कार्य नहीं रहता। इस अवस्था को प्राप्त जीव के लिए आवश्यक होता है कि वह निष्कामता, निर्लिप्तता व निर्भयता से विराट् से सूक्ष्म की ओर अग्रसर हो जाए और सूक्ष्म अंदर प्रवेश कर विश्राम को पाए।

यहाँ सवाल सजनों यह उठता है कि विराट् क्या है?

ध्यान से सुनो सच्चेपातशाह जी कहते हैं कि विराट् है-- शब्द विचार। विचार के साथ सबमें भगवान निगाह आवें अर्थात् सर्वभगवानमय दृष्टि हो जावे। जनचर-बनचर, जड़-चेतन सबमें एक भगवान हो जावे। यह है सर्वव्यापी भगवान को मानना। इसी पर दृष्टि को खड़ा कर लेवें। अन्दर बाहर-एक दृष्टि-एक दर्शन हो जावे।

इस तरह सजनों एक दृष्टि कर लेवें, दृष्टि विराट् रूप हो जावे। दृष्टि उजली हो गई तो चमक पड़ोगे। इसी विचार को पक्का कर लेवें।

हम किस प्रकार यह पुरुषार्थ दिखाने में सफल हो सकते हैं? इस हेतु सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है:-

1. हमारा संकल्प महाराज जी को लोचे क्योंकि **'जब संकल्प लोचे प्रभु नूं ते दृष्टि प्रभु वल हो जावेगी। जेहड़े**

पासे संकल्प उस पासे दृष्टि ओ सजनों उस पासे दृष्टि, जो संकल्प प्रभु नूं लोचे दृष्टि किवें न जावे प्रभु वल ओ सजनों दृष्टि किवें न जावे प्रभु वल।'

2. जब कोई सजन चाहे वह परिवार के हों, बालक हों, वृद्ध हों, गरीब हों या अमीर हों, उसे जय सीता राम, नमस्ते या सत श्री अकाल बुलाते ही दृष्टि उस सजन के हृदय की तरफ देखे और उस में अपनी असलियत प्रकाश को देखे। बातचीत करते समय ख्याल उसी प्रकाश में ठहरा रहे। इस प्रकार बातचीत करने से मुस्कराहट आयेगी, बदन प्रफुल्लित होगा, हृदय खिड़ेगा और मुख चमकेगा।

3. इस तरह सबमें भगवान को देखना है। जो सजन आगे आवे उसको भगवान का रूप समझें और प्रसन्न होवें। सबमें ब्रह्म ही ब्रह्म नज़र आवे। यह समझें कि उसमें भी भगवान है। यह है अर्जुन वाला विराट्। इस पर निगाह को ठहरा लेवें। विराट् को भगवान समझें।

इस तरह सजनों मस्तक की ताकी (अक्ल, बुद्धि) खोलकर अपनी ज्ञान दृष्टि द्वारा ब्रह्म सत्ता के रूप में सर्वव्यापक आत्मतत्त्व को ग्रहण करो और उसे ही अपने सहित समग्र विश्व में देखो, समझो और तद्नुरूप हो जाओ। ऐसा इसलिए क्योंकि सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ कह रहा है कि **'जो प्रकाश या स्वरूप मैंने अपने मन मन्दिर में देखा है, जिस स्वरूप के साथ मेरा प्यार है, वही स्वरूप मेरा बाहर हर एक में है और वही मेरी असलियत है। यह सारा प्रतिबिम्ब मेरा ही है। इसी प्रतिबिम्ब को हर एक में देखना**

है, जनचर, बनचर में वही है, जड़-चेतन में उसी का प्रकाश है। यही असलियत मेरा ब्रह्म स्वरूप है 'वृत्ति है जे एहो कमाल वृत्ति है जे एहो विशाल' एहो कोई मुश्किल फड़दा विरला कोई धारण करदा। जेहड़ा देखो सजनों मन मन्दिर प्रकाश ओही ब्रह्म स्वरूप है अपना आप।'

इसलिए सजनों सच्चेपातशाह जी कहते हैं:-

अन्दर की वृत्ति दर्शन में और बाहर की वृत्ति एकरस राम रूप-कृष्ण रूप में सबको देखे। इन वचनों पर चलने से अन्दर की वृत्ति भी दमन हो जाएगी और बाहर की भी जीती जाएगी। यह समदृष्टि का छोटा सा रास्ता है।

ऐसा करने से जानते हो सब क्या कह उठेंगे:-

उस ब्रह्म आप नूं मान लिया और ब्रह्म दृष्टि नूं जान लिया।

इस युक्ति को पकड़ने से सजनों मन-कल्पित, कुलधर्म, जाति धर्म, मत-पंथ व अन्य समस्त द्वैत-द्वेष युक्त भावनाओं का लय हो जाएगा। संशय भ्रम मिट जाएंगे और सच्ची एकात्मता स्थापित हो जाएगी। अन्य शब्दों में सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अनुसार इस प्रकार **'एक निगाह एक दृष्टि होकर हमारी दिव्य दृष्टि हो जाएगी और एक आत्मा होकर परमात्मा से मेल खाकर ज्योति स्वरूप जो अपना आप है उसकी पहचान कर सकेंगे और रोशन हो जाएंगे।'**

सजनों हम सब भी ऐसा करने में सफल हो सकें, इस हेतु इसके विषय में आगे बातचीत आगामी कक्षा में करेंगे।

दिनाँक 30 जुलाई 2017 का सबक़

ज्ञानेन्द्रियों का समुचित कार्य-3

दर्शनेन्द्रिय (भाग-2)

साडा है सजन राम, राम है कुल जहान
अर्थात्
ईश्वर हमारा मित्र/प्रियतम सर्वव्यापक है, उसी को जानो, मानो व वैसे ही गुण अपनाओ।

शब्द है गुरु, शरीर नहीं है,
अर्थात्
ज्ञानी को नहीं ज्ञान को अपनाओ और निमित्त में नहीं नित्य में श्रद्धा बढ़ाओ।

इस पर सुदृढ़ता से डटे रह,
इस अटल सत्य पर स्थिर बने रहोः-
ओ३म् अमर है आत्मा, आत्मा में है परमात्मा

इन विचार बिन्दुओं के भावों को आत्मसात् करने हेतु सजनों हमें क्या करना है, अब ध्यान से सुनोः-

सजन दयालु श्री रामचन्द्र जी के मुख के शब्द
समभाव समदृष्टि, समभाव समदृष्टि।
सजन जेहड़ा इक निगाह इक दृष्टि देखे,
जगत जहान ओजी ओजी।।
कर लैंदा ओ मेरे साजना, कर लैंदा ओ मेरे साजना।
कर लैंदा आत्मिक ज्ञान ओजी ओजी।।
समभाव समदृष्टि विच जेहड़ा पक्का हो जावे इन्सान जी,

पक्का हो जावे इन्सान जी।
बिन औखियाईयों बिन खेचलों
जेहड़ी गुज़र गई जेहड़ी इस वक्त जेहड़ी आने वाली।
ओ मेरे साजना हो जांदा उस नूं ज्ञान ओजी ओजी।।

जेहड़ा समभाव-समदृष्टि विच्चों,
सजन फ़र्स्ट निकलदा महान जी।
ओ फ़र्स्ट निकलदा महान जी।
बिन सूरजों ओ रौशनी पकड़े,
ओ मेरे साजना पकड़दा है ओ महान ओजी ओजी।।

समभाव समदृष्टि वल्लों सजन,
जेहड़ा कर लैंदा पहचान जी ओ कर लैंदा पहचान जी।
पहुँच गया ओ परमधाम,
ओ मेरे साजना रौशन कर लैंदा नाम ओजी ओजी।।

समभाव समदृष्टि जैंदी बुद्धि लवे पहचान जी,
ओ बुद्धि लवे पहचान जी।
ओथे जन्म मरण रोग सोग कहाँ,
खुशी ग़मी ग़रीबी अमीरी कहाँ।।
अमीरों का है ओ अमीर ओ मेरे साजना।
बेअन्त बिन सूरजों जगे ओ महान ओजी ओजी।।

सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ से उद्धृत कीर्तन के द्वारा हमने जाना कि समभाव-समदृष्टि की युक्ति को आत्मसात् करके ही हम आत्मज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। इस संदर्भ में सजनों वेदों में भी कहा गया है कि 'जो विश्व (अधिष्ठान) को सामने रखकर विशेष रूप से देखता व जानता है और विश्वान्तर्गत तीनों भुवन यथा पृथिवी, अंतरिक्ष एवं द्युलोक को समग्र मानता है वह सर्वश्रेष्ठ समस्त द्वेषों से पार हो सदा ब्रह्म भाव पर

स्थिर बना रहता है।' सजनों यह इस सबक़ की महानता है और इन्द्रियों सहित मन को स्थूलता (बहिर्मुखता) से सूक्ष्मता (अंतर्मुखता) की ओर ले जाने का अभ्यास या युक्ति है। ऐसा इसलिए कह रहे हैं क्योंकि प्रकृतिस्थ तीनों गुणों के कारण गतिमान दृश्य जगत में जो उत्पत्ति-स्थिति-लय, जन्म-जीवन-मृत्यु, सुख-दुःख मिश्रित आदि भासते हैं, उनकी साम्यावस्था को समझने का यह प्रयास है। इसी का नाम विपश्यना यानि यथार्थ बोध है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध और सत्त्व, रज, तम इन आठों का लयस्थान होने से यहाँ मन स्तब्ध होता हुआ शून्याकार भासता है। सजनों हमारे वेदों में विपश्यना के साथ संपश्यना का भी निर्देश दिया गया है। संपश्यना का अर्थ है समदर्शन। समदर्शन-समदृष्टि यानि सबको एकसा समझने या देखने से होता है यानि केवल समदृष्टि ही समदर्शन अर्थात् सर्वव्यापक भगवान का बोध कराने का हेतु होती है और इसी द्वारा सब वैरी-दुश्मन सजन बन जाते हैं। इसीलिए सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में दासी इस संसार सागर से पार उतरने हेतु सजन श्री शहनशाह महाबीर जी के आगे गुहार करती है किः-

मैं दासी नूं समदृष्टि कर देओ,
भवसागर से पार उतारो महाबीर जी।

इस संदर्भ में सजनों जानो कि इस संसार में सब देखते हैं, पर सम्यक् रूपेण देखने वाले कई विरले ही होते हैं। अधिकांश वस्तु या पदार्थ को बाहर से देखते हुए उसके रूप को परखते हैं पर कुछ पारखी दिव्य दृष्टि का सबक प्राप्त कर तद्नुसार वस्तु/व्यक्ति विशेष के भीतर तक देख उसका

गुण परख लेते हैं। इस तरह उनके लिए किसी भी पदार्थ या वस्तु की यथार्थता को ग्रहण कर उसी अनुरूप व्यवहार करना सहज होता है। यही कारण है कि जो बाहर से देखते हैं, वे द्वि-द्वेष के भाव में उलझ उनमें भेद बुद्धि कर धोखा खा जाते हैं परन्तु जो भीतर से निरखते हैं, उन्हें सबके भीतर एक चेतन का ही परिदर्शन होता है क्योंकि उनकी दृष्टि में समभाव यानि समत्व होता है। इसी संदर्भ में सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया हैः-

एक ही मानो, एक ही जानो, सजनों एक ही करो प्रवान।
इक इक ही सारा जग दिस्से इक है ओ सर्व महान।।

इसे ही सजनों समदर्शिता कहते हैं। समदर्शी की दृष्टि ही समदृष्टि कहलाती है। ऐसे समदृष्ट सजन व्यक्ति अपने-पराए, अमीर-गरीब, तेरे-मेरे जैसे संकीर्ण भाव के स्तर से ऊपर समस्त विश्व को अपना ही कुटुम्ब मानते हुए उनके साथ समभाव से विचरते हैं और तदनुकूल सजनतापूर्ण व्यवहार करते हैं और सदा विचार, सत्-ज़बान, एक दृष्टि, एकता और एक अवस्था में सुदृढ़ बने रहते हैं। तभी तो कहा गया हैः-

समभाव देखो सजनों जनचर बनचर,
समभाव देखो जगत जहान।
ओथे जात-पात न गरीबी-अमीरी,
एहो दृष्टि सजनों राहवे महान।।

इस तरह सजनोंः

समभाव समदृष्टि दा सजनों दिल में अमल लियाओ,
दिल में अमल लिया के सजनों,
दिल में अमल कमाओ, दिल नाल दिल मिलाओ।

यहाँ समभाव-समदृष्टि का अर्थ स्पष्ट करते हुए सजनों सच्चेपातशाह जी कहते हैं:-

समभाव-समदृष्टि अर्थात् सबको एक नज़र से देखना है। सब में राम रूप देखना है और सबके साथ एक जैसा वर्ताव करना है। यह सबक़ पहले घर से शुरु करना है। सजनों इसी यत्न द्वारा ही हम घर सतयुग बनाने में सफल हो सकते हैं।

सजनों इस उच्च अवस्था को प्राप्त करने हेतु नेत्रों द्वारा ज्ञान धारणा से पूर्व सार्वजनिक हित का ध्यान रखते हुए किसी दृश्य, वस्तु या तत्त्व विशेष के अच्छे-बुरे गुणों की जाँच-पड़ताल कर उसकी परख करो। इस कार्य को सहजता से करने के लिए अपनी दृष्टि यानि अपनी देखने की वृत्ति व शक्ति को कंचन अर्थात् स्वस्थ, स्वच्छ और सुंदर रखो। इसके लिए याद रखो कि किसी प्रकार का भी दृष्टि रोग अर्थात् देखने का दूषित ढंग हमारे ध्यान और विचारशक्ति को कमज़ोर कर सकता है जिसका सीधा नकारात्मक प्रभाव केवल हमारे मानसिक व शारीरिक क्रियाकलापों पर ही नहीं पड़ेगा अपितु इस दूषणा के कारण मन में फुरनों का अंबार भी लग जाएगा और बुद्धि मनुराज में गोते खा, मिथ्या जगत के धोखे में फँस भ्रमित हो जाएगी। इस तरह हम परमार्थ के साथ-साथ भौतिक ज्ञान को भी ठीक से समझने के योग्य नहीं रहेंगे। यही नहीं नेत्रों के दुरुपयोग के कारण नेत्रों की

ज्योति भी कम हो जाएगी और उसे दृष्टि दोष या दृष्टि भ्रम जैसे रोग लग जाएंगे जो अज्ञान धारणा का कारण बनेगा। इसके विपरीत आत्मनियंत्रण द्वारा दृष्टि को कंचन रखने से नेत्रों की ज्योति इतनी बढ़ जाएगी कि फिर किसी भी लोक-परलोक के तत्त्व को देखना व उसके यथार्थ को बुद्धि द्वारा जानना कोई भी असाध्य कार्य नहीं रहेगा। यही इस इन्द्रिय का सदुपयोग है और इसी हेतु हमें इसके नित्य-प्रति प्रयोग पर संयम से काम लेना है। कुछ भी देखने, पढ़ने व अन्य कार्य करते समय अपनी दृष्टि को उस कृत्य में ऐसा केन्द्रित करना है कि वह क्रिया विशेष के समय इधर-उधर न जाए यानि जो भी करें विशुद्ध-भाव से एकाग्रचित्त होकर ही करें ताकि ख़्याल दृष्टिगत वस्तु की यथार्थता को ग्रहण करने में चूक न जाए। याद रखें कि इस इन्द्रिय के प्रयोग के समय नेत्रों के साथ बुद्धि का सहयोग बना रहने से कोई भ्रांति उत्पन्न नहीं होती क्योंकि किसी भी दृष्टिगोचर विषय या पदार्थ का अनुसंधान करने की योग्यता दृष्टि में नहीं वरन् बुद्धि में होती है।

इस आधार पर सजनों बुद्धि ही अपने विवेकबल से ख़्याल को इन्द्रिय विषयों से विलग रखती है और गलत-सही, भले-बुरे व सत्य-असत्य का ज्ञान करा विकृत होने से बचाती है। अतः इस अभ्यास द्वारा अगर हम किसी भी चीज़ के अवलोकन के समय दृष्टि और बुद्धि के सहयोग को निरंतर साधे रखते हैं तो हमारे लिए आत्मा और परमात्मा की असलियत जानना कोई कठिन कार्य नहीं रह जाता अर्थात् हमारे लिए निर्बाध चेतन अवस्था में बने रह, जीवन लक्ष्य की प्राप्ति करना सहज हो जाता है।

सारतः सजनों उपरोक्त बातचीत से स्पष्ट होता है कि अध्ययन और मनन से दृष्टि निरंतर विकसित होती रहती है। दृष्टि के विकास के साथ तत्त्वज्ञान/आत्मज्ञान प्राप्ति की स्पष्टता भी जुड़ी हुई है। अन्य शब्दों में मनुष्य जैसे-जैसे शास्त्र को पढ़ते हुए उसका विचार व मनन करता है, वैसे-वैसे उसको सूक्ष्म से सूक्ष्म वस्तु की वास्तविकता का साक्षात्कार होता जाता है। इस तरह दृष्टि भेद से व्याख्याएँ बदल जाती हैं, वस्तु का स्वरूप भिन्न प्रतीत होता है। जीवन, जगत, कला आदि के प्रति परमात्मा की दृष्टि जैसी होती है उसकी वास्तविकता, वैसी ही उद्‌भासित होने लगती है। फिर इंसान सम्पूर्ण चराचर सृष्टि को आत्मभाव यानि मित्रवत् दृष्टि से देखता हुआ आत्मवत् व्यवहार करता है और सृष्टि भी उसे इसी मित्रवत् दृष्टि से देखती हुई वैसा ही व्यवहार करती है। इस तरह सजन दृष्टि द्वारा सब उसके व वह सबका सजन बन जाता है। अतः सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अनुसार :-

सजनों समभाव समदृष्टि नूं धारण करो,
वैरी दुश्मन शत्रु सारे इक सजन दृष्टि फड़ो।

अंत में सभी सजनों से प्रार्थना है कि इस ज्ञानेन्द्रिय का उपरोक्त युक्ति अनुसार प्रयोग करने में सक्षम बन, बिन औखियाइयों बिन तकलीफों, ब्रह्म, जीव और जगत की रमज़ को जानो और इस तरह जगत में विचरते हुए भी उससे आजाद हो अपने यथार्थ स्वरूप में सदा के लिए स्थित हो जाओ।

दिनाँक 6 अगस्त 2017 का सबक़

ज्ञानेन्द्रियों का समुचित कार्य-4

(श्रवणेन्द्रिय)

साडा है सजन राम, राम है कुल जहान

अर्थात्

ईश्वर हमारा मित्र/प्रियतम सर्वव्यापक है, उसी को जानो, मानो व वैसे ही गुण अपनाओ।

शब्द है गुरु, शरीर नहीं है,

अर्थात्

ज्ञानी को नहीं ज्ञान को अपनाओ और निमित्त में नहीं नित्य में श्रद्धा बढ़ाओ।

इस पर सुदृढ़ता से डटे रह, इस अटल सत्य पर स्थिर बने रहोः-

ओ३म् अमर है आत्मा, आत्मा में है परमात्मा

विगत सप्ताहों में सजनों, ज्ञानेन्द्रियों के समुचित कार्य के शीर्षक के अंतर्गत हमने सर्वाधिक क्रियाशील ज्ञानेन्द्रिय दृष्टि यानि आँखों के विषय में जाना। इस परिप्रेक्ष्य में सजनों मानव जीवन की विडम्बना देखो कि व्यक्ति जिन दो आँखों से सारा संसार देखता है, उन आँखों से स्वयं को नहीं देख पाता। वह इसलिए क्योंकि स्वयं को देखने के लिए अन्तर्दृष्टि चाहिए और अन्तर्दृष्टि पाने में सबसे बड़ी बाधा व्यक्ति का निजी अहंकार है। इसी निजी अहंकार की पूर्ति में

रत नादान व्यक्ति, सांसारिक झगड़ों-झमेलों और मोह माया जनित ऐन्द्रिय वासनाओं के दुष्चक्रव्यूह में फँस, अपनी कमियों/त्रुटियों को देखने में असमर्थ हो जाता है और इसी असमर्थता के कारण अक्सर दूसरों की बुराईयाँ देखते हुए दोषयुक्त आचार-व्यवहार अपना बैठता है। इसी वजह से अपने ही भीतर स्थित परम सत्ता से उसका नाता टूट जाता है और वह अपने यथार्थ यानि आत्मतत्व की पहचान करने में असक्षम हो जाता है। फिर जब उसे अपने ज्ञानमय स्वरूप का सत्यबोध नहीं रहता तो दृष्टिगत बाह्य संसार से प्रभावित हो मिथ्या ज्ञान ग्रहण कर मिथ्या आचार-व्यवहार अपना बैठता है और मिथ्या चीजों को ही प्राप्त करने का यत्न करता है। यह अपने आप में यथार्थ धर्म से गिर अधर्म के रास्ते पर अग्रसर होने की अहितकारी बात होती है। इसी परिस्थिति के दृष्टिगत ही सजनों सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है:-

देखो कलुकाल दी एहो है निशानी,
देखो कलुकाल दी एहो है निशानी।
कलुकाल विच अन्ने बहुतेरे,
कोई विरले हैन सुजाखे।।

अन्दर दीवा जगदा होवे,
अन्नियाँ नूं कुझ न जापे।
कलुकाल बाहर मन्दिर जावन बहुतेरे,
कोई विरला अन्दर देखे।।

वस्तु होवे घर विच प्यारे,
जीव राहवे विच भुलेखे।
कलुकाल नाम भुल गए बहुतेरे,
कोई विरले अन्दर ध्यान लगावन।।

रोशनी अन्दर आप दी,
बाहर जंगलां नूं ढूँढन जावन।
कलुकाल विच सुत्ते बहुतेरे,
कोई विरला अन्दर जागे।।

दर्शन पावन रघुनाथ जी दा,
कई डेधे रहन अभागे।
कलुकाल विरक्त त्यागी बहुतेरे,
कई विरले अन्दर त्यागी होवन।।

बिन सूरजों प्रकाश मन मन्दिर,
ओ जन्म अपना खोवन।
महाबीर पूरन मिल पवन,
निष्काम रस्ता ओ दिखावन।।

दर्शन पावन रघुनाथ जी दा,
जन्म सफल बनावन।
देखो महाबीर जी दी एहो है मेहरबानी,
देखो महाबीर जी दी एहो है मेहरबानी।
मेहरबानी मेहरबानी देखो महाबीर जी
दी एहो है मेहरबानी।

स्पष्ट है सजनों बाहरी भौतिक दुनियां की चकाचौंध और बहुविध रूप-रंगों के आकर्षणों में फँसा अभिमानी व्यक्ति

आत्मसाक्षात्कार नहीं कर सकता। फलस्वरूप उसके ख़्याल में नकारात्मकता का भाव घर कर जाता है। ऐसा होने पर वह नकारात्मक सोचता है, नकारात्मक बोलता है और फिर नकारात्मक ही करता है जिसके प्रभाव से उस इंसान की वृत्ति, स्मृति व बुद्धि का विकृत होना स्वाभाविक ही होता है। इंसान के हृदय में सकारात्मकता का वातावरण सदा एकरस बना रहे उसके लिए आवश्यकता होती है स्व-अनुशीलन द्वारा गहराई से अपनी प्रवृत्ति, स्वभाव और प्रकृति का अध्ययन करने की यानि आत्मविश्लेषण द्वारा अपने ही भीतर छिपी हुई दुष्प्रवृत्तियों यथा काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, द्वेष, घृणा, हिंसा, असत्य, प्रतिशोध सहित निजी अहं का विसर्जन करने की। ऐसा होने पर ही वह शरीर, इन्द्रियाँ आदि अनात्म वस्तुओं के प्रति जो 'मैं' और 'मेरा' का भाव है उसे त्याग सकता है और अतिन्द्रिय क्षमता को विकसित कर सृष्टि के दिव्य रहस्यों को उजागर कर सकता है। सजनों इसी संदर्भ में जिस प्रकार गत सप्ताह हमने दर्शनेन्द्रिय के विषय मे जाना आओ अब आज श्रवणेन्द्रिय के समुचित कार्य के विषय में जानते हैं।

श्रवणेन्द्रिय/कान

सजनों शब्द जो आकाश का गुण है उसका ज्ञान कराने वाली इन्द्रिय श्रवणेन्द्रिय कहलाती है यानि यह श्रवण-क्रिया विषयक ज्ञानेन्द्रिय है जिसका कार्य है सुनना। यह इन्द्रिय वायुमंडल में उपस्थित ध्वनि तरंगों की संवेदनाओं को मस्तिष्क में भेजती है। फलतः शब्द व कही हुई बात का ज्ञान होता है यानि शब्द ज्ञान का प्रवाह अंदर बहता है।

सजनों हमारे शरीर के कारण और कार्य के रूप में नाना प्रकार से आकाश की स्थिति हुई है और अनेक प्रकार के शब्दों के रूप में यह हमारे अन्दर वर्तमान है। कोई भी शरीर का अंग-प्रत्यंग या नाड़ी-नसें अथवा गतिवाहक, ज्ञानवाहक सूत्र ऐसा नहीं है जिसमें शब्द उत्पन्न होकर न चलता हो। अन्य शब्दों में यह मानव शरीर शब्दों से भरा हुआ है और ये समस्त शब्द कर्णेन्द्रिय के द्वारा ही सुनने में आते हैं क्योंकि शब्द कर्णेन्द्रिय का विषय हैं। यह कर्णेन्द्रिय, मन, बुद्धि और आत्मा के सहयोग से सर्व प्रकार के स्थूल और सूक्ष्म शब्दों को सुनने में समर्थ होती है। अन्य शब्दों में जब से प्रकृति में शब्द की उत्पत्ति हुई है तब से लेकर पृथ्वी की रचना तक उत्पन्न सर्व प्रकार के स्थूल, सूक्ष्म, सूक्ष्मतर शब्दों को ग्रहण कर, उनको सुनने व उनका ज्ञान कराने की शक्ति इस इन्द्रिय में है।

इस संदर्भ में स्थूल-चर, (चलने फिरने वाले) खेचर (आसमान में चलने व उड़ने वाले), जलचर (जल में रहने वाले जन्तु) आदि सारे प्राणियों के व्यवहार इस कर्णेन्द्रिय के विषय शब्द के द्वारा ही होते हैं। जैसा कि ज्ञात भी है कि हमारी शिक्षा के माध्यम भी यही शब्द हैं। सर्वप्राणियों के ज्ञान व अभिव्यक्ति के समस्त व्यवहार का हेतु भी शब्द हैं। अनेक भाषाओं का विकास, ग्रन्थों का निर्माण इस शब्द के द्वारा ही हो रहा है। इस तरह जीवन में शब्द का बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है। यदि यह न हो तो हमारे दैनिक व्यवहार चलने कठिन हो जाएँ। अन्य शब्दों में यदि यह कर्णन्द्रिय न हो तो कोई भी शब्द इस इन्द्रिय का विषय नहीं बन सकता और प्राणीमात्र के लिए ज्ञान प्राप्ति कठिन हो जाएगी।

सजनों इस ब्रह्माण्ड में शब्दों का कोई अन्त नहीं है। इस जगत में भिन्न-भिन्न पदार्थों से भिन्न-भिन्न शब्दों की उत्पत्ति होती रहती है। इस प्रकार हम कानों से सब तरह की ध्वनियाँ और बातें सुनते रहते हैं, चाहे हम सुनना चाहें या न सुनना चाहें क्योंकि कानों को आँखों की भांति बंद करके निष्क्रिय नहीं किया जा सकता। सुने हुए बहुत से शब्दों में से कुछ अर्थवान होते हैं और बहुत से निरर्थक होते हैं। जो शब्द हमारे कर्ण में पहुँचकर किसी अर्थ का संकेत करते हैं वे हमारी प्रवृत्ति अर्थात् मन के किसी ओर होने वाले झुकाव, या रुझान का हेतु होते हैं। उन्हीं के द्वारा हम भोगों और कर्मों में प्रवृत्त होते हैं।

संसार के अनेक कार्यों की सिद्धि के अतिरिक्त ब्रह्मज्ञान कराने में भी यह कर्णेन्द्रिय सब इन्द्रियों से मुख्य है यानि आत्मप्रत्यक्ष द्वारा तत्त्वज्ञान प्राप्ति में इस इन्द्रिय का बहुत उपयोग है क्योंकि इसमें उत्पन्न हुआ सूक्ष्म शब्द ही ब्रह्म का बोध करा सकता है। इस संदर्भ में जानो कि आदि या प्रथम शब्द इस कर्णेन्द्रिय में प्रतिक्षण उत्पन्न होता रहता है। इस तरह ब्रह्म, प्रकृति तथा शब्द, ये तीनों ही सूक्ष्म रूप से इसमें वर्तमान रहते हैं। निष्काम साधक ध्यान की गहनतम अवस्था में ख्याल ध्यान वल व ध्यान प्रकाश वल रखते हुए यानि मन, बुद्धि और आत्मा एक अवस्था में साधे रख उस शब्द को दिव्य श्रोत द्वारा सुन सकता है और ब्रह्म का बोध कर ब्रह्मज्ञान प्राप्त कर सकता है और भौतिक व आध्यात्मिक तौर पर ज्ञानवान बन सकता है।

इसके विपरीत जब कर्णेन्द्रिय में कठोर शब्दों से आघात पैदा होता है यानि कटु वचन इस कर्णेन्द्रिय में आकर प्रविष्ट होते हैं तो वह बुरा प्रभाव पैदाकर शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि को कुपित कर विभिन्न क्लेशों का हेतु बन जाते हैं। तब धैर्य और शांति जाते रहते हैं। शरीर क्षुभित हो जाता है और इंसान संतप्त (दुखी, पीड़ित) होकर विपरीत कर्म में प्रवृत्त हो जाता है। इस प्रकार कठोर शब्दों का आघात उसके लिए अनेक दुःखों का कारण बनता है।

इसी तरह निन्दा-चुगली करने वालों के राग-द्वेष जनक शब्द कान में पड़ते ही मन उत्तेजित होकर आवेश में आ जाता है और मानव परेशान हो जाता है। मर्मभेदी शब्दों का भी प्रभाव इस इन्द्रिय पर पड़ता है और जीवन पर्यन्त वे चुभते रहते हैं। उनकी याद बदला लेने की भावना पैदा करती है जो अनर्थ का कारण बनती है। मिथ्या भाषण को सुनकर भी मन में क्रोध उत्पन्न होता है जो विषाद का कारण बन जाता है। ऐसे शब्दों के प्रभाव से मनुष्य लड़ने, मरने और मारने को तैयार हो जाता है।

स्पष्ट है सजनों जब हम कुछ अच्छा सुनते हैं तो उससे मानसिक तृप्ति प्राप्त होती है, जबकि कान को कर्कश या अप्रिय लगने वाले शब्द सुनने से मानसिक संताप उत्पन्न होता है। यही नहीं कटु, ग़लत, असत्य और उत्तेजक घरेलू बातें सुनने पर वे बातें हमारे अन्तर्मन में प्रवेश कर अन्दर ठहर जाती हैं और स्मृति पटल पर अंकित हो जाती हैं। परिणामस्वरूप हमारे कानों में वे बार-बार गूँजती रहती हैं जिनसे हमारा चिन्तन दूषित हो जाता है। चिन्तन दूषित होने

से विचार भी दूषित हो जाता है और संकल्प कुसंगी हो जाता है। यही नहीं वे सुनी हुई बातें अवसर आने पर जब निंदा-चुगली के रूप में, कटु वचनों व अपशब्दों के रूप में हमारे मुख से निकलती हैं तो वे हमारे आचरण, व्यवहार व स्वभाव को भी दूषित कर देती हैं। शब्दों का ये दुष्प्रभाव यहीं तक ही सीमित नहीं रहता अपितु मन के साथ-साथ धीरे-धीरे तन पर भी पड़ने लगता है। परिणामतः अनिद्रा, बेचैनी, तनाव, अवसाद घेर लेता है। तन-मन के पश्चात् यह आध्यात्मिक रूप से भी मानव को रोगग्रस्त कर देता है। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि बाहर का शोर अन्दर इतना बढ़ जाता है कि भीतरी आत्मा की आवाज, सार्थक हितकारी ध्वनि सुननी ही बंद हो जाती है। याद रखो इस आन्तरिक ध्वनि को न सुनने के कारण ही मानव इस नश्वर जगत के माया जाल में फँस दुराचार, भ्रष्टाचार व व्यभिचार करता हुआ अन्त काल का ग्रास बन जाता है। इसी कारण ऐसे मनुष्य का सुधार न तो इस लोक में हो पाता है न ही परलोक में।

शब्दों के इन प्रभावों को समझते हुए सजनों हमें वही सुनना चाहिए जो सुनने योग्य हो यानि हमें ऐसी बातों व विचारों के श्रवण से हमेशा बचना है जिनको सुनने से मन अधीर व चंचल हो और अंतःकरण मलिन हो जाए। इस संदर्भ में सच्चेपातशाह जी कहते हैं किः- **'किसी की बात न सुनो न सुनाओ। अगर सुनो भी तो एक कान से सुन कर दूसरे कान से निकाल दो। उसे ठहरने की जगह न दो वरना वह बात जो हृदय में धारण की होगी, वह चुगली बनकर एक दिन बाहर निकलेगी।'** सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ इसी बात

को अन्य शब्दों में इस प्रकार कह रहा है:-

जगह न देवो उस बात नूं जेहड़ा बात सुनावे,
हृदय विच फिर ओ बात न कल्पावे,
सहेलियों में बैठ के न ओ चुगली लावे, स्कूल खुलया जे।।
सजनों इक बात इक कन सुणे, दूजे कन्नों निकले।
समभाव समदृष्टि दा एहो वर्ताव दिखा के,
स्कूल खुलया जे।।

इसी तरह वे कहते हैं कि 'गृहस्थ आश्रम में रहते हुए घर वाले सजन भी यदि कोई ऐसी-वैसी बात कहते हैं तो उसे सुन कर हमें उत्तेजित नहीं होना अपितु अपने आपको तोलना है कि कोई अन्दर सट तो नहीं लगी। अपने आप को देखना है कि हमारा अंग-अंग सबूत है। फिर कहने वाले के प्रति कोई दुर्भाव न लाते हुए हृदय में महाराज जी से प्रार्थना करनी है कि महाराज जी एन्हां नूं भी सुमति बख्शो ताकि ए सजन वी मन्दी खरीद न करन।'

याद रखो सजनों व्यर्थ बातों का श्रवण हमारे मन की शांति व चित्त की एकाग्रता को भंग कर देता है, अतः सच्चेपातशाह जी के वचनानुसार हमें बुरी व संसारी बातों के कनरस से बचना है यानि अश्लील, असंगत और अप्रासंगिक यानि निन्दासूचक बातें नहीं सुननी। कान के कच्चे नहीं बनना यानि किसी के बहकावे या पंजे में आकर भ्रमजाल में फँस पथभ्रष्ट नहीं होना। इसके स्थान पर सत्-शास्त्र का विचार कर इस कर्णेन्द्रिय से केवल अच्छी व सार्थक यानि सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में विदित विचारयुक्त उपयोगी और हितकारी बातें ही सुननी हैं, ताकि हम उन्नति पथ पर

अग्रसर हो भवपाश से मुक्त होने में सफल हो सकें। इस संदर्भ में सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ कह रहा हैः-

अलफ़ के मिलने से पहले इन्सान कठिन होता है यानि उसको संसारी कनरस होता है। अलफ़ के मिलने के बाद वह नर्म हो जाता है यानि उसको शास्त्र का कनरस पड़ जाता है।

अर्थात्

पहले इन्सानों को संसारी फुरना और संसारी बातों का कन रस होता है। जब इन्सान विचार करता है तो सम्भल जाता है और फिर शास्त्र को पढ़ता है, उसका ध्यान शास्त्र के कन रस में पड़ जाता है। संसारी कनरस छोड़ कर फिर शास्त्र का कनरस पड़ जाता है। लेकिन सजन इससे भी कामयाब नहीं हो सकता।

सजनों ब्रह्म शब्द का पूर्णतः ज्ञान प्राप्त करने में कामयाब होने के लिए हमें अपने कानों द्वारा सदैव जो प्रणव ध्वनि यानि अनहद नाद हमारे अन्दर हर पल गुँजायमान है उसको निरंतर सुनने का प्रयास करना है। यही इस श्रवणेन्द्रिय का सबसे बड़ा सदुपयोग है। इसी संदर्भ में सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अध्याय में कहा गया हैः-

'मेरी जोत आदि से चमक रही है लेकिन मेरी जोत को कोई विरला ही ऐसा जीव पहचानेगा जो निर्वाण पदवी में जाएगा। उस सार को प्राप्त करने से अन्दर से ही ओ३म् ओ३म् की आवाज़ें आती हैं और बिना सूरज के हर वस्तु में चमकने लगता है।'

इसी बात को अन्य शब्दों में सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में इस प्रकार कहा गया है:-

ओ३म् ओ३म् दियां आवाज़ां आवन,
जोत दा विच प्रकाश, रामा जोत दा विच प्रकाश
साज ताज ही समझो सजनों,
उसे दा प्रताप, सियापति रामचन्द्र जी की जय

इस संदर्भ में सजनों अगर हम अपने आप को इस अनाहतनाद को सुनने में अक्षम पाते हैं तो मानो कि संकल्प कुसंगी के कारण, हमारी इस इन्द्रिय को अच्छी यानि गुणकारी बातें सुनने के स्थान पर अनावश्यक वार्तालाप व बुरी या अश्लील बातें सुनने का रस पड़ गया है जो हमारे लिए कभी भी लाभकारी साबित नहीं हो सकता। सजनों जानो कि इसी कनरस में फँसने के कारण ही, आज के नकारात्मक वातावरण में व्यक्ति अपने जीवन का अनमोल समय, परस्पर निंदा चुगली सुनने व करने में बरबाद कर डालता है। इसी की वजह से ही आज व्यक्तिगत स्तर पर हर व्यक्ति के मन में, पारिवारिक सम्बन्धों में, अशांति और अनेकता के भाव का बोलबाला है जो अपने आप में मानव जाति के नैतिक पतन का द्योतक है। व्यक्ति की इसी पतनोन्मुख अवस्था को देखते हुए ही सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है:-

घरेलू बातों की कचहरी अब बंद हो गई है। घरेलू बातें अब नहीं सुनी जाएँगी। अब कचहरी लगेगी सम, संतोष, धैर्य, सच्चाई, धर्म की।

सजनों इस कथन के अनुसार संतोष-धैर्य अपना कर, सत्य-धर्म के निष्काम रास्ते पर अग्रसर होने के लिए हमें इस कर्णेन्द्रिय के प्रयोग के समय संयम से कार्य लेने की आवश्यकता है ताकि हमारा मन-मस्तिष्क सदा निर्मलता के वातावरण से परिपूर्ण रहे। सजनों हमें यही सक्षमता प्रदान करने हेतु ही सच्चेपातशाह जी ने कहा कि **'हमारा ख़्याल शब्द के साथ जुड़ा रहे'**। साथ ही यह भी कहा किः-

'शब्द है हमारी पढ़ाई ग्रन्थ है हमारी सफ़ाई, सजनों जो ग्रन्थ है उससे है हमारी अन्दर की सफ़ाई। इसके सुनने से मंदी चीज़ें छोड़नी हैं और अच्छी चीज़ें धारण करनी हैं। इस तरह सच्चाई को धारण करो और सच का वर्त-वर्ताव करो क्योंकि सतयुग आ रहा है।'

इस संदर्भ में सजनों जान लो कि यह इंसानियत में ढल परमपद प्राप्त करने का मूलमन्त्र है।

याद रहे अनाहत नाद के श्रवण द्वारा ही हम ईश्वरीय वाणी यानि शून्य से आए हुए ईश्वरीय शब्दों/निर्देशों को सुन, समझ कर अमल में ला सकते हैं और हमारी वृत्ति-स्मृति-बुद्धि व भाव-स्वभाव रूपी ताना-बाना निर्मलता को धारण कर सकता है। इसी तरह हम उच्च बुद्धि, उच्च ख़्याल नाम कहा सकते हैं। इस सक्षमता को ग्रहण करने हेतु सजनों कुछ समय भीतरी मौन जरूर साधो और शब्द ध्वनि सुनते-सुनते निःशब्द और शान्त स्थिति में स्थित हो जाओ। इसीलिए तो सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ कह रहा हैः-

'वृत्ति मौन की होनी चाहिए, मौन का नतीजा है विश्राम, खलबली को हटाते हुए सब सजन विश्राम पावें'।

सजनों इस वृत्ति को धारण करने से आपका मन शांत रहेगा यानि कोई संकल्प विकल्प नहीं उठेगा। इस तरह न केवल मन और शरीर, चिन्ता, तनाव, शोक आदि से मुक्त रहेगा अपितु परमेश्वर के शब्द को ग्रहण भी कर सकोगे जिसके फलस्वरूप असीम शान्ति और आनन्द का अनुभव होगा। कानों का यह उपयोग हमें शारीरिक, मानसिक व आत्मिक रूप से सशक्त व बलवान बनाने का सर्वोत्तम तरीका है। अतः इस उपलब्धि के दृष्टिगत सजनों बताई युक्ति अनुसार आत्मज्ञान प्राप्त कर उसे अमल में लाते हुए निष्कामी व ब्रह्मज्ञानी हो जाओ। जानते हो यदि ऐसा कर लिया तो श्री साजन जी प्रसन्नता से क्या कह उठेंगे, ध्यान से सुनोः-

कैसा सुन्दर शब्द आया सजन श्री दाते ने,
दाते ने फ़रमाया सजन श्री दाते ने।
मुबारिक हो मुबारिक हो, मुबारिक हो मुबारिक हो।
कैसा है ओ सुहाया मुबारिक हो मुबारिक हो।
सजन श्री शहनशाह कोलों हमने सब कुछ है पाया
कैसा है ओ हर्षाया मुबारिक हो मुबारिक हो।
मुबारिक हो मुबारिक हो, मुबारिक हो मुबारिक हो।
कैसा सुन्दर शब्द आया, ओही लिखत विच आया
शहनशाह दाते ने फ़रमाया।
मुबारिक हो मुबारिक हो, मुबारिक हो मुबारिक हो।
कैसा सुन्दर शब्द है आया, हमें सौखा तरीका बतलाया।
इको रूप है दिखाया, मुबारिक हो मुबारिक हो।
मुबारिक हो मुबारिक हो, मुबारिक हो मुबारिक हो।
कैसा सुन्दर शब्द आया, सजन श्री दाते ने,
दाते ने फ़रमाया सजन श्री दाते ने।

तो आओ अब सब मिल कर बोलें:-

शब्द

एक हूँ एक हाँ, एक नज़रों में एक ही एक हर अन्दर सुहा रहा। जनचर बनचर जड़ चेतन ओ हर्षा रहा इको रूप तुम्हारा, इको रूप तुम्हारा। शरीर दी बनावट अलग अलग कोई पतला कोई भारा कोई गोरा कोई काला।

दिनाँक 13 अगस्त 2017 का सबक़

ज्ञानेन्द्रियों का समुचित कार्य-5

(रसनेन्द्रिय)

साडा है सजन राम, राम है कुल जहान

अर्थात्

ईश्वर हमारा मित्र/प्रियतम सर्वव्यापक है, उसी को जानो, मानो व वैसे ही गुण अपनाओ।

शब्द है गुरु, शरीर नहीं है,

अर्थात्

ज्ञानी को नहीं ज्ञान को अपनाओ और निमित्त में नहीं नित्य में श्रद्धा बढ़ाओ।

इस पर सुदृढ़ता से डटे रह,
इस अटल सत्य पर स्थिर बने रहोः-

ओ३म् अमर है आत्मा, आत्मा में है परमात्मा

सजनों इस सत्य को अपने भाव में उतार लो ताकि आपका जीवन जीने का नज़रिया इसी भाव अनुसार सशक्त हो जाए और यही भाव आपकी भावना द्वारा स्वभाव में इस प्रकार उतर जाए कि समभाव आपके हृदय में स्थित हो जाए। इस तरह आप सजन-भाव का वर्त-वर्ताव करने में सक्षम हो, प्रसन्नता से जीवनयापन करने के योग्य बन जाओ।

अभी तक सजनों हमने जाना कि सांसारिक विषय वासनाओं रूपी सुख भोगों की अभिलाषा करने वाले कामनायुक्त मनुष्य को अपने जीवन में कभी तृप्ति प्राप्त नहीं होती यानि इन्द्रिय

सुख भोग परायण वृत्तियों से मनुष्य को कभी शांति नहीं मिलती। ऐसे अधीर सीमा विहीन भोग परायण वृत्तियों में उलझे हुए मनुष्य का पथभ्रष्ट होना सुनिश्चित होता है। यह विचार के स्थान पर अविचारयुक्त अज्ञानमय रास्ते पर अग्रसर हो बुरी प्रवृत्ति में ढल पापकर्म करने में प्रवृत्त होने की बात होती है। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि आमतौर पर मनुष्य की मनोवृत्ति यही रहती है कि उसे जिस बात अथवा विषय की तृष्णा होती है, उसे प्राप्त करने के लिए मनुष्य सद्-असद् आदि का मूलभूत विचार छोड़ देता है और अपनी समस्त शक्ति का दुरुपयोग करते हुए झूठ के बलबूते पर उसे प्राप्त करने का बदनीयती से प्रयत्न करता है। ऐसे लोभी व्यक्ति की किसी वस्तु को पाने की आकुलता के दुष्परिणामों को ध्यान में रखते हुए ही सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ मे कहा गया है:-

तृष्णा भैणां नूं पई सतावे,
दिनें आराम रातीं नींद न आवे।
खावन पीवन विच तृष्णा सतावे,
घर-घर दे विच झगड़ा पवावे।।

स्पष्ट है सजनों जहाँ तृष्णा है वहाँ अन्तर्द्वन्द्व है, झगड़ा है, मानसिक परेशानी है। यही नहीं ऐसा तृष्णालु मनुष्य जब वृद्धावस्था को प्राप्त होता है यानि जब हाड-माँस सारा सूख जाता है तो भी तृष्णा उसे सताती रहती है और उसका पूरा जीवन छटपटाहट में ही व्यतीत होता है। इस प्रकार वह कभी भी यानि जीवन की किसी भी परिस्थिति में खुश नहीं रह पाता।

हमारे साथ ऐसा न हो यानि हम तृष्णा का क्षय कर सदा शांतमय जीवन जीने में सक्षम हो पाएँ, इस हेतु सजनों हमें आत्मसंयम के महत्त्व को ध्यानपूर्वक समझना है। आत्मसंयम के संदर्भ में सर्वप्रथम सजनों हमें मन और बुद्धि सहित, इन्द्रियों को विभिन्न विषय भोगों से बलात् हटाकर श्रेय मार्ग की ओर लगाना है। ऐसा होने पर ही हमें सम्पूर्ण सांसारिक विषय भोग तुच्छ प्रतीत होने लगेंगे और हम वैराग्य के बल पर सांसारिक प्रपंचों से निकलकर आत्म उत्थान तथा प्रभु भक्ति में मन को लगाने में कामयाब हो सकेंगे। अन्य शब्दों में तब ही हम शब्द ब्रह्म विचार पकड़ तद्नुकूल मानवीय मर्यादाओं अनुसार जीवन जीने में कामयाब हो सकेंगे। याद रखो सजनों वैराग्य का फल सत्यबोध है। सत्यबोध का फल उपरति यानि चित्तवृत्तियों की विश्रांति या विषय भोग से विरक्ति है। उपरति का फल आत्मानन्द के अनुभव से उत्पन्न होने वाली शांति है। इसलिए तो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है:-

नहीं चाहीदा है फल फुल मेवा,
इक चाहीदी ए चरणां दी सेवा।

इस शांति को प्राप्त करने हेतु ही सजनों हम ज्ञानेन्द्रियों की समुचित कार्य प्रणाली को समझ रहे हैं। इस विषय में अभी तक हम दर्शनेन्द्रिय, कर्णेन्द्रिय के बारे में जान चुके हैं, आओ आज रसनेन्द्रिय जिह्वा के विषय में जानकारी प्राप्त करते हैं जिसका विषय है आहार। जानो शरीर ही आहार है और आहार ही शरीर है। बिना आहार के यह किसी वक्त भी समाप्त हो सकता है। बस इतनी ही इसकी हस्ती है। तात्पर्य

यह है कि मानव की अन्दरुनी व बैहरूनी वृत्तियों में पनपा नकारात्मक वातावरण जब चाहे उसकी निरोगता को हर अन्दर बाहर से उसके स्वास्थ्य का भक्षण कर उसे जरजरी भूत बना देता है और वह स्वतः ही काल के मुख का ग्रास बन जाता है। इसलिए हमें इस नश्वर शरीर से नहीं जुड़ना अपितु इसके अस्तित्व का जो मुख्य आधार है, उस परमतत्त्व यानि अपनी अजर-अमर, नित्य हस्ती को पहचान कर, उस यथार्थ स्वरूप से अपना नाता जोड़ना है। हम सब ऐसा कर पाएँ इस हेतु आओ रसनेन्द्रिय के विषय में विस्तार से जानते है:-

रसनेन्द्रिय

रसना इन्द्रिय स्वाद-विषयक ज्ञानेन्द्रिय है। रस को जानने या चखने की एकमात्र सामर्थ्य रसना-इन्द्रिय में ही है। इस इन्द्रिय का स्वाभाविक धर्म रसों को बताना है अर्थात् इसी के द्वारा मुख में डाले हुए पदार्थों का अनुभव होता है यानि रसों का आस्वादन होता है और स्वाद के ज्ञान का प्रवाह अंदर बहता है। यह स्थूल रूप से जिह्वा के रूप में है तथा सूक्ष्म रूप से विभिन्न रसों का विवेक कराती है। रसना इन्द्रिय छः प्रकार के रसों जो कि मधुर, अम्ल, लवण, तिक्त, कषाय व कटु हैं, को ग्रहण करती है। इन छः प्रकार के रसों के भी सैंकड़ों रस भिन्न-भिन्न रूप में हो जाते हैं।

इस संदर्भ में जानो कि आहार की इच्छा प्रत्येक प्राणी में स्वाभाविक होती है। मनुष्य जो पदार्थ खाता है, उससे पहले द्रव स्वरूप एक सूक्ष्म रस बनता है। इसका स्थान हृदय कहा गया है, जहाँ से यह रस धमनियों द्वारा सारे शरीर में फैलता

है। यही रस तेज के साथ मिलकर पहले रक्त का रूप धारण करता है और तब उससे माँस, मेद, अस्थि, शुक्र आदि शेष धातुएँ बनती हैं। समुचित मात्रा में शरीर में इस रस की निष्पत्ति से जठराग्नि सम अर्थात् न तीक्ष्ण न मंद, अन्न का पाचन, धातु, मल और क्रियाएँ सम तथा देह की पुष्टि के साथ-साथ कांति में वृद्धि होती है। इसके विपरीत यदि यह रस किसी प्रकार अम्ल या कटु हो जाता है तो शरीर में अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न करता है। इसके दूषित होने से अरुचि, ज्वर, शरीर में भारीपन, कृशता, शिथिलता, दृष्टिहीनता आदि अनेक विकार उत्पन्न होते हैं।

इसीलिए एक मनुष्य के लिए आवश्यक है कि वह निरंतर स्वस्थ रहने हेतु हर प्रकार से भावशुद्धि कर सदा सात्विक, पौष्टिक व संतुलित आहार का ही सेवन करे। इसीलिए तो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है:-

भोग लवावां आप नूं खावो किरपानिधान,
तूं दाता सारे जग दा, मेरी कोट कोट प्रणाम,
सियापति रामचन्द्र जी की जय।

इस प्रकार यह जानते-समझते हुए कि **'आप करो सबदी पालना, आप देवो आहार, हर वस्तु है आधार आप दा, सच्चा करतार हो आप'** ईश्वर को समर्पित कर ही भोज्य पदार्थों का सेवन करें। याद रखो भावशुद्धि कर सेवन किया हुआ आहार प्रसन्नता व तुष्टि प्रदान करने वाला, बल उत्पन्न करने वाला, नाड़ियों का शोधन करने वाला, शरीर को स्थिर रखने वाला, बुद्धि, स्मरण शक्ति, आयु, सामर्थ्य, शरीर का वर्ण, ओज, सत्व (वीर्य) और शोभा को बढ़ाने वाला होता है।

इस बात को दृष्टिगत रखते हुए मनुष्य को चाहिए कि वह खान-पान की इच्छा में संतुलन तथा नियंत्रण वर्ते और स्वाद के वश होकर भूख से अधिक कोई भी पदार्थ कभी न खाएँ।

ऐसा इसलिए भी कह रहे हैं क्योंकि सात्विक आहार के सेवन से शरीरस्थ सत्वगुण प्रधान रहता है। इस प्रकार सत्वगुण युक्त होने पर, मानव मन में तीक्ष्ण रसों को सेवन करने की उत्कण्ठा उत्पन्न नहीं होती। फलतः सात्विक रस प्राप्त होता है और सात्विक वृत्ति बनी रहती है। इससे शरीर की और अंतःकरण की पुष्टि होती है जिससे ज्ञान का प्रादुर्भाव (प्रकट होना) होने लगता है और मन शांत व ध्यान स्थिरता बनने लगती है। वितृष्णा व वैराग्य की भावना दृढ़ होती है जो आत्मज्ञान प्राप्ति में सहायक सिद्ध होती है और आधि-व्याधि के रोग नहीं उत्पन्न होते। परिणामस्वरूप पूर्ण स्वस्थता बनी रहती है। यही स्वस्थता सजनों सतयुगी सजनों के दीर्घजावी होने का राज़ है। इसलिए तो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है:-

सतवस्तु दी रमज़ जैं समझ लई,
सत् चीज़ जिन्होंने पछान लई आ आ आ।
ओ खावे ख़ुराक निराली है,
अक्ख होवे परखण वाली है ओ ओ ओ।।

इसके विपरीत रसना में जब रजोगुण व तमोगुण की वृद्धि होती है तब अहितकारी तीक्ष्ण रस व नशीले पदार्थ अच्छे लगने लगते हैं और मनुष्य उनका ही दास बन जाता है। उनके सेवन के बिना मनुष्य को चैन नहीं आता। उनका ही उपार्जन (प्राप्त करने) और संग्रह करने में वह लग जाता है

और रसास्वादन में ही लगा रहता है। इस प्रकार विपरीत आहार के सेवन से शरीर में त्रिदोष उत्पन्न हो जाते हैं यानि वात-पित्त-कफ़ असंतुलित हो जाता है और इन से जनित दोष बढ़ जाते हैं। मत भूलो कि वात, पित्त और कफ़ के कुपित होने के फल को ही रोग कहते हैं। इनमें से किसी का कोप तभी होता है जब व्यक्ति विषम तथा अनुचित अन्नपानानुपान, मिथ्या विहार यानि जीवन की गतिवधियों में असावधानी करता है। इसी के फलस्वरूप शरीर में रस व रक्त ठीक से नहीं बनता परिणामस्वरूप माँस, मेद, हड्डी, मज्जा इत्यादि यानि शारीरिक संरचना व वृद्धि में अवरोध उत्पन्न होने के साथ-साथ शरीर का सारभूत तत्व व जीवात्मा का उत्तम आश्रय शुक्र भी विकृत हो जाता है। फलतः सन्तानोत्पत्ति की क्षमता के साथ-साथ सप्त धातुओं का प्रधान तेज यानि ओज भी कमज़ोर/क्षीण हो जाता है।

यहाँ याद रखने की बात यह है कि ओज ही देह की स्थिति का कारण है। इसी से शरीर रक्षित रहता है और इस की वृद्धि से ही शरीर में तुष्टि, पुष्टि, बल और पराक्रम का उदय होता है। ओज के नाश से ही शरीर का नाश है और इसके रहने पर ही प्राणियों में जीवन स्थित है। ओज के क्षय से ही भय, दुर्बलता तथा चिन्ता करने से इन्द्रियाँ व्यथित व हतोत्साहित रहती हैं। ओज ही उत्साह, प्रतिभा, धैर्य, लावण्य और सुकुमारता इत्यादि देह के आश्रित अनेक भावों को उत्पन्न करने वाला है। इसीलिए सर्वशरीर व्यापी होते हुए भी, प्रधान रूप से हृदय में स्थित इस ओज की वृद्धि व रक्षा हेतु संयमित आहार अनिवार्य है।

यही नहीं जिह्वा रस के असंयम से शरीर की रोग-प्रतिरोधात्मक क्षमता भी घट जाती है। शरीर में रसायनिक असंतुलन उत्पन्न होता है। मल शरीर में जमने लगता है और फेफड़े, पेट, लीवर, गुदा, त्वचा, गुर्दे, हृदय अंग रोगी हो जाते हैं। स्थूलता बढ़ने से हृदय रोग, चर्म रोग, संक्रामक रोग, कृमि रोग, मोटापा इत्यादि होने की संभावना बढ़ जाती है। स्नायु तंत्र का नियंत्रण ढीला हो जाता है। जोड़ों में स्पंदन होने से शरीर आलसी और रोगी बनता है। निद्रा बढ़ जाती है तथा स्मृति नष्ट हो जाती है। मन दुर्बल हो जाता है और शरीर रोगी हो जाता है। शरीर के रोगी होने से इन्द्रियों में भी विकार आ जाते हैं। बुद्धि में चिड़चिड़ापन आ जाता है, चंचलता, विक्षिप्तता (पागलपन), वेदना (हार्दिक या मानसिक पीड़ा, व्यथा) आदि की प्रतीति होने लगती है। चिन्तन शक्ति नष्ट हो जाती है। इस प्रकार शरीर के क्षीण होने से आनन्द की स्थिति बिगड़ जाती है और मनुष्य आनन्द खोकर आधि-व्याधि का अनुभव करने लगता है और रोगों का घर बन जाता है।

यह भी जानो कि कभी-कभी जिसको जो रस प्रिय होता है मनुष्य उसके सेवन में ही सुखानन्द का अनुभव करता है। चाहे आनन्द, बुद्धि या चित्त का धर्म है परन्तु माध्यम यह रसना या रसभोग ही होता है। याद रहे अधिकतर इसके रसास्वाद से मनुष्य की निवृत्ति नहीं हो पाती क्योंकि यह जन्म से ही मनुष्य के साथ आती है और ज्ञानी और अज्ञानी दोनों को मरणपर्यन्त रसों के स्वाद को बताती रहती है। इस प्रकार सभी प्राणी आजीवन इसके दास बने रहते हैं।

यहाँ समझने की बात यह है कि मानव की भलाई इस इन्द्रिय का दास बनने में नहीं, अपितु इसे अपने वश में रखने में है। ऐसा करने पर ही हमारे स्थूल व सूक्ष्म शरीर की स्वस्थता बनी रहेगी और अंतःकरण की शुद्धि के साथ-साथ चित्त-वृत्तियाँ सत्वप्रधान बनी रहेंगी। फलतः हमारा मनोबल बलिष्ठ होगा। बुद्धि को विवेकपूर्वक काम करने में कोई कठिनाई नहीं होगी। सजनों याद रखो जितना ही कुदरती नियमों के अनुकूल हम अपना संचालन करने में अपने आप को दक्ष पाएंगे अर्थात् उचित आहार-विहार अपनाएंगे, उतना ही गर्वित अनुभव करेंगे। ऐसा होने पर आनंद प्रदान करने वाला सत्यज्ञान स्वयंमेव प्रकट हो जाएगा और हमारे लिए आत्मज्ञान और ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति सुगम हो जाएगी। सजनों जानो कि ऐसा सुनिश्चित करने पर ही हम ओजस्वी व तेजस्वी बन, स्वतन्त्र रूप से आत्मविश्वास के साथ आत्मपद की प्राप्ति करने में सफल हो पाएंगे।

इसके विपरीत अगर हम तीक्ष्ण व नशीले रसास्वादन के बंधक बनते हैं तो हमारा शरीर, बुद्धि और मन कभी भी निरोगी नहीं रह सकेंगे और इन्द्रियों में भी विकार आ जाएंगे। फिर मन की चंचलता के कारण होने वाली मानसिक पीड़ा हमें चिड़चिड़ा बना देगी और हमारा व्यवहार क्षुब्ध हो जाएगा। इस हानि को समझते हुए सजनों रसास्वादन के गुलाम न बनो अपितु अपने मन-बुद्धि व इन्द्रियों को समझाकर विवेकपूर्ण युक्ताहार और पदार्थों का सेवन करना सुनिश्चित करो। याद रखो इस प्रकार केवल सात्विक रसों का सेवन करने पर ही हम विभिन्न हानिकारक रसों पर विजय प्राप्त कर इनके बन्धन से मुक्त हो, स्वस्थ

और दीर्घजीवी हो सकते हैं। अतः सभी को सुझाव है कि अगर रोगों व भोगों से मुक्ति पाना चाहते हो तो आत्मसंयमी बनो और अपनी रसना पर सदा अपना अधिकार बनाए रख एक अच्छे मानव के रूप में ढलो। एक अच्छा मानव बनने हेतु सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में वर्णित इस संदेश को सदा याद रखोः-

खावन पीवन विच दिन न बिताइयो,
निद्रा विच न रात।
नाम ध्यान विच इस्थर रहियो,
जपियो अजपा जाप।।

पालना करो हनुमान जी दे वचनां दी,
पकड़ियो अपना आप।
फिर खालस सोना खोट न राहवे,
ज्योति स्वरूप दा पाइयो प्रकाश।।

अंत में सजनों जान लो कि कुदरत ने इस इन्द्रिय को दोहरी क्षमता से नवाज़ा है यानि रसों के आस्वादन के रूप में जहाँ जिह्वा ज्ञानेन्द्रिय का कार्य करती है वहीं वाणी के रूप में कर्मेन्द्रिय का कार्य करते हुए शब्दों का उच्चारण भी करती है। अतः इस पर दोहरा नियन्त्रण/संयम की आवश्यकता है यथा आहार संयम तथा वाणी संयम। आहार संयम के बारे में आपको बता दिया गया है। वाणी संयम को हम कर्मेन्द्रियों की चर्चा के दौरान स्पष्ट करेंगे।

दिनाँक 20 अगस्त 2017 का सबक़

ज्ञानेन्द्रियों का समुचित कार्य-6

(गन्धेन्द्रिय व स्पर्शेन्द्रिय)

साडा है सजन राम, राम है कुल जहान

अर्थात्

ईश्वर हमारा मित्र/प्रियतम सर्वव्यापक है, उसी को जानो, मानो व वैसे ही गुण अपनाओ।

शब्द है गुरु, शरीर नहीं है,

अर्थात्

ज्ञानी को नहीं ज्ञान को अपनाओ और निमित्त में नहीं नित्य में श्रद्धा बढ़ाओ।

इस पर सुदृढ़ता से डटे रह,
इस अटल सत्य पर स्थिर बने रहोः-

ओ३म् अमर है आत्मा, आत्मा में है परमात्मा

सजनों अभी तक हमने जाना कि सामान्यतया मनुष्य सांसारिक विषयों के प्रति आसक्त होकर, उनकी परख किए बगैर ही, उन्हें ग्रहण करने वाली इन्द्रियों से प्रभावित होकर एक अविवेकी प्राणी की तरह क्रियाशील होता है। यह स्थिति पशुवृत्ति के समतुल्य होती है। यद्यपि इस ग्रहण में मन तथा बुद्धि का योग होता है पर मन पर बुद्धि का नियन्त्रण नहीं होता यानि मन की सबलता के कारण बुद्धि उसके अधीन हो जाती है और मानव उस विषय विशेष की

अच्छी-बुरी गुणवत्ता का भली-भांति विचार नहीं कर पाता। इसके विपरीत जब इन्द्रियोंसहित मन पर बुद्धि का नियन्त्रण हो जाता है तब इंसान ईश्वर प्रदत्त विवेकबुद्धि का प्रयोग करते हुए अपने जीवन के परम पुरुषार्थों यथा धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष को सिद्ध करने में जुट जाता है।

इस प्रकार आत्मसंयम द्वारा मानव व्यक्तित्व की पूर्णता, आत्मभाव के रूप में निखर कर सामने आती है और ध्यान स्थिरता द्वारा, अपने ख़्याल का सम्बन्ध आत्मा में व्याप्त परमात्मा के साथ जोड़े रख पाने में समर्थ व्यक्ति, प्रतिकूल परिस्थितियों में भी आत्मिक शक्ति और साहस से काम ले सकता है। फलतः उसका हृदय सदा प्रकाशित रहता है जिसके प्रभाववश उसके लिए आत्मविश्वास द्वारा आत्म नियंत्रण व नियमन करना सहज हो जाता है।

यह सहजता उसके मन को निश्चल बनाती है और चंचलता का अभाव मानव को चिर स्थायी शांति प्रदान करता है। शांति से उसके मन को संतोष प्राप्त रहता है जिससे उसे अखंड सात्विक सुख प्राप्त होता है। ऐसा होने पर उस व्यक्ति में राजसिक व तामसिक सुख प्राप्त करने की इच्छा ही नहीं पनपती और वह आत्मतृप्त व्यक्ति धीरता से दूसरों को भी सुखी बनाते हुए, निष्काम भाव से परोपकार कमाने में सक्षम हो जाता है। यह अपने आप में उसके कार्य की गुणवत्ता क्रमशः बढ़ने का परिचायक होता है और वह अक्षय उन्नति का भागी बनता है। सफलता उसके कदम चूमती है और वह घर, परिवार व समाज में व्यवस्था, अनुशासन,

सुख, संस्कार और मानवीय संबंध बनाने में सफल हो सजनता का प्रतीक बन जाता है।

सजनों आत्मसंयम की इसी महान उपलब्धि के दृष्टिगत हम अध्ययन कर रहे हैं ज्ञानेन्द्रियों के समुचित कार्यों का। इसी श्रृंखला में आओ आज जानते हैं गन्धेन्द्रिय व स्पर्शेन्द्रिय के बारे में।

गन्धेन्द्रिय या घ्राणेन्द्रिय

गन्धेन्द्रिय या घ्राणेन्द्रिय 'गन्ध का ज्ञान' कराती है। यह ज्ञान मौलिक पाँच ज्ञानों में से एक है। यह सूँघने की शक्ति है तथा पृथ्वी का गुण है। नासिका से ही भिन्न-भिन्न गन्धों का बोध होता है। मस्तिष्क के साथ जुड़े तथा वहाँ से निकले अनेकशः ज्ञानतन्तु देह भर में फैले हुए हैं और वे नथुनों में भी विद्यमान हैं। नासा-द्वारों में प्रवष्टि हुई गन्ध इन ज्ञान-सूत्रों के द्वारा मस्तिष्कगत 'सूक्ष्मघ्राण' तक पहुँचकर सबके अनुभव में आती है। गन्धों की विविधता--नाम रूप का निर्णय बुद्धि करती है।

इस संदर्भ में जान लो कि गंध हमें सर्वत्र मिलती है जिसे हम सुगंध और दुर्गंध नामों से पुकारते हैं अर्थात् सुगन्ध और दुर्गन्ध बुद्धि भेद से मानी गयी है। इसी कारण एक गन्ध एक व्यक्ति को अच्छी लगती है तो दूसरे को अच्छी नहीं लगती। यह भी याद रखो कि व्यक्तिगत स्तर पर हर प्राणी की भी अपनी सुगंध या दुर्गंध होती है जो उसकी शारीरिक व मानसिक स्वस्थता/अस्वस्थता तथा स्वभावों व आचरण की शुचिता/अशुचिता यानि पवित्रता/मलिनता पर निर्भर करती

है। इसी तथ्य को सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है:-

हमने अपने शरीर को सचखंड बनाना है।
यह सच्चाई से इस कदर भर जावे कि इसकी सुगन्धि
देवलोक की सुगन्धि को भी मात कर देवे।

यहाँ सुगंधि से तात्पर्य अपने व्यक्तित्व को उज्ज्वल बनाकर चहुं ओर उसकी सुरभि फैलाने से है। इस व्यक्तित्व को उज्ज्वल बनाने हेतु ही सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है:-

नी सरस्वती तूं कंचन हो जा,
कूड़ा आड़ा कढ हीरे लाल जवाहर दिखा।
बखेड़े छड बगीची ला,
नी सरस्वती सोहणा मन्दिर सजा,
हुण तूं ऐसी सुगंधि दिखा,
नी सरस्वती तूं कंचन हो जा।।

जानते हो जब सरस्वती अर्थात् विद्या/ज्ञान व वाणी कंचन हो जाती है तो क्या होता है, इस संदर्भ में सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ कह रहा है:-

मुश्क हटे खुशबू पई आवे,
देवलोक दी सुगंधि शरमावे।
तदों होवे उसदा दिदार,
सजनों हो जावो रघुनाथ जी दे गले दा हार।।

इस प्रकार इस घ्राणेन्द्रिय में सजनों दूर देश से सूक्ष्म गंध ग्रहण करने की बड़ी शक्ति है। सूक्ष्म गन्ध को दिव्य गन्ध भी कहते हैं। यही दिव्य गंध जब अंतराकाश में व्यापत होकर, अंतःकरण को छूती है तो मन-चित्त को निर्मलता में सराबोर कर, परमानंद की अनुभूति कराती है। याद रहे इस क्रिया का लाभ वही उठा सकता है जो कामनाओं का गुलाम नहीं बनता और अपने मनोबल का संयमित ढंग से प्रयोग कर अपने व्यक्तित्व का पूर्णतया इन्सानियत अनुरूप विकास करने में प्रवीण हो जाता है अन्यथा साधारण व्यक्ति तो नाना प्रकार की भौतिक उत्तेजक गन्धों का उपभोग कर भोग-विलास में ही फँस जाता है।

उपरोक्त तथ्य को दृष्टिगत रखते हुए हम सबके लिए बनता है कि स्वास्थ्य के लिए हानिकारक व मन को चंचलता व उत्तेजना प्रदान कर कुमार्ग पर ले जाने वाले उत्तेजक स्प्रे व कीमती परफ्यूमस का प्रयोग कदापि न करे। इसके स्थान पर जिस प्रकार की सुगंध से मन शांत और प्रफुल्लित रहे, जीवन की ऊर्जा उर्ध्वगति को प्राप्त हो और चित्त शांत व आचरण शुद्ध बना रहे उसी का प्रयोग करें। इस संदर्भ में याद रखो कि पवित्र व मधुर प्राकृतिक सुगंध फूलों में है, चन्दन में है, हवन में जलने वाली सामग्री व धूप-अगरबत्ती इत्यादि में है जो न केवल शरीर को अपितु वातावरण को भी जीवाणुओं से विमुक्त रख स्वस्थ, स्वच्छ व सौम्य रखती है।

अंत में सभी को सुझाव है कि अपने आप को सदा दिव्य गंध से ओत-प्रोत रखने एवं उपभोग करने हेतु इस इन्द्रिय का ध्यान स्थिर हो संयम से प्रयोग करें क्योंकि सतवस्तु का

कुदरती ग्रन्थ कह रहा हैः-

(महाबीर जी के मुख के शब्द)

दोहाः- चलो चलिये दरबार दे अन्दर,
श्री राम जी रहे ने बुला।
कुछ गलबात ओन्हां करनी है,
करनी है पातशाहवां दे शाह।।

-कवित्त-

अच्छा फल प्यारा लगे साजन जी,
जैंदे विच खुशबू बड़ी आवे।
ओ फल फैंक्या जांवदा है,
जेहड़ा फल मुश्क्या और तरक्क जावे।।

ओ फल पछाने विरला कोई,
जैंदी बुद्धि विचार प्रबल होवे।
उस फल दी श्री राम जी नूं चाह ही नहीं,
जिस फल अन्दर मुश्क बड़ी आवे।।

उस फल दे नाल है प्यार साडा,
जेहड़ा फल भुख ते त्रेह मिटांवदा है।
जेहड़े फल विच्चों दुर्गन्ध आवे,
ओ फल तो फैंक्या जांवदा है।।

उस फल दी कीमत साजन जी कौन पावे,
जेहड़ा फल श्री रामचन्द्र जी नूं भावे।
कौड़े फल दी ओन्हां नू लोड़ ही नहीं,
जेहड़ा फल घुमर घेरियाँ दिखावे।।

जेहड़े फल दे अन्दर सुगंधि आवे,
उस फल दा मोल कोई तोल नाहीं।
जिस फल खावन नाल रोग उपजे,
उस फल दी श्री राम जी नूं लोड़ नाहीं।।

असलियत फल दी श्री रामचन्द्र जी नूं चाह साजन,
जैंदी देश देशान्तर सुगंधि आवे।
ओ है हीरा ओही चमक ब्रह्मांड जावे,
तरक्क गया फल मेल किवें खावे।।

श्री साजन जी कह रहे हैं

ध्वनिः- श्री राम चरणों दी धूड़ि दा करो इश्नान,
सजनों राम चरणों दी।
वाह वाह सजनों राम चरणों दी,
हां हां सजनों राम चरणों दी।।

जिन्हां चरणों ने अहिल्या तारी,
ओ चरण दिखा रहे हनुमान सजनों राम चरणों दी।
श्री राम चरणों दी धूड़ि दा करो इश्नान,
सजनों राम चरणों दी।।

आओ अब स्पर्शेन्द्रिय के विषय मे जानते हैंः-

स्पर्शेन्द्रिय/त्वचा

त्वचा स्पर्श-विषयक ज्ञानेन्द्रिय है जिसके द्वारा ठंडे, गरम, कड़े और नरम का ज्ञान होता है। इसके द्वारा स्पर्श ज्ञान का

प्रवाह अन्दर बहता है। यह इन्द्रिय श्वास-संस्थान के एक अवयव के रूप में भी महत्त्वपूर्ण कार्य करती है क्योंकि इसी के द्वारा शरीर की गंदगी पसीने के रूप में बाहर निकलती है और शरीर का तापमान नियंत्रित रहता है।

स्पर्श-इन्द्रिय का एक ही धर्म है स्पर्शन, अर्थात् स्पर्श को अनुभव करने की शक्ति। स्पर्श वायु का धर्म है। स्पर्श और स्पर्श के परिणामों को जताने की सामर्थ्य त्वचा में है। यह त्वचा समस्त देह के ऊपर एवं शरीर के आन्तरिक भागों पर भी चढ़ी हुई है और माँसपेशियों में भी सर्वत्र है। स्पर्शज्ञान त्वचा में फैले ज्ञानतन्तुओं के द्वारा मस्तिष्कगत सूक्ष्म स्पर्शेन्द्रिय के केन्द्र को प्रतिबिम्बित करता है। इसके आगे विभेदन का कार्य बुद्धि करती है। स्पर्श-बोध सारे शरीर में व्याप्त होने के कारण यह इन्द्रिय जड़ शरीर में सर्वत्र प्रत्यक्ष रूप से आत्मा यानि चेतन शक्ति को दर्शाती है। तभी तो कहा गया है:-

रोम रोम में रमने वाला, रोम रोम में रम रिहा है।

स्पर्श गुण एक महान दिव्य शक्ति के रूप में अनिर्वचनीय है। संवेदना (छूने से होने वाला ज्ञान) स्पर्श का परिणाम है। स्पर्श मनुष्य की जिज्ञासा को शांत करने में सहायक कारक भी है तभी तो बालक बाल अवस्था से ही वस्तुओं व व्यक्तियों को छू कर उनका बोध करना चाहता है। स्पर्श की अपनी मौन भाषा है। स्पष्टतः माता-पिता के, पति-पत्नी के, बहन-भाई के, संतजनों के, अपरिचित व्यक्ति आदि के परस्पर स्पर्श में क्रमशः भेद होता है। उदाहरणस्वरूप वात्सल्यपूर्ण

स्पर्श जहाँ बच्चों को भावनात्मक सुरक्षा व आनंद का अनुभव कराता है वहीं कामोत्तेजक स्पर्श मनुष्य की विपरीत लिंग के प्रति आकर्षण की प्रवृत्ति को शांत कर क्षणिक तृप्ति प्रदान करता है। इस प्रकार स्पर्श का सकारात्मक व नकारात्मक शीघ्रतम प्रभाव होता है यानि सचेत होने पर यह हमें कुसंग में फँसने से बचा भी सकता है और अचेतन होने पर किसी के चंगुल में फँसा भी सकता है। याद रखो कामुक स्पर्श सदा कष्टप्रद होता है। ऐसा न हो इसीलिए स्पर्शकर्त्ता के भाव के रूप को बुद्धिमत्ता से जानना परम आवश्यक होता है।

स्पष्ट है मानव जीवन को उत्थान व पतनोन्मुख करने में इस स्पर्शेन्द्रिय का बड़ा महत्त्व है। ऐसा इसलिए कह रहे हैं क्योंकि यह स्पर्श जब सात्विक और आत्मा सम्बन्धी होता है या जब चेतन के सम्पर्क से चेतन को स्पर्श का अनुभव कराता है तब यह कथन में भी नहीं आ सकता। तभी तो सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ कह रहा हैः-

रोम रोम विच राम वसावीं, जोती नाल जोत हो जावीं।
उमरां चरणां विच बितावीं, चरणां नाल चरण हो जावीं।।

इसके विपरीत इस स्पर्शेन्द्रिय में रजोगुण की प्रधानता से इन्द्रियों और अन्तःकरण में खलबली सी मच जाती है। उनमें परस्पर स्पर्श भी होता है और संघर्ष भी होता है। परिणामस्वरूप स्थूल और सूक्ष्म दोनों शरीरों पर नकारात्मक प्रभाव से उत्तेजना बढ़ जाती है। स्पर्शेन्द्रिय के साथ-साथ जननेन्द्रिय भी गतिशील हो उग्र रूप धारण कर लेती है जिससे मन और बुद्धि चंचल हो उठते हैं और वासनाएँ हावी हो जाती हैं। क्षणिक सुख की अनुभूति के लिए मानव

असंयमित हो अपना ब्रह्मचर्य व्रत तोड़ नाना प्रकार के व्यभिचारों में संलग्न हो जाता है। यही नहीं इसी कारण वह कुकर्म व अधर्म यानि कुमार्ग पर अग्रसर होने से भी नहीं सकुचाता और इस तरह अपना लोक-परलोक दोनों ही बिगाड़ बैठता है। सजनों हम सभी जानते हैं कि आज के दूषित वातावरण में सभी प्राणियों को इसी इन्द्रिय ने अपना दास बना रखा है और व्यक्ति क्षणिक सुख प्राप्ति के पश्चात् इसके अंतिम परिणाम दुःख को जान ही नहीं पाता। अतः सदा खिन्न व अप्रसन्न रह कष्ट-क्लेशों को प्राप्त हो आजीवन झुखता रोता रहता है। यही तो कलुकाल के भाव-स्वभाव अपनाकर, पाप कर्म करने के फलस्वरूप जन्म-मरण के चक्रव्यूह में फँसने का हेतु होता है।

ऐसा न हो इस हेतु सजनों संयम, तप, त्याग और ध्यानाभ्यास से काम लेना अनिवार्य है अर्थात् अपने मन और इन्द्रियों को वश में रख इनकी बागडोर बुद्धि की पकड़ में रखनी है। अन्य शब्दों में अभ्यास द्वारा मन, बुद्धि और स्पर्शेन्द्रिय पर इतना अधिकार प्राप्त हो जाना चाहिए कि एक क्षण के लिए हम अपने यथार्थ स्वभाव से टस से मस न होने पावें। इस तरह हमारी बुद्धि और मन, इन्द्रियों के दास न बनें। ऐसा करने पर ही हम सच्चाई-धर्म के रास्ते पर चलते हुए अलौकिक और अकथनीय आत्मसुख का अनुभव कर सकते हैं। सजनों ऐसा सुनिश्चित करने के पश्चात् ही हम काम पर फ़तह पा सत्य-धर्म की साधना करने वाले निष्काम साधक बन सकते हैं।

अंततः सजनों हमने जाना कि बाह्यकरण अर्थात् चक्षु आदि

ज्ञानेन्द्रियों द्वारा तथा अंतःकरण यानि मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार द्वारा हम जिस जगत को देखते हैं वह अत्यन्त विचित्र है। इसमें परस्पर भिन्नता ही भिन्नता दिखाई देती है। इस संदर्भ में यदि हम ज्ञानेन्द्रियों को ही ध्यान से समझें तो आँख अर्थात् चक्षु इन्द्रिय से किसी वस्तु का रूप, आकार-प्रकार और रंग मात्र ही जाना जा सकता है। उसका स्पर्श कैसा है यह त्वक् अर्थात् स्पर्शेन्द्रिय ही बतलाती है। इसी प्रकार किसी फूल या फल में कैसी गंध या स्वाद है उसको नासिका और रसना के बिना नहीं जाना जा सकता। किसी भी जड़-चेतन में विद्यमान शब्द के परिज्ञान के लिए श्रवणेन्द्रिय की ही आवश्यकता पड़ती है।

इस तरह हम जानते हैं कि एक-एक इन्द्रिय के परस्पर विषयों में भी आपस में कितनी विचित्रता और विविधता है। ऐसे में मन में होने वाले प्रतिक्षण परिवर्तनमान संकल्प-विकल्प, बुद्धि के निश्चय, चित्त की विविध स्फुरणाएँ तथा अहंकार की ऊँची-नीची अनेक अभिमान्यताएँ इस जगत को नाना प्रकार का और अपरिमेय (बेअंदाज/असीम) बना देती है। सजनों किसी भी विषय के पूर्ण ज्ञान के लिए इस असमन्वित अनेकता के बीच एक मनोवैज्ञानिक एकत्व की अवधारणा अपनानी पड़ती है। समभाव-समदृष्टि की युक्ति उसी एकत्व की अवधारणा का स्पष्टीकरण करती है और हर परिस्थिति में हमें इन्द्रियों व मन के दासत्व से मुक्त बने रह, आत्मस्वरूप पर सुदृढ़ बने रह, परस्पर सजन भाव का व्यवहार करते हुए दिव्य पुरुष बनने का संदेश देती है। अतः सजनों इस युक्ति को प्रवान कर हमें भी अपने मन व इन्द्रियों

को जीतने वाला महावीर बनना है।

सबकी जानकारी हेतु, आगामी सप्ताह हम, विषयायुक्त बुराई का रास्ता छोड़, अच्छाई के रास्ते पर अग्रसर होने हेतु, शारीरिक स्वभावों में बने रहने के स्थान पर, आत्म प्रकृति का विकास कैसे करना है, इस विषय में बातचीत करेंगे।

दिनाँक 27 अगस्त 2017 का सबक़

आओ शारीरिक स्वभावों में बने रहने के स्थान पर आत्म प्रकृति का विकास करें और बुराई छोड़ अच्छाई के रास्ते पर बढ़ें

साडा है सजन राम, राम है कुल जहान

अर्थात्

ईश्वर हमारा मित्र/प्रियतम सर्वव्यापक है, उसी को जानो, मानो व वैसे ही गुण अपनाओ।

शब्द है गुरु, शरीर नहीं है,

अर्थात्

ज्ञानी को नहीं ज्ञान को अपनाओ और निमित्त में नहीं नित्य में श्रद्धा बढ़ाओ।

इस पर सुदृढ़ता से डटे रह, इस अटल सत्य पर स्थिर बने रहोः-

ओ३म् अमर है आत्मा, आत्मा में है परमात्मा

सजनों सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ कह रहा हैः-

कुदरत ने इन्सान बनाया,
ओहदे विच इक जीव बना के।
आत्मपद दी खोज करो,
अपनी इन्सानी दिखा के।
हाँ अपनी इन्सानी दिखा के,
वाह अपनी इन्सानी दिखा के।

यह कार्य सजनों कैसे सिद्ध करना है इस हेतु आओ ध्यान से आत्मप्रकृति को समझते हैंः-

आत्म प्रकृति यौगिक शब्द है जो आत्म + प्रकृति से मिलकर बना है। आत्म का अर्थ है अपना, स्वकीय, आन्तरिक तथा प्रकृति का अर्थ है स्वभाव। इस प्रकार आत्म प्रकृति का मुख्य अर्थ हुआ अपना आन्तरिक स्वभाव, भीतरी स्वभाव, मूल स्वभाव। यह व्यक्ति की मौलिक प्रवृत्ति को द्योतित करता है तथा आत्मा का अन्यतम गुण कहलाता है। इस सर्वोत्कृष्ट प्रवृत्ति पर समरस स्थिर बने रहने वाला इंसान ही अन्नाद यानि ईश्वर सम सम्पूर्ण जगत को ग्रहण करते हुए भी सदा उससे निरासक्त रह, आत्मभाव में यथा बने रहने की शक्ति रखता है। अन्यथा आत्मप्रकृति से विपरीत चलने वाला इंसान, शारीरिक स्वभाव अपना कर, मिथ्या संसार में उलझ अज्ञान के कारण, सत्य धर्म के निष्काम रास्ते से भटक झूठ, चतुराई व छल-कपट का नकारात्मक रास्ता अपनाकर पाप कर्म करते हुए अपना अहित कर बैठता है।

व्यक्ति अथवा वस्तु में सदा प्रायः एक सा बना रहने वाला मूल या मुख्य स्वाभाविक भाव या गुण (सम) जो अपने तेज-प्रकाश से बिना किसी सहायता के अपना सारा काम स्वयं करता है, उसका मूल स्वभाव कहलाता है व केवल यह ही अपनाने योग्य होता है। यह सर्वदा विशुद्ध, निर्मल और पवित्र होता है तथा इतना अप्रकट होता है कि अज्ञानी और विवेकहीनों को यह सहसा परिलक्षित नहीं होता। यह स्वबीज ही इंसान के हृदय में आत्म प्रकृति के विकास का हेतु होता है और उसके मन में सर्वकल्याण की भावना जाग्रत कर उसके स्वाभाविक धर्म का निर्माण करता है। यही

नहीं इसी की धारणा से मानव की वृत्ति-स्मृति, बुद्धि व भाव-स्वभाव रूपी ताणा-बाणा निर्मल बना रहता है और समदृष्टि हो जाती है।

सजनों जानो कि जब इंसान के अंतर्मन में इस आत्म प्रकृति से विकसित आत्मिक भाव यानि समभाव स्थित हो जाता है तो उसे किसी प्रकार का अभाव नहीं खलता। कहने का आशय यह है कि आत्माजन्य प्रवृत्ति या विचार उसके मन को संकल्प रहित अवस्था में साधे रख, इतना विद्वान बना देते हैं कि फिर उसके लिए अपनी विवेकशक्ति द्वारा सत्य-असत्य की परख कर, केवल सत्य को ग्रहण करना कोई कठिन कार्य नहीं रह जाता। इसलिए तो ऐसे जाग्रत इंसान के मन में सांसारिक विषयों के प्रति आसक्ति यानि मानसिक विकारों अथवा विचारों को ग्रहण करने के प्रति रुचि पैदा नहीं होती और उसकी बुद्धि अपने गुण द्वारा धर्माधर्म ज्ञानाज्ञान आदि को भली भांति समझ कर वर्त-वर्ताव में लाने में सक्षम होती है। इसी कारण ऐसा व्यक्ति सदा धर्म की बात करता है और धर्म के ऊपर अपना सर्वस्व यानि तन-मन-धन न्योछावर करने से भी नहीं सकुचाता।

इस प्रकार अपने प्राकृतिक रूप पर सुदृढ़ता से बने रहने वाले इंसान के हृदय में स्वयमेव उसका यथार्थ ज्ञान स्वरूप प्रकाशित हो जाता है और वह जीव, जगत व ब्रह्म का ज्ञान प्राप्त कर ब्रह्म नाल ब्रह्म हो जाता है। इस अवस्था में उस आत्मबोधी इंसान के मन में ईश्वर के प्रति अगाध श्रद्धा उत्पन्न हो जाती है जिससे उसके अन्दर आस्था के साथ-साथ आत्मविश्वास भी जाग्रत होता है और वह आत्मिक बल द्वारा, सद्भावना के प्रभाव से अपने आत्मिक गुणों का सदुपयोग

करते हुए, इस जगत में प्रत्येक प्राणी के प्रति समानता का भाव रखते हुए परस्पर सजन भाव अनुसार सहजता से विचर पाता है। सजनों जानो कि जहाँ सजन भाव अनुरूप सबको एक सा समझते हुए प्रेम सहित मिलन होता है, उस समदृष्टि इंसान के लिए इन्द्रियों का दमन कर, आत्मीय स्वभावों पर सुदृढ़ बने रहना सहज हो जाता है। इस महत्ता को देखते हुए ही सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया हैः-

समभाव समदृष्टि दे प्रतिकूल न चलियो,
समभाव नज़रों में कर के सजन वृत्ति फड़ियो
सजन भाव नज़रों में कर के सजनों,
सजन भाव प्रकृति में लियाईयो।

कहने का आशय यह है कि इस युक्ति को वर्ताव में लाने वाले आत्मदर्शी का कोई प्रतिद्वन्द्वी व वैरी-दुश्मन नहीं रहता और उसके मन में तेरी-मेरी, अपना-पराया, वड-छोट, मान-अपमान, ईर्ष्या-द्वेष का कोई भाव नहीं पनपता अपितु वह विरोधाभास से मुक्त रह अपने आप को सब में व सबको अपने आप में मिला हुआ पाता है व सजनता का प्रतीक कहलाता है। इस तरह निष्कामता से पुण्य कर्म करता हुआ वह सबका प्रतिपालन व प्रतिपोषण करता है और अपने परोपकारी भाव स्वभावों की सुगांधि चहुं ओर यानि तीनों लोकों में फैलाता हुआ यश कीर्ति को प्राप्त करता है।

सजनों स्पष्ट है कि जहाँ समभाव होता है वहाँ एकता, एक-अवस्था होती है और किसी भी पक्ष में द्वि-द्वेष का भाव उत्पन्न होने की संभावना नहीं रहती। यह ख़्याल व ध्यान को प्रभु में लीन रख शब्द ब्रह्म विचारों पर स्थिर बुद्धि बने रह अक्लमंद

कहाने की बात होती है। जानो कि एक समझदार इंसान ही सूझबूझ से ज्ञान की सत्यता को यथार्थतः परख, सर्वहित को ध्यान में रखते हुए त्याग भावना से उसे समता से वर्त-वर्ताव में ला सकता है। ऐसा होने पर सजन, महत्त्व आदि के विचार से, बैहरूनी और अन्दरूनी वृत्तियों को सम अवस्था में साधे रखने में यानि उनका समन्वय स्थापित करने में समर्थ हो जाता है।

ऐसा सर्वश्रेष्ठ इंसान, ईश्वरीय विधान को मानने वाला होता है व इस जगत में जो कुछ भी करता है वह केवल परमेश्वर की इच्छानुसार सेवा भाव से उसी के निमित्त निष्कामता से ही करता है। इस तरह वह ईश्वर की रजामंदी में ही अपना कल्याण समझता है और सदा उसका समर्थन करने के साथ-साथ उसका मनन भी करता है। यही कारण है कि ऐसा समर्थवान इंसान धर्म भाव व श्रद्धा से प्रभु के प्रति शीश अर्पण करते हुए शब्द ब्रह्म विचारों पर टिका रह सकता है और उस असाधारण मानसिक शक्ति वाले प्रतिभाशाली इंसान के विचार गूढ़ व सुदृढ़ होते हैं। उसका आत्मिक बल कभी भी, किसी भी परिस्थिति में यानि संयोग-वियोग, हर्ष-शोक, रोग-सोग, खुशी-ग़मी, दुःख-सुख में क्षीण नहीं होता। तभी तो वह समबुद्धि सुख-दुःख, हानि-लाभ, सब अवस्थाओं में समान रहता है और जीवन का हर कठिन से कठिन कार्य सिद्ध कर पाने में पूर्णतः समर्थ हो जाता है। इस तरह जगत के समस्त कार्यव्यवहार करते हुए वह अपने इस आत्मिक सहज स्वभाव का प्रमाणपूर्ण प्रदर्शन करके उसकी सर्वोत्कृष्टता सिद्ध कर देता है और ए विध् अपना लोक-परलोक दोनों सुधार लेता है।

सजनों यह अपने आप में आत्मिक ज्ञान प्राप्त कर, उसे प्राकृतिक रूप से मन-वचन-कर्म द्वारा प्रमाणित करने का पराक्रम दिखाने की बात होती है जिसके फलस्वरूप वह ज्योति स्वरूप परब्रह्म परमेश्वर नाम कहाता है। इसलिए तो वह समवृत्ति हर किसी के साथ समान रूप तथा समान भाव से विचरते हुए चरित्रवान कहलाता है व सुदृढ़ता से सदा सम अवस्था में सधा रहता है। सजनों हम सब भी अपना जीवन उद्धार कर पाएं इसलिए सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ हम कलुकालवासियों को समभाव-समदृष्टि के सबक़ अनुसार सजन भाव अपनाकर सतवस्तु में आने का आवाहन दे रहा है। याद रखो जो इन्सान इस युवावस्था के भक्ति भाव पर स्थिर बना रहता है उस उच्च बुद्धि, उच्च ख़्याल की भक्ति प्रबल व शक्ति ताकतवर हो जाती है।

इस अवस्था को प्राप्त करने हेतु उसे अपनी बैहरूनी व अन्दरूनी दोनों वृत्तियों की निर्मलता के साथ-साथ, जिह्वा स्वतन्त्र व संकल्प स्वच्छ रखते हुए, सजन भाव को आत्मसात् कर झुखने-रोने के स्वभाव से मुक्ति प्राप्त करनी होती है। यह संकल्प को सजन बना, अपनी दृष्टि को ठीक रखने का पुरुषार्थ दिखाने की बात होती है। जानो कि संकल्प के सजन होते ही संतोष उसके स्वभाव के अंतर्गत हो जाता है। ऐसा सुनिश्चित कर पाने के पश्चात् ही वह आत्मतुष्ट इंसान, आत्मा में परमात्मा की सर्वव्यापकता यानि 'जो मन मन्दिर सो ही महाराज का रूप सारे जग अन्दर अर्थात् जनचर, बचनर, जड़-चेतन एक ही रूप' का बोध कर, अपनी सुरत अर्थात् अन्दर के ख़्याल को सदा प्रभु में लीन रखने में समर्थ हो पाता है।

जानो जब ऐसा हो जाता है तो वह अपने ख़्याल अर्थात् अन्दर स्त्री भाव में नज़र आने वाली सुरत के, हृदय रूपी दर्पण पर पड़ने वाले प्रतिबिंब को यथार्थता से देखने के योग्य हो जाता है। इस अवस्था में इंसान का शरीर सुन्न हो जाता है और उसका ख़्याल महाराज जी के साथ जुड़े रह, उन के श्रृंगार को धारण करना आरम्भ कर देता है। इस इलाही श्रृंगार की चमक से हृदय प्रकाशित हो जाता है और स्वतः ही धैर्य का स्वभाव इंसान की प्रकृति के अंतर्गत हो जाता है। यहाँ शरीर की सुन्नता से तात्पर्य शरीर की जड़ता का सत्यबोध करने से है।

याद रखो जो प्रकाशित बुद्धि इंसान शारीरिक नश्वरता के यथार्थ को जान जाता है, वह अपने ख़्याल का, शरीर रूपी निर्जीव पदार्थों के साथ सम्बन्ध नहीं जोड़ता अपितु वह तो सदा सचेतन अवस्था में बने रह, नित्य चैतन्य शक्ति के संग जुड़ा रहता है। वह ऐसा इसलिए भी करता है क्योंकि वह जानता है कि शारीरिक स्वभाव तो जन्म लेते हैं, रहते हैं, बढ़ते हैं, परिणामशील होते हैं तथा अंत में नष्ट हो जाते हैं यानि उपजते-बिनसते हुए रूप-रंग बदलते रहते हैं परन्तु आत्म प्रकृति से विकसित आत्मिक स्वभाव कभी भी नहीं बदलते अपितु सदा समरस रहते हैं। इसी समरसता के कारण व्यक्ति अपनी अजरता-अमरता का बोध कर आजीवन एक से आचार व्यवहार पर बने रह सुपथ पर अग्रसर रह सकता है। इसी महत्ता के दृष्टिगत सजनों सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में शारीरिक स्वभावों पर फतह पाने का आवाहन देते हुए कहा गया हैः-

शारीरिक स्वभावां नूं जे जितना चाहो,
कुसंगी संकल्प नूं सजन बनाओ।
फिर झुखना तुहाडा हट ही गया,
संतोष वल्लों जित पाओ।।

अन्य शब्दों में ऐसा होने पर ही इंसान के लिए अपने जीवन का प्रयोजन सिद्ध करने हेतु, सच्चाई-धर्म के उन्नति पथ पर निर्भयता से अग्रसर होना सहज हो पाता है। सजनों यह अपने आप में ईश्वर की करामात होती है जिसके फलस्वरूप उस सशक्त निर्विकारी इंसान के लिए अपने हृदय को सचखंड बना, एक निगाह एक दृष्टि द्वारा सतवस्तु के स्वभावों में ढलना कोई नामुमकिन बात नहीं रहती।

इस प्रकार उसके लिए आत्मिक स्वभावों अनुरूप चलन अपना कर परमपद प्राप्त करना यानि आवागमन के चक्कर से छुटकारा पाना संभव हो जाता है। इस अवस्था को प्राप्त करने के पश्चात्, बुखार की तरह उसके स्वभावों का टेम्प्रैचर घटता-बढ़ता नहीं। यह तो तीनों तापों का रोग समाप्त होने की यानि बिन औखियाइयों, बिन खेचलों जन्म की बाज़ी जीतने की बात होती है। इस के पश्चात्, समभाव जो एक निगाह एक दृष्टि देखनी होती है बिना यत्न के उसकी प्राप्ति हो जाती है और सजन समभाव अनुरूप समदर्शिता का परस्पर व्यवहार करते हुए जब भी किसी सजन के हृदय की तरफ देखता है तो उसमें उसे वही प्रकाश निगाह आता है। इस तरह बातचीत करते समय उसका ख़्याल, अपने उसी असलियत प्रकाश में ठहरा रहता है जिससे उसका बदन प्रफुल्लित होता है, हृदय खिड़ता है और मुख चमकता है।

हम भी इस आनन्दमय अवस्था में एकरस बने रह सकें इसके लिए हमें संकल्प कुसंगी को संगी बनाना होगा। याद रखो विभिन्न व्यभिचारी भावों को अपनाने से संकल्प कुसंगी होता है व समभाव को अपनाने से संकल्प सजन व संगी हो जाता है। अतः हमें आत्मनियंत्रण रखते हुए, समभाव नजरों में कर, सजन वृत्ति को पकड़ना होगा और सजन भाव अनुसार नज़रिया अपना कर समभाव को प्रकृति में लाना होगा ताकि अपने यथार्थ स्वरूप को समक्ष रखते हुए, किसी भी कारण हमारा मानसिक संतुलन न बिगड़े और हमारी चित्त की वृत्ति सब जगह यानि हर परिस्थिति में समान बनी रहे और हम समान आचरण व व्यवहार करने वाले समचर इंसान बन यश कीर्ति प्राप्त करने के योग्य बनें।

निष्कर्षतः सजनों याद रखो कि भाव से भावना, भावना से संकल्प यानि निश्चित मत एवं विचार, निश्चित मत एवं विचार से करनी, करनी से स्वभाव, स्वभाव से चरित्र व चरित्र से ही प्रारब्ध बनता है। अतः अपनी प्रारब्ध को सुखदाई बनाने हेतु हमारे लिए भी बनता है कि हम आत्म प्रकृति के अनुरूप अपने भाव-स्वभावों का विकास करें व उन्हीं पर स्थिर बने रह, समभाव समदृष्टि की युक्ति अपनाकर अजर-अमर, अविनाशी पद को प्राप्त करें व इस जगत में अपना नाम रोशन करें।

सबकी जानकारी हेतु आगामी सप्ताह से हम कर्मेन्द्रियों के विषय में सविस्तार बातचीत करेंगे।

दिनाँक 3 सितम्बर 2017 का सबक़

कर्मेन्द्रियों का समुचित कार्य-1
(वागेन्द्रिय/वाणी)

साडा है सजन राम, राम है कुल जहान
अर्थात्
ईश्वर हमारा मित्र/प्रियतम सर्वव्यापक है, उसी को जानो, मानो व वैसे ही गुण अपनाओ।

शब्द है गुरु, शरीर नहीं है,
अर्थात्
ज्ञानी को नहीं ज्ञान को अपनाओ और निमित्त में नहीं नित्य में श्रद्धा बढ़ाओ।

इस पर सुदृढ़ता से डटे रह,
इस अटल सत्य पर स्थिर बने रहोः-
ओ३म् अमर है आत्मा, आत्मा में है परमात्मा

सजनों अभी तक हमने जाना कि इन्द्रियों का स्वाभाविक धर्म या गुण विषयों में गमन करना है। इन्द्रिय निग्रह द्वारा विषयों की ओर से इनका निरोध करना ही साधना का विषय है। जानो ऐसा जितेन्द्रिय साधक ही वीर पुरुष कहलाता है। इसके विपरीत इन विषयों की प्राप्ति के लिए अनेकानेक उपाय करके प्रयत्नरत हो जाना कष्ट या दुःख का हेतु होता है और मानव को मुसीबतों और बन्धनों में ग्रस्त करने वाला होता है। अतः विषयी बन विकारग्रस्त होना, सुख अर्जित करने की बात नहीं होती अपितु अपने लिए आप मुसीबत

खरीद नाना प्रकार के कष्ट-क्लेशों में फँसने की बात होती है। विषयों के प्रति मानव का विशेष झुकाव या लगाव अनुराग या आसक्ति कहलाता है। इस आसक्ति या अनुराग में फँसने वाला पतिव्रत-पत्निव्रत धर्म हार बैठता है जबकि इसका अभाव ही इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करने का द्योतक होता है जिसके लिए सत्संग, आत्मचिंतन व आत्मज्ञान प्राप्ति की आवश्यकता होती है। इनके प्रभाव से विषयों की वासनाएँ कुंठित होने लगती हैं और वैराग्य पनपने लगता है। फलतः अपने यथार्थ स्वरूप को जानने की व संतोष-धैर्य अपनाकर निष्कामता से सच्चाई-धर्म की भक्ति करने की सच्ची जिज्ञासा उत्पन्न होती है। इसी जिज्ञासा के कारण इंसान मन व इन्द्रियों को विषयों के चिंतन से हटाकर, ब्रह्मचिंतन में रत कर देता है। इससे बुद्धि में सद्-विवेक जाग्रत होता है और मानव इन्द्रियों के भोगों और ऐश्वर्यों को अनित्य, दुःखदाई व क्षणभंगुर जानकर उनका त्याग करने में समर्थ हो जाता है।

सजनों इन्द्रियों के संदर्भ में पहले हमने ज्ञान धारणा की शक्ति, ज्ञानेन्द्रियों व उनके विषयों को समझा। ज्ञानेन्द्रियों को जानने के पश्चात् अब बारी आती है कर्मेन्द्रियों को समझने की। इस संदर्भ में सजनों जानो कि मनुष्य कर्मशील प्राणी है। कर्म करना उसका जन्मजात स्वभाव है। इसलिए वह कुछ न कुछ कार्य करता ही रहता है। कर्म सम्पादन में समर्थ इन्द्रियाँ, कर्मेन्द्रियाँ कहलाती हैं। बोलना, चलना, पकड़ना/ग्रहण करना, मूत्र त्याग, मल त्याग, ये शरीर के पाँच कर्म हैं। इन कर्मो को करने वाली पाँच शक्तियाँ यथा

वाणी, पैर, हाथ, उपस्थ और गुदा कर्मेन्द्रियाँ कहलाती हैं। इन इंद्रियों को हिला-डुला कर ही संबंधित क्रिया की जाती है। इन काम करने वाली इन्द्रियों को कर्म की शक्तियाँ भी कहते हैं। सजनों हमारी कर्मेन्द्रियाँ अपने व्यापार और प्रवृत्ति के लिये मूलतः ज्ञानेन्द्रियों पर निर्भर होती हैं इसीलिए कर्मेन्द्रियों की तुलना में ज्ञानेन्द्रियों का महत्त्व प्राथमिक माना जाता है और उनका समुचित प्रयोग करना अत्याधिक महत्त्व रखता है। कर्मेन्द्रियाँ भी ज्ञानेन्द्रियों की तरह वही करती हैं जो मन करवाना चाहता है या बुद्धि जैसा उन्हें निर्देश देती है। उदाहरणतः लिखने का काम हाथ करते हैं और चलने का पैर, लेकिन लिखने और चलने में हाथ-पैर तब तक प्रवृत्त नहीं होते जब तक बुद्धि निर्देश नहीं देती। इस तरह बुद्धि मन के द्वारा ज्ञानेन्द्रियों द्वारा प्राप्त आदेशों के अनुरूप इनसे कार्य कराती है। इस तथ्य को समझते हुए सजनों ब्रह्म विचारों के ग्रहण द्वारा, मन को नियंत्रित व बुद्धि को प्रकाशित व सचेत रखते हुए, इन्हें सही ढंग से संचालित करना अनिवार्य है।

सजनों जानो कि कर्मेन्द्रियाँ गतिशील व कर्म-निपुण होती हैं तथा अन्यों से उत्तेजित व प्रेरित हो कर्म करती हैं। कर्म निपुण होते हुए भी ये जड़ कहलाती हैं क्योंकि इन्हें अपने कर्म के भले-बुरे का बोध नहीं होता। वैसे तो इन कर्मेन्द्रियों को भोग का साधन माना जाता है पर जब यह अपनी गुणवत्ता को बनाए रख आत्मिक ज्ञान द्वारा अपने यथार्थ को जान लेती हैं तो निष्काम भाव से परोपकार करने में रत हो मोक्ष का साधन भी बन जाती हैं। यह है सजनों कुदरत की

करामात। जगत जंजाल में फँसा हुआ मानव इस करामात को नहीं समझ सकता।

आओ अब गहनता से कर्मेन्द्रियों यानि काम करने वाली इन्द्रियों की श्रृंखला में पहले वागेन्द्रिय के बारे में जानते हैं:-

वागेन्द्रिय/वाणी

वागेन्द्रिय का एक ही धर्म है बोलना, वर्णों, अक्षरों या ध्वनियों का उच्चारण करना अर्थात् भावों को शब्दों द्वारा अभिव्यक्त करना। मुँह से निकले हुए सार्थक शब्द या वचनों को वाणी कहते हैं। वाणी का प्रयोग कर्मेन्द्रिय में सर्वाधिक होते हुए भी हाथ, पैर, गुदा, शिशन के समान इसकी कोई स्थूलेन्द्रिय नहीं है। इस का वास जिह्वा के मूल-भाग में होता है।

आमतौर पर जिह्वा को वाणी भी कहा जाता है पर फिर भी जिह्वा वाणी नहीं है। वह तो रसना है क्योंकि रसास्वादन उसका धर्म है। निःसंदेह वाणी के बोलने में जिह्वा बहुत बड़ी साधन है क्योंकि उसके बोलने से ही सारे धर्म किए जाते हैं यानि कहीं इसका अग्र भाग, कहीं मध्य तो कहीं मूल भाग की सहायता से स्वरों व व्यंञनों यानि शब्दों का उच्चारण होता है पर फिर भी जिह्वा वाणी नहीं अपितु यह तो सहायक अंग है।

पशु, पक्षी, कीट, पतंगे, जानवर आदि सब बोलते हैं और मनुष्य के समान अपने भाव अभिव्यक्त करते हैं। जिस प्रकार विभिन्न देशों के रहने वाले व्यक्ति एक दूसरे की भाषा नहीं समझ पाते उसी तरह इनकी बोलियाँ हम नहीं समझ पाते।

इस तरह विभिन्न बोलियाँ वाणी का ही विषय हैं।

वाणी का ही मूर्त्त रूप लिपि है। वेद-शास्त्र, पुराण, धर्म ग्रन्थ सब वाणी के इसी लिपिबद्ध स्वरूप का उदाहरण है। जन साधारण के लिए वाणी ही व्यवहार का मुख्य साधन है। वाणी ही विचारों का आदान-प्रदान करती है। वाणी से ही मनुष्य आत्मिक तथा बुद्धिगत ज्ञान को प्रकाशित करता है। सत्संग के द्वारा वे विचार दूसरों तक पहुँचाता है और सांसारिक झंझट छोड़ कर आत्मिक उद्धार करने के प्रति प्रोत्साहित करता है। इसके अतिरिक्त जीवन काल के गहन अनुभवों को भी यह वाणी ही व्यक्त करती है। अतः यह कहना कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी कि 'पशु पक्षी तो संभव है पेट भरा होने पर बिना वाणी के रह जाएं पर मनुष्य बिना वाणी का प्रयोग किए नहीं रह सकता।'

स्पष्ट है सजनों मनुष्य के समस्त अंतर्भाव जैसे राग-द्वेष, प्रेम-शत्रुता, क्रोध-दया वाणी द्वारा ही अभिव्यक्त होते हैं। वाणी की श्लीलता और शिष्टता से व्यक्ति की योग्यता का स्तर बढ़ जाता है और मन शान्त रहता है। तभी तो सात्विक वृत्ति वाले सजनों की वाणी सत्ययुक्त, मधुर, प्रिय, शिष्ट और आकर्षक होती है तथा सदा ज्ञान, ध्यान, धर्म, प्रेम, सहानुभूति और सौहार्द को अभिव्यक्त करती है। ऐसी मधुर सरस वाणी हृदय को आकृष्ट कर लेती है और उखड़े दिलों को मिला देती है । पराये को अपना बना लेती है और अपने लिए प्राण तक न्योछावर करने को तत्पर कर देती है।

इसके विपरीत राजसिक प्रकृति वाले व्यक्तियों की वाणी

द्वेषपूर्ण यानि तीक्ष्ण, वाचाल और कटु होती है। वाणी की कटुता अति भयंकर है जिससे परस्पर मिले हुए मन भी उखड़ जाते हैं। आशय यह है कि इससे मित्र भी शत्रु बन जाते हैं और परस्पर विरोधाभास पनपने लगता है। इस तरह यह निंदा-चुगली, लड़ाई-झगड़े, वैर-विरोध तथा मुकद्दमें तक करवा देती है। यही नहीं खून, हत्या भी करवा देती है, लाठी, तलवार और बन्दूक तक की नौबत ला देती है। इसलिए तो सजनों सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में शरीर रूपी संसारी दरख़्त की बुरी हालत का वर्णन करते हुए कहा गया है:-

कर्मां दियां टहनियाँ लगियां वे,
कर्मां दियां टहनियाँ लगियां, संकल्प विकल्प दे पत्ते वे।
निंदया उसतत दे संगतरे मालटे,
कीड़ियां वाले हिन गुच्छे।।

निंदया उसतत दे संगतरे मालटे वे
निंदया उसतत दे संगतरे मालटे।
कीड़ियां वाले हिन गुच्छे,
साडी भुख त्रेह कित्थों मिटे।।

याद रखो कड़वा बोलने वाला इंसान रूखा होता है। वह किसी की सही या उचित बात को भी सह या झेल नहीं सकता इसलिए खीझता हुआ अपनी मनमत अन्यों पर लागू करने हेतु, सदा कर्कश वाणी द्वारा तीव्रता का वातावरण निर्मित करता है ताकि परस्पर झगड़ा हो। इस तरह उसकी हर क्रियाविधि द्वारा क्रोध के भाव का विकास होता है। यहाँ

तक कि स्वार्थ सिद्धि हेतु वह दूसरों को कौड़े बोल बोलकर उन पर कुठाराघात यानि कठोरतम वार करने से भी नहीं सकुचाता। इस विषय में आगे सजनों सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में इसी संसारी दरख़्त के अंतर्गत कहा गया है:-

पहली टहनी ए कंडियां वाली वे
पहली टहनी ए कंडियां वाली।
चोभां देवे ते पीड़ा दिखावे वे।।

दूजी टहनी है कौड़ी ज़हरीली सब नूं ज़हर पिलावे।
दूजी टहनी है कौड़ी ज़हरीली वे।।

दूजी टहनी है कौड़ी ज़हरीली सब नूं
ज़हर पिलावे पई सतावे।।

इसी कारण सजनों जिस किसी के घर में इस स्वभाव के व्यक्ति होते हैं, वह मजबूत से मजबूत घर भी उजड़ यानि वीरान हो जाते हैं। इस तरह उस बुरे इंसान के कारण, परिवार के हर सदस्य को संकट भरा जीवन जीने के लिए विवश होना पड़ता है। सजनों यह बुरा इंसान बन कष्टों को निमन्त्रण देने की बात होती है। परिणामतः जीवन की मधुरता अर्थात् सुंदरता पर ऐसा दाग लग जाता है जो देखने वालों को नहीं भाता। इसलिए तो इस ग्रन्थ में संसारी दरख़्त की बुरी हालत का जिक्र करते हुए यह भी कहा गया है:-

तीसरी टहनी है बोलियाँ गोलियां वाली।
वे तीसरी टहनी है बोलियाँ गोलियां वाली।।

कलेजियों पार हो जावे वे।
चौथी टहनी है अग्नि वाली आप जले अवर को जलावे।।

चौथी टहनी है अग्नि वाली वे चौथी टहनी है अग्नि वाली ।
आप जले अवर को जलावे कष्ट दिखावे ते पई सतावे।।

सजनों आज व्यक्तिगत स्तर पर मानव के मन में, घर-परिवार में व समाज में बढ़ता हुआ विद्रोह व आतंकवाद इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है। तभी तो कहते हैं कि शस्त्रों के घाव तो भर जाते हैं परन्तु ऐसी कटु वाणी के घाव कभी नहीं भरते। इस संदर्भ में याद करो मन्थरा की कटु वाणी को, जिसने रानी कैकेयी को उकसा कर पति-पत्नी में और भाई-भाई में भेद पैदा करने की कोशिश की और जिसके कारण राम को वनवास के दुःख भोगने पड़े और रानी कैकेयी ने अपना पति खो दिया। फलस्वरूप पूरे परिवार सहित प्रजा को भी उस कटुता का भोग दुःख रूप में भोगना पड़ा। दूसरी तरफ सजनों नियति का खेल देखो कि माँ द्वारा राज्य का प्रलोभन देने के बावजूद भरत माता की कपटपूर्ण नीति के हत्थे नहीं चढ़े और रामचन्द्र जी से अलग-थलग नहीं हुए। सजनों यह उन भाईयों की समझदारी का ही प्रतीक था कि अलग-अलग माँ की कोख से जन्म लेने के पश्चात् भी भाईयों की आपसी एकता भंग नहीं हुई और उनका यशगान युगों तक बरकरार रहा। इसी तरह सजनों याद करो महाभारत जैसे प्रलयंकर युद्ध को, जिसका प्रारंभ कटु वाणी से ही हुआ।

सजनों यह तो कुछ भी नहीं यदि वाणी का तामसी गुण किसी व्यक्ति में पनप जाए तो ऐसा व्यक्ति सदा उत्साहहीनता, अकर्मण्यता, अधर्म व अनाचार की बातें ही करता है। इस

तरह उसका लोक भी बिगड़ जाता है तथा परलोक भी बिगड़ जाता है। इसलिए तो कहते हैं कि वाणी क्षण में शांति और क्षण में उपद्रव खड़ा करवा सकती है। फूलों का हार भी पहनवा सकती है व थप्पड़ों की मार भी। अतः वाणी पर संयम रखने की महत्ता को समझो ताकि उपद्रव भी शांत हो जाए।

उपरोक्त विवेचना से सजनों स्पष्ट होता है कि जहाँ मधुरता का भाव अमृत है वहाँ कटुता का भाव विष समान है। इसलिए तो श्री कृष्ण को मधुपति कहते हैं। याद रखो कि मधुमति समाधि की वह अवस्था होती है जो अभ्यास तथा वैराग्य के कारण रज और तम के दूर हो जाने व सत्वगुण का पूर्ण प्रकाश होने पर प्राप्त होती है। तभी तो कहते हैं कि मधु/कोमल वचन सुनने में प्यारे लगते हैं और जिस घर में मधुरता का वातावरण होता है उस घर में सदा बहार के रूप में बसंत ऋतु छाई रहती है यानि हर कोई प्रसन्नता के वातावरण से आनन्दित रहता है। अतः इस उपलब्धि के दृष्टिगत हमें कटुता का भाव छोड़, अपने अन्दर मधुरता के भाव का विकास करना चाहिए ताकि हम चारित्रिक रूप से सबको सुंदर लगें।

याद रखो सजनों वाणी में सात्विकता ही मनुष्य को पशुता से ईश्वरत्व की ओर ले जाती है। अतः इस उपलब्धि के दृष्टिगत वाणी पर संयम अत्यन्त आवश्यक है। इस संदर्भ में सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ जो हमें संदेश दे रहा है उसे अमल में लाने हेतु ध्यान से सुनोः-

महाबीर जी के मुख के शब्द

पिछली बात न फोल ओ बन्दे पिछली बात न फोल,
पिछली बात न फोल।
आयंदा अपना जीवन बना लै,
किस्मत तेरे कोल पिछली बात न फोल।।

किस्मत अपनी आप बनावे,
सो सो कलम लिखदी जावे।
जो जो कमाई खरीद लियावे,
सो सो प्रभु अग्गे रखदी जावे।
मिट्ठे बोलो बोल ओ बन्दे,
मिट्ठे बोलो बोल, पिछली बात न फोल।।

जो जो खरीद प्रभु पेश आवे,
सो सो किस्मत लिखे ते खोल सुनावे।
प्रभु कोल आवे पैग़ाम
लिखत करो प्रवान जो जो लिखदी जावे।
न होवो डोल मडोल ओ बन्दे,
न होवो डोल मडोल, पिछली बात न फोल।।

जो जो दिने ओ कर्म कमावे,
सो सो जाँचदा तोलदा आवे।
ज्यों ज्यों प्रभु दे अग्गे चलदा आवे,
त्यों त्यों किस्मत खुलदी जावे।
सांवले चरणां दे राहवो कोल ओ बन्दे,
चरणां दे राहवो कोल पिछली बात न फोल।।

किस्मत दे हिन चार पहिए,
काम, क्रोध, लोभ, मोह पंजवां है अहंकार।
सिर ते है बोझ भारी, है कुल नाशक कुल वैरी।
जन्म बैठा रोल ओ बन्दे,
जन्म बैठा रोल, पिछली बात न फोल।।

ओ किस्मत मुकी पई ए मुक गया अहंकार।
सम संतोष है धैर्य सत् शास्त्र दा विचार।।
मनुराज नूं छोड़ के पावे असली सिंगार।
रहो चरणां दे कोल ओ बन्दे,
रहो चरणां दे कोल, पिछली बात न फोल।।

ध्वनिः- किस्मत ओहदी खुल गई खुल गए किवाड़।
जन्म उसने जित लिया जैं पाया राम दीदार।।

अंततः सजनों अपनी सोई किस्मत जगाने हेतु आत्मनियंत्रण द्वारा परस्पर व्यवहार के समय अपनी वाणी को मधुर रखने का दृढ़ संकल्प लो ताकि उखड़े दिल मिल जाएँ और सारे एकता का वातावरण निर्मित कर सुख में आ जाओ। सबकी जानकारी हेतु, इस से आगे वाणी संयम के विषय में बातचीत हम आगामी सप्ताह करेंगे।

दिनाँक 10 सितम्बर 2017 का सबक़

कर्मेन्द्रियों का समुचित कार्य-2

(वागेन्द्रिय-वाणी संयम)

साडा है सजन राम, राम है कुल जहान

अर्थात्

ईश्वर हमारा मित्र/प्रियतम सर्वव्यापक है, उसी को जानो, मानो व वैसे ही गुण अपनाओ।

शब्द है गुरु, शरीर नहीं है,

अर्थात्

ज्ञानी को नहीं ज्ञान को अपनाओ और निमित्त में नहीं नित्य में श्रद्धा बढ़ाओ।

इस पर सुदृढ़ता से डटे रह,

इस अटल सत्य पर स्थिर बने रहोः-

ओ३म् अमर है आत्मा, आत्मा में है परमात्मा

सजनों गत सप्ताह हमने वागेन्द्रिय की क्रियाविधि के विषय में जाना। आओ अब उससे आगे वाणी संयम के विषय में जानते हैंः-

वाणी संयम

सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में वचन के संयम को जिह्वा स्वतन्त्र के रूप में व्यक्त किया है। जिह्वा स्वतन्त्र अर्थात् वाणी द्वारा शब्दों की निर्भयतापूर्ण सार्थक अभिव्यक्ति। सजनों सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में हमें अपनी वाणी अर्थात्

वाक् शक्ति जिसे सरस्वती भी कहते हैं को कंचन रखने के लिए इस प्रकार कहा गया है:-

नी सरस्वती तूं कंचन हो जा,
कूड़ा आड़ा कढ हीरे लाल जवाहर दिखा।
बखेड़े छड बगीची ला,
नी सरस्वती सोहणा मन्दिर सजा।।

सरस्वती को कंचन रखने के लिए सजनों गाली-गलौच व कटु शब्द बोलने का स्वभाव त्याग कर, निज यथार्थ, वास्तविकता या सत्य की जानकारी से परिचित होना आवश्यक है। तब ही मानव अंतर्जगत व बहिर्जगत में जो कुछ भी प्रत्यक्ष होता है, उस घटित बात की जानकारी का, अपनी वाणी द्वारा वस्तुतः यानि सचमुच इस्तेमाल करने के योग्य बन सकता है। याद रखो ऐसी क्षमता धारण करने पर ही वह चंचलता रहित संतोष, धैर्य, सच्चाई, धर्म में बने रह, कभी भी अपनी वाणी द्वारा उदासीनता के प्रतीक, असभ्यता के डरावने भाव को प्रकट नहीं करता और एक बुद्धिमान इंसान की तरह अपने नित्य स्वरूप से नाता जोड़े रख सच्चाई-धर्म की राह पर बने रहता है। इसलिए तो कहा गया है:-

सरस्वती कंचन होवे,
नाम ते ध्यान होवे।
भक्ति ते शक्ति होवे, प्रेम ते मस्ती होवे,
एहो दिल मँगदा, एहो दिल मँगदा।।

स्पष्ट है सजनों वाणी संयम से अभिप्राय सीमित, सन्तुलित,

सत्य, सार्थक और मधुर वचन बोलने से है। इस हेतु सजनों याद रखोः-

झूठ पहरेवा लहाणा जे सजनों,
जेहड़ा करदा जे औखा।
सच दा पहरेवा पाना जे,
जेहड़ा करदा ओ सौखा।

अतः

सच्ची ज़बान सच्चा करो हृदय,
ओ सच्चाई नाल भर लौ सजनों,
दोनों नैन विशाल।।

सजनों सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ से उद्धृत उपरोक्त पंक्तियों को समझने वाले का नज़रिया, सत्यतायुक्त हो जाता है। फलतः ऐसा मानव स्वतः ही समभाव में स्थित हो जाता है।

इस मकसद में कामयाब होने के लिए सजनों कब, कहाँ, क्या, कितना, कैसा और कैसे बोलना है इस के प्रति सचेत रहना है अर्थात् हमें केवल आवश्यकता अनुसार प्रिय और हितकारी वचन ही बोलने की आदत डालनी है और उस क्रिया के समय किसी शब्द के यथार्थ अर्थ के विपरीत कुछ कहकर किसी को अपनी बातचीत के जाल में फँसा कर धोखा नहीं देना अर्थात् चतुरता का भाव नहीं अपनाना। इस तरह सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अनुसारः-

जिह्वा गल बात उल्टे,
फिर ख़्याल नूं पलटा खवाओ।

हम हैं सजन तुम हो सजन,
एहो नवीन पोशाक सजनों पाओ, ते सजनां नूं पवाओ।

निर्दोष बात करने का चलन अपना कर अपनी वाणी के गुण का वास्तविकता से प्रयोग करना है। यह भी याद रखना है कि अपनी वास्तविक पहचान में बने रहने हेतु परस्पर बातचीत के समय या किसी के सम्मुख अपना अभिप्राय प्रकट करते समय वचन की कठोरता, गाली-गलौच युक्त अपशब्दों असत्य-भाषण व निंदा-चुगली का प्रयोग करना वर्जित है क्योंकि सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ कह रहा हैः-

सजनों निंदिया न करो, झूठ नूं देवो छड,
ध्यान लावो महाराज दा,
ध्यान लावो महाराज दा।
सजनों चुगलियाँ चोरियाँ छडो,
ध्यान लावो महाराज दा।
जिह्वा गाली गलूचे न कढ ओय,
सब नूं सजन भाव तूं सड ओय।
निंदिया चुगली करनों बच ओय।

याद रखना है कि सारे संबंधों के निर्वहन, समस्त विचारों और व्यवहारों के आदान-प्रदान का महत्वपूर्ण साधन वाणी ही है। अतः सच्चेपातशाह जी के वचनानुसारः-

घर में बोलचाल भी नर्म हो, गरजकर नहीं बोलना।

याद रखो जिह्वा का अनुचित, निरर्थक प्रयोग जहाँ व्यवहार, स्वभाव, संबंधों व व्यक्तित्व का नाश करता है वहीं वाद-विवाद, तर्क-वितर्क, लड़ाई-झगड़े, वैर-विरोध व शक्ति

के अपव्यय का भी कारण बनता है। अतः :-

वाद विवाद किसे नाल न कीजे,
जिह्वा राम नाम रस पीजे।।

यानि वाचिक स्वच्छता के लिए प्रति क्षण भगवान के नाम का उच्चारण, सिमरन व भजन कीर्तन करना है। इस प्रकार सर्वदा नम्रतापूर्वक बोलते हुए विनयशील बने रहना है यानि सभी के साथ प्रेमपूर्वक हँसकर बोलना है।

सजनों कदाचित् ऐसी बात नहीं करनी जिससे बात बढ़े व जिससे बात के दो अर्थ निकलें ताकि हमारे भावों की शोभा बनी रहे यानि हमारा बोलने का अभिप्राय शब्दों के नियत अर्थ द्वारा ही प्रकट होना चाहिए। भूल कर भी झूठी बातों का आडम्बर नहीं रचना यानि जो बात मुख से निकले वह ठीक घटे। ऐसा सुनिश्चित करने पर ही हम अपने स्वतन्त्र विचारों को निर्भयता से अभिव्यक्त कर सकते हैं और उन्हें उचित आदर मिल सकता है। अतः कुछ भी बोलने से पूर्व उसे विवेक से जाँचना-तोलना है व वाणी से सभी का सम्मान करना है यानि सबसे जी-जी का, सजनता का व्यवहार करना है। ऐसा करने से उखड़े दिल मिल जाएंगे। इस संदर्भ में सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ कह रहा है:-

जिह्वा सजन ख़्याल सजन,
सजन नज़रों में पहचान।
हम हैं सजन तुम हो सजन,
सजनों सजन सजन ही मान।।
सजनों सजन बोलचाल ही सीखो,

सजनों सजन करो प्रवान।
कंचन हूँ मैं आप, कंचन कुल जहान,
कंचन जड़ चेतन प्रकाशे, कंचन कुल सगली मान।।

अर्थात्

सरस्वती कंचन भई, कंचन करे कुल जहान।
महाबीर पूरन मिल गए, ज्योति दा दर्शन करान।।

सजनों जिह्वा की स्वतन्त्रता के लिए न ही किसी को भला-बुरा कह कर दंड का अधिकारी बनना है और न ही बीती हुई बातों का अर्थात् भूतकाल का रोना, रोना है क्योंकि सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ कह रहा हैः-

पिछली जो गुजरी जो बीती विहाणी,
ख़्याल विच न बात ओ लियाओ।
इक आप इक सजन जाणी,
इक इक सारा सजन पहचाणी।।

हमें जिह्वा स्वतन्त्र रखने हेतु बोलने में संयम रखते हुए अपनी वाणी रूपा शक्ति का हितकर प्रयोग करने के लिए प्रवीण बनना होगा ताकि हम परस्पर सजन भाव का वर्त वर्ताव करते हुए मिलकर एकता व शांतिमय जीवन जीने में कामयाब हो सकें। तभी तो कहा गया हैः-

साजन जी सजन बात करन रल मिल के,
बात करन रल मिल के, करन हस खिल के।।

साजन जी जिह्वा कर जावे उन्हां दी चुप,
फिर ख़्याल न राहवे सोचां विच।

सजनों बात करो मिलजुल के,
बात करो हस खिल के।।

इस संदर्भ में हमें वाणी का धर्म या भाव पर धर्मसंगत स्थिर बने रहने हेतु मौन व्रत का महत्त्व समझना होगा ताकि हम धर्म च्युत न हो जाएँ। इसीलिए तो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है:-

वृत्ति मौन की होनी चाहिए। मौन का नतीजा है विश्राम।
खलबली को हटाते हुए सब सजन विश्राम पावें।।

सजनों यह एक बहुत बड़े विद्वान यानि बृहस्पति की तरह अपनी वाणी/वचन/शब्द का प्रयोग करते हुए निपुणता से समभाव-समदृष्टि के सबक अनुसार, सजन भाव का वर्त-वर्ताव करने की बात है। इस संदर्भ में जानो श्री विष्णु भगवान ही वाणिजित हैं इसलिए तो वह सही अर्थों में जगत व्यापार कर पाते हैं। आप सब भी सजनों उनकी तरह निर्लिप्तता से जगत व्यवहार करने में कामयाब हो सको इस हेतु:-

हो हो हो सजनों जिह्वा दा कड्डो वल,
हो हो हो मुश्किल हो जाये तुहाडी हल।
जेहड़ी बीत गई, जेहड़ी आने वाली सारी तुहाडी
जायेगी टल, सारी तुहाडी जायेगी टल।।
हो हो हो हनुमान जी दे वचनां दी पालना करो,
हो हो हो उन्हां दी बात फड़ो, पकड़ो इक इक गल।

सजनों सच्चेपातशाह जी यहाँ जिह्वा का वल निकालने के संदर्भ में स्पष्ट करते हुए कह रहे हैं:-

जब भी बात करें शरीर पर बिलकुल न जावें। इस प्रकार जिह्वा का वल निकालकर मुकम्मल तौर पर शरीरों का ध्यान हटाना है।

इस सन्दर्भ में सजनों जान लो कि जब तक इन्सान शरीरों में फँसा रहता है उसकी जिह्वा का वल नहीं निकल सकता। ऐसा इसलिए कह रहे हैं क्योंकि जब इंसान आत्मसत्य को विस्मृत कर, शरीरों के साथ ख्याल को जोड़ देता है तो उसकी दृष्टि शारीरिक स्तर तक ही सीमित हो जाती है। परिणामस्वरूप व्यक्तिगत स्वभावों में फँसने के कारण इंसान की जिह्वा स्पष्टता खो देती है यानि परस्पर एक-दूसरे की निंदा-चुगली करने व झूठ बोलने के स्वभाव में फँस परतन्त्र हो जाती है। इसके विपरीत जो आत्मयथार्थ को याद रखते हुए, आत्मस्वरूप के साथ अपने ख़्याल को जोड़ता है उसका दृष्टिकोण व्यापक हो जाता है और वह सबमें अपने असलीयत स्वरूप को निहारते हुए परस्पर जी-जी का आदरसूचक व्यवहार करता है। सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अनुसार सजनों याद रखो जो इंसान पूर्णतः प्रफुल्लित होता है वह सम्पर्क में आने वाले के यथार्थ का सरलता से प्रत्यक्षीकरण कर उसे जान सकता है। इस प्रकार नश्वर शारीरिक बंधनों से उबर संयोग-वियोग, ख़ुशी-ग़मी, मान-अपमान आदि से आजाद हो आत्मिक स्वरूप में स्थिर हो जाता है। सजनों यह विचार करने योग्य बात है। इस बात का विचार कर सम्भलने पर ही वाणी शक्ति का सही प्रयोग कर पाओगे। इस हेतु अपनी दैनिक दिनचर्या का अवलोकन करो और जानो कि मैं दिन-भर कैसे बोलता हूँ? क्या मैं बात-बात पर संयम खो देता हूँ? अगर हाँ तो मैं किन

परिस्थितियों में ऐसा करता हूँ? इस प्रकार आत्मनिरीक्षण कर जीवन की उन अच्छी या बुरी परिस्थितियों को अपने समक्ष रखो जिनके आगे विवश होकर आप ऐसा करते हो। इस प्रकार विवेकशक्ति के प्रयोग द्वारा घटित परिस्थितियों के औचित्य की परख कर दोबारा वैसा करने की भूल मत करो। ऐसा करने से सजनों जेहड़ी बीत गई, जेहड़ी आने वाली सारी बातें हल हो जाएँगी।

इस संदर्भ में सजनों यह भी जान लो कि जब तक जिह्वा स्वतन्त्र नहीं होती तब तक संकल्प स्वच्छ व दृष्टि कंचन नहीं हो पाती। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है :-

'सजनों जब तक हम बाहर की सफाई नहीं रख सकेंगे, अन्दर की सफाई सजनों किस तरह कर सकेंगे। बैरूनी वृत्ति को धारण करते हुए और अपने गृहस्थ आश्रम को ठीक चलाते हुए हम ने अन्दरूनी वृत्ति को पकड़ना है और फिर शारीरिक स्वभावों की सफाई करनी है'।

इस संदर्भ में जिह्वा जो हमारी वागेन्द्रिय है, उसकी स्वतन्त्रता बैहरूनी वृत्ति की सफ़ाई के अंतर्गत आती है और संकल्प जिसका अभिप्राय मुख्यतः इच्छा शक्ति व कामनाशक्ति से लिया जाता है, वह मन में उत्पन्न होता है, इसलिए इसे अन्दरूनी वृत्ति की सफ़ाई का मुख्य अंग माना जाता है। जिह्वा स्वतन्त्र व संकल्प के स्वच्छ होने पर दृष्टि अपने आप ठीक हो जाती है।

उपरोक्त विवेचन से सजनों स्पष्ट होता है कि वाणी के शुद्ध

प्रभाव से हृदय पवित्र हो जाता है जिससे पाप कर्मों से छुटकारा मिलता है और मानव पुण्य कर्म कर आत्मज्ञान का अधिकारी हो जाता है। इस प्रकार वाणी किसी को भी सुसंस्कृत सभ्य बनाने में विशेष भूमिका निभाती है। अतः जीवन में सफ़लता प्राप्त करने हेतु अर्थात् सत्यनिष्ठ और धर्मपरायण बनने के लिए सदा अर्थसहित, उपकारी और गुणकारी शब्दों का ही प्रयोग करना सीखो और शब्द के अर्थ और भाव को जान-समझ कर जो ठीक, यथार्थ, सच और वास्तविक हो वह ही नम्रता और मधुरता से बोलो। हमेशा निर्दोष बात ही करो और अपने वचन पर सदैव खरे उतरो। हमेशा सुनो अधिक और बोलो कम। यही एक शिष्ट व्यक्ति की पहचान है। इस प्रकार वाणी द्वारा सभी के हृदयों में प्रेम, भक्ति और विश्वास भर निष्काम भाव से उन्हें परोपकार करने के लिए प्रेरित करो और विशेष बुद्धि इंसान बन जाओ।

सबकी जानकारी हेतु वागेन्द्रिय के पश्चात् आगामी सप्ताह हम जननेन्द्रिय के विषय में जानकारी प्राप्त करेंगे। तब तक अपनी वाणी को विश्राम दो। विश्राम देने का अर्थ है जिह्वा वल न खाए और आप स्वतन्त्रपूर्वक सबसे अच्छा-अच्छा व मीठा बोलते हुए एकता, एक अवस्था में आ जाओ।

दिनाँक 17 सितम्बर 2017 का सबक़

कर्मेन्द्रियों का समुचित कार्य-3
(जननेन्द्रिय/उपस्थेन्द्रिय)

साडा है सजन राम, राम है कुल जहान

अर्थात्

ईश्वर हमारा मित्र/प्रियतम सर्वव्यापक है, उसी को जानो, मानो व वैसे ही गुण अपनाओ।

शब्द है गुरु, शरीर नहीं है,

अर्थात्

ज्ञानी को नहीं ज्ञान को अपनाओ और निमित्त में नहीं नित्य में श्रद्धा बढ़ाओ।

इस पर सुदृढ़ता से डटे रह,
इस अटल सत्य पर स्थिर बने रहोः-

ओ३म् अमर है आत्मा, आत्मा में है परमात्मा

सजनों क्या आप जानते हो कि प्रत्येक रविवार साप्ताहिक सबक़ को आरम्भ करने से पूर्व हम ये ब्रह्म विचार क्यों बोलते हैं?

मौन।

जानों कि ये विचार हमारे विशुद्ध जीवन की आधारशिला हैं। अगर हमारा आचार-विचार व व्यवहार उपरोक्त विचारों के अनुकूल ढल जाता है तो हमारे चरित्र/व्यक्तित्व की नींव सुदृढ़ हो सकती है और हम सर्वरूपेण स्वस्थ रह प्रसन्नचित्तता से पावन जीवन जीने के योग्य बन सकते हैं।

चूंकि सजनों वर्तमान युग यानि कलियुग में इन्सान अच्छी बात जल्दी भूल जाता है इसलिए उसकी यादगीरी में इस सत्य को सुदृढ़ता से बिठा कर, उसी अनुसार उसकी मानसिकता व व्यवहारिकता को ढालने के लिए ये ब्रह्म विचार बार-बार बोले जाते हैं। याद रखो इन्हें आत्मसात कर अपने मन-वचन-कर्म द्वारा प्रयोग में लाने पर ही हमारा मानसिक सन्तुलन ठीक रह सकता है और हम चरित्रवान, ओजस्वी व तेजस्वी बन उस परमात्मा के निमित्त जगत के सब कर्त्तव्य हँस कर कुशलतापूर्वक निभाते हुए, अपना जीवन संवार सकते हैं।

कर्मेन्द्रियों के समुचित कार्यों के संदर्भ में सजनों गत सप्ताह हमने वागेन्द्रिय के विषय में जाना। वाणी के अतिरिक्त जो अन्य अत्याधिक प्रभावी कर्मेन्द्रिय है वह है उपस्थेन्द्रिय/जनेन्द्रिय। आओ इसे समझते हैं:-

जननेन्द्रिय/उपस्थेन्द्रिय

उपस्थ यानि वह इन्द्रिय जिससे प्राणियों की उत्पत्ति होती है। इसका सामान्य और स्वाभाविक कार्य तो मूत्रत्याग है पर विशेष कर्म वीर्य विसर्जन है यानि संभोग (स्त्री के साथ पुरुष के समागम) द्वारा संतानोत्पत्ति करना है।

स्पष्ट है सजनों मूत्र के रूप में शरीर के तरल मल व विषाक्त अशुद्धियों को निकालने की दृष्टि से उपस्थेन्द्रिय की भूमिका अपरिहार्य तो है ही, साथ ही वीर्य विसर्जन द्वारा प्रकृति की परम्परा चलाए रखने में सहयोगी होने के नाते यह सब कर्मेन्द्रियों में प्रधान व अति शक्तिशाली भी है। अन्य शब्दों में

यह इन्द्रिय तो छोटी होती है परन्तु प्रजनन क्षमता के कारण इसकी शक्ति प्रबल होती है। इस के कर्म अर्थात् काम भाव पर विजय पाना बड़ा कठिन होता है। संसार के सभी प्राणियों को इसने कामासक्त कर अपना दास बना रखा है और यही कर्मबंधन यानि जन्म-जन्मांतर तक प्राणी को विषयों में फँसा अपने मोहपाश में बाँधे रख अपना अनमोल जीवन गँवाने पर विवश कर देती है। कहने का आशय यह है कि इसी इन्द्रिय के बंधन में फँसा इन्सान, कुरस्ते पर यानि दुष्चरित्रता की राह पर अग्रसर हो, अपना चारित्रिक सर्वनाश कर जीवन का सारा खेल बिगाड़ बैठता है। फिर वह न स्वस्थ रह सकता है न विरक्त। इस तरह इसके दुष्प्रभाव से ग्रसित वह अचेतन इन्सान अपना घरबार सब तबाह कर बैठता है। यह तबाही फिर इतने भयंकर परिणाम दिखाती है कि उसका सब कुछ ही लुट जाता है। यही नहीं अपना लुटने के साथ-साथ, वह कामरस का रसिया फिर दूसरों का सर्वस्व लुटने से भी नहीं सकुचाता। इस तथ्य का परिणाम आज की भयावह परिस्थितियों के रूप में सबके सामने ही है।

इस विषय में यह भी जान लो कि कलियुग में कोई-कोई विरले विवेकशील जितेन्द्रिय प्राणी ही अपने आत्मबल व आत्मज्ञान यानि जप, तप, संयम, त्याग, ब्रह्मचर्य और वैराग्य द्वारा इस इन्द्रिय पर विजय प्राप्त कर इसके बंधन से मुक्ति प्राप्त कर सकते हैं। अन्य शब्दों में सात्विक भाव से युक्त कोई विरला ब्रह्मचारी इन्सान ही इसके सदुपयोग द्वारा अपनी व अपनी संतानों की तकदीर बदल, समाज को सदाचार की राह दिखा सकता है।

इस संदर्भ में जानो कि जहाँ मूत्र शरीर के रस का निकृष्टतम भाग है, वहीं वीर्य शरीर के भोजन का सर्वोत्तम भाग है। वीर्य शरीर का ओज व बल है। इसी से शरीर में कांति आती है। वैद्यक के अनुसार जो कुछ भी हम खाते हैं 40 दिन में जा कर रस, रक्त, माँस, मेदा, अस्थि आदि बनते-बनते अन्त में वीर्य बनता है। 40 सेर अन्न से केवल एक तोला वीर्य बनता है। दीपक में तेल के समान यह स्थूल शरीर का जीवन है। इसकी एक-एक बूँद की रक्षा करनी चाहिए क्योंकि यह अमृत है। इसी से बुद्धि तत्त्व पुष्ट होता है यानि उच्च बुद्धि, उच्च ख़्याल होता है। वेदों अनुसार वीर्य रक्षा से ही मृत्यु पर विजय प्राप्ति होती है। वीर्य रक्षा की महिमा महान है। इसी पर मन और बुद्धि के, दिल और दिमाग के व आत्मा और परमात्मा के योग की पूर्णता निर्भर है। यद्यपि वर्तमान युग में कोई इसकी महत्ता नहीं समझ रहा तथापि इसकी रक्षा ही परम धर्म है। अतः किसी भी प्रकार के कुसंग में पड़कर इस जीवन तत्त्व को नहीं गँवाना चाहिए।

जानो कि सृष्टि चक्र को चलाने और वंश परम्परा को बनाए रखने के लिए वीर्य में 84 लाख योनियों के सृजन का बीज निहित है। पशु, पक्षी, मानव, कीट, पतंग सब ही प्राणियों की उत्पत्ति इससे होती है। इसी के द्वारा प्राणी गर्भाधान कर वंश परम्परा स्थिर रख सकता है। मानव का प्रजनन भी इसी के द्वारा होता है।

इस संदर्भ में ध्यान दो कि प्रकृति के सब प्राणी ऋतुगामी हैं। ऋतु आने पर यानि प्रजनन का समय आने पर संयुक्त हो अपना वंश चलाते हैं पर मानव जो सब प्राणियों में बुद्धिजीवी

है, वह समस्त प्राकृतिक व शास्त्रीय मर्यादाओं को तोड़, अपनी बुद्धि का प्रयोग विपरीत दिशा में करते हुए भोग विलास को ही उपस्थ का धर्म समझ बैठा है। इसलिए तो ऋतु यानि समय का समस्त विचार भुला कर दिन-रात मुँह काला करने को ही सुख का सार मान, घोर अनाचार व पाप कर रहा है।

सजनों इस परिप्रेक्ष्य में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण बात जो हमारे लिए समझना अनिवार्य है वह यह है कि अन्य भोग योनियों का धर्म तो प्रजनन हो सकता है परन्तु मानव का नहीं। ऐसा इसलिए क्योंकि अन्य योनियाँ मात्र भोग योनियाँ हैं, परवश हैं, कर्म योनियाँ हैं परन्तु मानव योनि तो वह योनि है जिसके द्वारा मोक्ष प्राप्ति यानि परमपद प्राप्ति संभव है। इस महान कार्य की सिद्धि के लिए तो 84 लाख जूनों की सजा भुगतने के पश्चात् यह मानव देही प्राप्त हुई है। यदि अब भी मोक्ष यानि परमपद प्राप्ति का यत्न न किया तो न जाने कितने युगों के लिए लाख चौरासी के चक्र में पड़ कर फिर भटकना पड़ेगा और नाना प्रकार की यातनाएँ सहनी पड़ेंगी। अतः वीर हनुमान की तरह अखंड ब्रह्मचर्य व्रत को धारण कर मोक्ष प्राप्ति सहज करो और पथभ्रष्ट होने से बचो। इस हेतु अप्राकृतिक, अस्वाभाविक काम वासना का दमन करो और रति राग से परे हो, अपने अन्दर वैराग्य की भावना प्रबल करो और आत्मिक ज्ञान द्वारा ब्रह्म विचार धारण कर उन का पालन करो। यह मंजिल प्राप्ति को सुगम बना देगा यानि जितेन्द्रिय बना अनंत, सुख-शांति व आनन्द प्रदान करेगा।

उपरोक्त विवेचना से सजनों स्पष्ट होता है कि शारीरिक रक्षा

के लिए जननेन्द्रिय/उपस्थेन्द्रिय का संयमित प्रयोग करना अनिवार्य है जिसके लिए आवश्यकता है मनुष्य को मुख्यतः अपनी कामवासना यानि संभोग की इच्छा, भोगविलास व व्यभिचार पर नियंत्रण रखने की। यह नियंत्रण आता है ब्रह्मचर्य बल से। ब्रह्मचर्य, वीर्य को रक्षित करने हेतु लगाया जाने वाला प्रतिबंध है। वीर्य की एक बूँद में हज़ारों जीव होते हैं। भोगइच्छा से वीर्य का नाश जीव-हिंसा कहलाता है। अतः शास्त्रानुसार केवल सन्तानोत्पत्ति यानि इस सृष्टि के संचालन के प्रयोजन से ऋतुकाल में इसका निष्पादन सुखकारी व पापरहित होता है। इसलिए संयम में रहते हुए ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करने को ही मंगलमय माना गया है। इस संदर्भ में सजनों उपनिषद् में कहा गया हैः-

'मन, वचन एवं शरीर के द्वारा स्त्रियों के सहवास का त्याग और ऋतुकाल में मात्र अपनी ही पत्नी से सम्बन्ध रखना ब्रह्मचर्य कहलाता है या फिर मन को काम, क्रोध आदि शत्रुओं से बचाकर, परब्रह्म अविनाशी परमात्म तत्त्व के ध्यान में लगाए रखना सबसे श्रेष्ठ ब्रह्मचर्य है।' इस परिभाषा के अनुसार ब्रह्म के चिन्तन मनन में, नित्य तल्लीन रहने वाला व्यक्ति ही सच्चा ब्रह्मचारी कहलाता है।

ब्रह्मचर्य रक्षा से आभा, दीप्ति, कांति, साहस, दृढ़ता, प्रभावकारिता, गौरव, मज़बूती, प्रबलता, सामर्थ्य व ओज की रक्षा व वर्धन होता है। इससे मन की चंचलता नष्ट होती है, बुद्धि और स्मृति में अद्भुत वृद्धि होती है तथा उत्तम कीर्ति व यश की प्राप्ति होती है। इसके बल पर मनुष्य कठिन से कठिन दुःसाध्य कार्य भी कर सकता है और बड़ी से बड़ी

सफलता प्राप्त कर सकता है। यह व्यक्तिगत आकर्षण शक्ति यानि तेजस्विता और उत्तम स्वास्थ्य का रहस्य है व दमकती देह, दीर्घ जीवन, सशक्त मस्तिष्क, हृदयानन्द और आकर्षक व्यक्तित्व का स्वामित्व प्रदान करने वाला है। ब्रह्मचर्य का पालन करने वालों की सन्तान भी तेजस्वी और निरोगी होती है। संक्षेपतः ब्रह्मचर्य से ही शक्तिसंचय, ज्ञान का प्रकाश, तप की वृद्धि, लौकिक सुख एवं पारमार्थिक सुख की प्राप्ति होती है।

इसके विपरीत ब्रह्मचर्य के नाश से न केवल शारीरिक-मानसिक स्वास्थ्य और चरित्र का समूल विनाश होता है अपितु विवाह उपरांत का समस्त भावी जीवन भी ख़तरे में पड़ जाता है। शीघ्र ही बल, बुद्धि, तेज, आयु, स्मृति और धन का क्षय हो जाता है और शरीर नाना प्रकार के भयावह रोगों से ग्रसित हो काल मुख का ग्रास बन जाता है। मन बुराईयों, से भर जाता है और मनोविकारों से ग्रसित हो पुनः- पुनः मानसिक पाप में प्रवृत्त करता है। इससे धृष्टता, उद्दण्डता व अशिष्टता जैसे अनेक दुर्गुण भी व्यवहार में सम्मिलित हो जाते हैं। परिणामस्वरूप जीवन अनियमित, उच्छृंखल एवं अधोगामी हो जाता है। अतः ब्रह्मचर्य रक्षा के लिए सदा याद रखो कि मनुष्य संयम तो सदा रख सकता है, पर भोग सदा नहीं कर सकता। इसलिए मन में वासनाओं का स्फुरण न होने दो क्योंकि मन में विकार आ जाने पर ही शील यानि संयम भंग हो जाता है। यह जानते-समझते हुए न तो कोई ऐसी क्रिया करें, न ही ऐसा संग करें तथा न ही ऐसे पदार्थ का सेवन करें जिस से वीर्य की हानि हो।

मत भूलो कि काम-क्रीड़ा संबंधी अश्लील बातें, गंदे साहित्य का पठन या उस पर विचार-विमर्श व मनन, काम-क्रीड़ा संबंधी छेड़छाड़, हँसी मज़ाक, गंदी चेष्टाएँ, अश्लील संकेत, छुप कर ऐसे व्यक्ति का या दृश्य का दृश्यांकन जिससे विषय भोग की इच्छा उत्पन्न हो, कामोद्दीपक पदार्थों या व्यक्ति का स्पर्श, संभोग की पुनः - पुनः इच्छा या सम्भोग्य व्यक्ति की याद, जान-बूझ कर सुख इच्छा हेतु ऐसे कार्य या क्रिया का करना जिसे वीर्यपात हो आदि सब ब्रह्मचर्य के नाश के उपाय हैं।

इस नाश से बचने हेतु राजसिक व तामसी भोजन का सेवन करने से बचो अर्थात् भोजन में उत्तेजक पदार्थों यथा अंडा, माँस-मदिरा, नशीले पदार्थ इत्यादि मत लो। सत्संग के द्वारा कुसंग को सर्वथा त्याग कर सदाचारी बनो। धार्मिक ग्रन्थों का नित्य नियमपूर्वक स्वाध्याय व मनन करो। इससे बुद्धि शुद्ध होगी और मन में गंदे विचार नहीं आएँगे। परमात्मा का नित्य स्मरण, चिंतन व ध्यान करते रहो। संसार की नश्वरता व आत्म तत्व की अनश्वरता को जानने का यत्न करो।

अंततः याद रखो ब्रह्मचर्य की ताकत महान है। इसी ताकत से ही हनुमान जी सबसे श्रेष्ठ, विद्वान, गुणवान, बलवान, धनवान, बुद्धिमान, व सारी दुनियाँ में ज्ञानवान भक्त शिरोमणि कहलाए। जैसा कि सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा भी गया है:-

ब्रह्मचारी ऐसा ब्रह्मचर्य दिखावे,
कैसा साडे वल ध्यान जो लावे।।

ब्रह्मचर्य की ताकत ने ही महापराक्रमी भीष्म को शरशय्या पर जीवित रहने का सामर्थ्य प्रदान किया। ब्रह्मचारी ही ईश्वर कृपा से ज्ञान, वैराग्य, भक्ति और सद्‌गुण सदाचार की प्राप्ति कर परमशान्ति और परमानन्द को प्राप्त हो सकता है।

उपरोक्त तथ्यों को दृष्टिगत रखते हुए सजनों सभी को सुझाव है कि विषय-विकारों से बचे रहने के लिए ब्रह्मचर्य का पालन करो ताकि वीर्य यानि शरीर की वह धातु जिससे उसमें शक्ति, तेज तथा कांति आती है और सन्तान उत्पन्न होती है उसकी खपत कुदरती नियम अनुसार मुख्यतः अपने आप को बलवान व पराक्रमी बनाए रखने हेतु ही हो। याद रहे कि अगर जीव वीर्य का पाप कर्मों में क्षय या नाश कर इसका दुरुपयोग करता है तो हृष्ट-पुष्ट अंग होते हुए भी शक्तिरहित हो जाता है। इस प्रकार हम कोई भी पराक्रम दिखाने में असक्षम हो जाते हैं। फिर कह रहे हैं इस इन्द्रिय में उत्तेजना न होने पर अन्य इन्द्रियाँ भी शांत रहती हैं तथा शुक्र और रज संबंधी रोग भी नहीं उत्पन्न होते। फलस्वरूप संसार के सृजन की प्रक्रिया चलती रहती है और हमारी भावी संतानें उच्च बुद्धि, उच्च ख़्याल संपन्न होने के साथ-साथ पूर्णतया स्वस्थ बनी रह दीर्घ आयु लाभ प्राप्त कर सकती हैं। इसीलिए अपना ख़्याल स्वच्छ, दृष्टि कंचन और जिह्वा स्वतंत्र रखते हुए अपने कर्त्तव्य का बुद्धिमता से पालन करने हेतु विवेक से काम लो और अपनी वासनाओं पर संयम रख अपने शासक खुद आप बनो। इस तरह इन्द्रियजीत नाम कहाओ। इस हेतु सजनों ध्यान से सुनोः-

न लगाव हो न झुकाव हो, ख्याल का दृश्यों की ओर,
मानवता के उत्थान हेतु मोड़ लो ख्याल श्री साजन की ओर
साजन की ओर हाँ हाँ ईश्वर की ओर

सबकी जानकारी हेतु आगामी सप्ताह हम गुदा इन्द्रिय के विषय में बातचीत करेंगे।

दिनाँक 24 सितम्बर 2017 का सबक़

कर्मेन्द्रियों का समुचित कार्य-4
(गुदा इन्द्रिय और पादेन्द्रिय)

साडा है सजन राम, राम है कुल जहान

अर्थात्

ईश्वर हमारा मित्र/प्रियतम सर्वव्यापक है, उसी को जानो, मानो व वैसे ही गुण अपनाओ।

शब्द है गुरु, शरीर नहीं है,

अर्थात्

ज्ञानी को नहीं ज्ञान को अपनाओ और निमित्त में नहीं नित्य में श्रद्धा बढ़ाओ।

इस पर सुदृढ़ता से डटे रह,
इस अटल सत्य पर स्थिर बने रहोः-

ओ३म् अमर है आत्मा, आत्मा में है परमात्मा

सजनों गत सप्ताह कर्मेन्द्रियों के समुचित कार्यों के संदर्भ में उपस्थेन्द्रिय के विषय में जानने के पश्चात् आओ अब आगे अन्य दो कर्मेन्द्रियों यथा गुदा इन्द्रिय व पादेन्द्रिय के विषय में जानते हैंः-

गुदा इन्द्रिय

गुदा इन्द्रिय पर ही समस्त मानव शरीर ठहरा हुआ है। गुदा का सम्बन्ध बड़ी एवं मोटी आँत से है। इसी आँत के अन्तिम सिरे पर यह इन्द्रिय स्थित है। अनावश्यक, अनुपयोगी,

हानिकारक मलविसर्जन इसका धर्म है जोकि शरीर की दृष्टि से अत्याधिक आवश्यक है। सजनों जिस प्रकार मन से नकारात्मकता का विसर्जन न होने पर मानव अपने यथार्थ स्वरूप को प्राप्त नहीं कर सकता उसी प्रकार शारीरिक मल का विसर्जन न होने पर शरीर जीवित नहीं रह सकता। कितना ही उत्तम से उत्तम आहार किया जाए, मल तो बनेगा ही बनेगा। यदि उस मल का विसर्जन न हो तो वह उत्तम आहार भी निकृष्टतम हो घातक सिद्ध हो जाएगा। इसके स्वस्थ बने रहने से, बिना किसी कष्ट के मल का त्याग होता है और यह तब होता है जब सुपच एवं सात्विक आहार का सेवन किया जाता है।

सजनों मनुष्य दिन में बहुत आहार खा जाता है यथा अन्न, फल, दूध, घी, शाक, दाल आदि। सोचो यदि यह इन्द्रिय न हो तो इनका पाकान्तर अवशिष्ट मल कहाँ रहेगा? यदि शरीर में रहेगा तो सैंकड़ों प्रकार के भयंकर रोग उत्पन्न कर देगा। इसी तथ्य के दृष्टिगत आयुर्वेद में कहा गया है 'बुद्धिमान मल के वेग को रोकें नहीं तत्काल उस का विसर्जन करें।' इस मल त्याग के कारण शरीर, स्वस्थ, बलवान, निरोग और दीर्घजीवी रह सकता है। गुदान्द्रिय की इसी महत्ता को समझते हुए मनुष्य जब भी अस्वस्थता से त्रस्त होने पर किसी वैद्य या डाक्टर के पास जाता है तो वह सर्वप्रथम गुदान्द्रिय के मल-विसर्जन के बारे में पूछता है यानि यदि मल विसर्जन ठीक होता है तो स्वास्थ्य ठीक रहता है।

याद रखो यह गुदा इन्द्रिय स्थूल मल के साथ-साथ अपान

वायु का भी निस्सरण करती है। जब उचित शोधन के अभाव में गुदान्द्रिय मल निस्सरण नहीं कर पाती तो मल रुकता है, सड़ता है, अपान बढ़ जाता है। उसके भी निकलने का मार्ग मल से अवरुद्ध हो जाता है। उस समय अत्यन्त पीड़ा होती है। मार्गाविरोध यानि गुदान्द्रिय के काम न करने के कारण यदि अपान वायु का क्रम उल्टा हो जाता है और गति करते करते यह मस्तिष्क में पहुँच जाता है तो सब काम उलटे होने लग जाते हैं यानि पागलपन या उन्माद छा जाता है। रोगी भागता है और जीवन का कोई उपाय नहीं सूझता। ऐसे में गुदान्द्रिय का कार्य सही तरीके से समझ में आता है।

स्पष्ट है सजनों मल-त्याग जीवन की परम उपयोगी एवं सहायक गतिविधि है। अतः इसकी निरोगता से तात्पर्य एक तो इससे प्रकृति प्रदत्त कार्य के अतिरिक्त कोई भी अन्य अनैतिक कर्म न कर, सदाचारी बनने से है और दूसरा सात्विक आहार का सेवन कर इस इन्द्रिय को स्वस्थ रखने से है ताकि यह इन्द्रिय हमारे जीवन के किसी भी कर्त्तव्य पालन में रुकावट न बने। याद रखो सात्विक आहार के अतिरिक्त किसी अन्य प्रकार के आहार का सेवन करने से भिन्न-भिन्न प्रकार के गुदा संबंधी रोग जैसे गुदा में जलन, कब्ज, बवासीर, मस्से, मल का खुश्क या पतला होना, समय पर शौच आदि का न होना, विशूचिका, अफारा, दस्त या हैजा आदि उत्पन्न हो जाते हैं। यहाँ यह याद रखने की बात है कि यह विकार केवल राजसिक और तामसिक आहार लेने वालों को ही परेशान नहीं करता अपितु अनुवांशिक रूप से गर्भाधारण की क्रिया के दौरान उनकी संतानों में भी स्थानांतरित हो जाता है। फिर उनमें भी गुदा में जलन,

मलादि का अवरोध, ठीक समय पर शौचादि का न होना ऐसे अनेक प्रकार के रोग या विकार पैदा हो जाते हैं। समता विषमता बन जाती है। इस प्रकार इन रोगों के निवारण के लिए अनेक प्रकार के उपायों और औषधियों की जरूरत पड़ती है क्योंकि इन भयंकर रोगों का मानव के क्रियाक्लापों पर सीधा दुष्प्रभाव पड़ता है और वह निराश और दुःखी रहने लगता है।

सजनों हममें से किसी के साथ भी ऐसा न हो इस हेतु आवश्यकता अनुसार सात्विक आहार के सेवन की महत्ता को समझो और इसे स्वस्थ रख, शारीरिक निरोगता सुनिश्चित करें। शारीरिक निरोगता के साथ-साथ मानसिक निरोगता पर भी ध्यान दो और इस हेतु मन में बुरे विचार व ख़्याल यानि नकारात्मकता को न पनपने दो अन्यथा भयंकर मानसिक रोग सताने लगेंगे और कुकर्म-अधर्म के रास्ते पर बढ़ने से आपको कोई नहीं रोक पाएगा। ऐसा न हो इसके लिए बुरे भावों के उपजते ही उन्हें अपनाने के स्थान पर उनका त्याग करना सुनिश्चित करो।

आओ सजनों अब पादेन्द्रिय के विषय में जानते हैं:-

पादेन्द्रिय

पैर वह अंग या अवयव हैं जिसके द्वारा प्राणी चलते-फिरते और खड़े होते हैं। पैरों पर ही समस्त शरीर का भार होता है अर्थात् यह शारीरिक संतुलन व सामंजस्य के मुख्य आधार हैं। लम्बाई और मोटाई की दृष्टि से यह सभी इन्द्रियों में श्रेष्ठ है। इस पादेन्द्रिय का एक ही धर्म है गमनागमन। पैरों

का गमनागमन वास्तव में केवल गति ही है। गति करना, शरीर को इधर से उधर ले जाना पैरों का काम है।

भिन्न-भिन्न योनियों के शरीरों की पाद संख्या भिन्न है। मनुष्य के दो पैर हैं। पशुओं के चार पैर हैं। मकड़ी के आठ पैर हैं। कनखजूरे के बीसियों और इसी प्रकार कान सलाई के अनगिनत। दौड़ना, चलना-फिरना, कूदना, फुदकना, उछलना, रेंगना आदि सब पाद के ही कर्म हैं। यह सब गमनागमन या गति के ही विभिन्न रूप या परिणाम हैं। दूसरों की या अपनी रक्षा में इस इन्द्रिय का उपयोग होता है। सेवादि कार्य में भी इसी के द्वारा गमनागमन होता है। इसके बिना लोक व्यवहार भी सिद्ध नहीं हो सकता। इसके द्वारा ही बड़े-बड़े कार्य सम्पादित होते हैं और जीवन में सफलता मिलती है।

आदमी, ऊँट, हाथी, कुत्ता, बिल्ली, चूहा, सिंह, कृमि, कीट, पतंग आदि सब ही योनियों के पैर भिन्न-भिन्न प्रकार के होते हैं क्योंकि ये योनियाँ भिन्न-भिन्न प्रदेशों में भिन्न-भिन्न वातावरण में उत्पन्न होती हैं। उस देश एवं वातावरण के अनुकूल ही उनके शरीर और पाद आदि इन्द्रियाँ बनी हुई हैं। उदाहरणस्वरूप ऊँट के पैर वक्र, लम्बे, विचित्र, टेढ़े-मेढ़े होते हैं। उसके पैर की गद्दी रेत में नहीं धँसती। वह बैठता भी है तो फैलकर जिससे रेत में न धँसे। उसका डील-डौल भी इतना बड़ा है कि सहसा कोई रेत का टीला उड़कर आ भी जाए, तो उसे न दबा सके और वह दो-चार पैर मारकर उससे निकल जाए। इन सब परिस्थितियों के दृष्टिगत प्रकृति ने उसको ऐसे पैर दिए हैं। इसी ऊँट को यदि पहाड़

पर ले जाया जाए तो बिलकुल नहीं चढ़ सकता। जबकि छोटी-छोटी भेड़-बकरियाँ फटाफट बिना किसी असुविधा के यूँ ही इन पहाड़ों पर चढ़ जाती हैं क्योंकि इनके पैर छोटे-छोटे होते हैं। इसी प्रकार विभिन्न स्थानों के उपयोग के अनुपात से मनुष्यों, जीव-जन्तुओं के शरीर और अंग प्रकृति ने अलग-अलग बनाए हैं।

लोक व्यवहार सिद्ध करने में पादेन्द्रिय अति सहायक है। इसके द्वारा मनुष्य अपने सुखों के लिए अनेक कार्य करते हैं। पदार्थों का संग्रह करते हैं और अनेक प्रकार के भोगों का उपभोग करते हैं। अतः मनुष्य के लिए इस इन्द्रिय का स्वस्थ रहना अति आवश्यक है। यह तभी हो सकेगा यदि हम इसका कुदरती तरीके से सही प्रयोग करेंगे। पैरों के सही प्रयोग से अभिप्राय पैरों को सही दिशा में, सही स्थान पर ले जाने से है। इस संदर्भ में सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है:-

चलदे चलो चलदे चलो,
धर्म दे मार्ग है जित तुम्हारी।
चलदे चलो सजनों मुख न मोड़ो,
उस मार्ग मिलन श्री राम बिहारी।।

अतैव ईश्वर के हुक्मानुसार सदैव उन्नति-पथ पर कदम बढ़ाओ। दूसरों पर निर्भर होने की अपेक्षा इस इन्द्रिय की स्वस्थता द्वारा, अपने पैरों पर स्वयं खड़े होवो अर्थात् आत्मनिर्भर व स्वावलंबी बनो। याद रखो आलस्य व दुश्चिंता गतिरोधक हैं। बढ़ते कदमों को रोकने वाले हैं। इन्हें त्याग कर आत्मविश्वास से कदम बढ़ाओ। इसलिए तो सतवस्तु के

कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है:-

तूं पिच्छे कदम न हटावीं, ऐसा पुरुषार्थ कमावीं।
हुन तूं अगे कदम बढ़ावीं, तूं ऐसा उद्यम दिखावीं।।

इस प्रकार कदम से कदम मिलाते हुए अनुशासित मिलट्री की एकरस चाल चलो। पग वहाँ मत ले जाओ जहाँ मन ले जाए क्योंकि मन ही सूक्ष्म शरीर स्थित ख़्याल को उड़ा कर, कर्मभोग भोगने हेतु नाना प्रकार की योनियों में भटकाता रहता है। अतः मनमत अनुसार कुरस्ते पर चलने से बचो और शब्द ब्रह्म विचारों पर डटे रहो। इस प्रकार अपने पैरों में कर्म बंधनों की बेड़ियाँ मत पड़ने दो। क्योंकि कहा भी गया है:-

किस्मत दे जेहड़ा राहवे संगे, पैरां विच पा लये ढंगे।

ऐसा होने पर चाहने पर भी कदम आगे नहीं बढ़ा पाओगे।

इसीलिए हम सबसे प्रार्थना करते हैं कि अपना जीवन लक्ष्य प्राप्त करना सुनिश्चित करने हेतु सजन श्री शहनशाह हनुमान जी की बताई हुई युक्ति अनुसार, सहज भाव से, सच्चाई धर्म के निष्काम मार्ग पर अपना कदम सदैव स्थिर और अविचल रखते हुए बेखौफ़-बेखतरा आगे बढ़ते जाओ। किसी भी कारण उन्हें डगमगाने न दो। याद रखो सद्गति प्राप्त करने के लिए पैरों को सदैव सद्मार्ग पर ही ले जाना श्रेयस्कर है। अतः जैसे सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ हमें विचार शब्द पकड़ने का आवाहन् दे रहा है, तो हमारे लिए बनता है कि हम किसी की उकसाहट या प्रलोभन में न आकर विचार पर सुदृढ़ बने रहें और अंत परिणाम को भली-

भांति समझ कर ही क्रिया करें। इस हेतु सजनों सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ कह रहा है:--

कदम कदम ते विचार, विचार नाल होवे प्यार।
दिव्य दृष्टि दिखाओ सजनों, जित्तो मृतलोक नूं।।

अंततः याद रखो विचार पर चलने वालों की ही सदा जीत-जीत और फ़तह-फ़तह होती है यानि विचारवान ही दिव्य दृष्टि का सबक़ प्राप्त कर अपने जीवन का असली मकसद सिद्ध कर पाता है। अतः आप भी ऐसे ही विचारवान विवेकी पुरुष बनो।

सबकी जानकारी हेतु कर्मेन्द्रियों के संदर्भ में हस्तेन्द्रिय की चर्चा हम आगामी सप्ताह करेंगे।

निवेदन

इस पुस्तक को और अधिक जीवन उपयोगी बनाने हेतु आपके सुझाव सादर आमन्त्रित हैं।

SATYUG DARSHAN TRUST (REGD.)

ALLEVIATING PHYSICAL, MENTAL AND SPIRITUAL SUFFERINGS OF HUMAN BEINGS.

info@satyugdarshantrust.org | www.satyugdarshantrust.org

Institutions under the aegis of Satyug Darshan Trust (Regd.)

SATYUG DARSHAN CHARITABLE DISPENSARIES & LABORATORIES
Multidiscipline dispensaries, labs & diagnostic centres spread in 15 cities
www.satyugdarshandispensaries.org

SATYUG DARSHAN VIDYALAYA
Nursery-XII, Co-Ed. English medium, residential & day boarding school. Affiliated to CBSE.
www.satyugdarshanvidyalaya.net

SATYUG DARSHAN INSTITUTE OF EDUCATION & RESEARCH
B.Ed. College for Girls. Affiliated to CRS University, Jind.
www.sdier.org

SATYUG DARSHAN INSTITUTE OF ENGINEERING & TECHNOLOGY
UG College, offering B.Tech. and BBA courses. Co-Ed., residential & day boarding facilities. Affiliated to YMCA University, Faridabad.
www.satyug.edu.in

DHYAN KAKSH
World's first School of Equanimity & Even-sightedness. It is open to all age and gender.
www.schoolofequanimity.com

SATYUG DARSHAN SANGEET KALA KENDRA
Imparting true teachings of music and dance, open to all age and gender. Present in 15 cities. Affiliated to Prayag Sangeet Samiti, Allahabad.
www.satyugdarshansangeet.org

Initiatives of Satyug Darshan Trust (Regd.) on Humanity and Ethics

INTERNATIONAL EQUANIMITY OLYMPIAD
www.equanimityolympiad.in

HUMANITY DEVELOPMENT CLUB
www.awakehumanity.org